प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद की सम्मति से

चौथा संस्करण १९५९

मूल्य
सजिल्द साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट लि०
दिल्ली।

प्रकाशककी ओरसे

भारतको गांधीजी की अनेक देनोंमेंसे 'सत्याग्रह' उनकी एक विशेष देन है। इस शस्त्रका आविष्कार दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानियोंके मान-मर्यादा और न्यायोचित अधिकारों के लिए किये गए संग्रामके दिनों में हुआ था और वहींपर सबसे पहले राजनीतिक क्षेत्र में बड़े पैमानेपर इसका प्रयोग किया गया था।

दक्षिण अफ्रीकाकी इस लड़ाई को हुए यद्यपि एक युग बीत चुका है तथापि उसके अनुभव उसकी शिक्षा उसके निष्कर्ष आज भी ताजे हैं। इसी पुस्तकके दूसरे खंडकी प्रस्तावनामें गांधीजीने लिखा है—"मैं इस बातको अक्षरशः सत्य मानता हूं कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने संपूर्ण जगतकी समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके सान्निध्यमें बैर-भाव टिक नहीं सकता इस वचनको भी मैं अक्षरशः सत्य मानता हूं। कष्ट सहन करनेवालोंके लिए कुछ भी अशक्य नहीं होता इस सूत्रका मैं उपासक हूं। जीवन की कठोरतम साधनासे उद्भूत ये मूल-मंत्र इतने वर्षों बाद आज भी ताजे हैं और हमेशा ताजे रहेंगे।

दक्षिण अफ्रीकामें आनेके बाद भारतमें गांधीजीने जो लड़ाइयां लड़ीं उन्हें यथारीति समझनेके लिए दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहका इतिहास जानना आवश्यक है कारण कि जिन मूलभूत सिद्धांतोंपर बाद की लड़ाइयां लड़ी गई, उनका मूल सूत्र दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहमें मिलता है।

पुस्तकका अनुवाद मूल गुजरातीसे श्री काशिनाथप्रसादजीने किया है और अंग्रेजी-संस्करणके आधार पर बहुतसे परिवर्तन करके उसे यथा-संभव पूर्ण बनानेका प्रयत्न किया गया है।

—मंत्री

विषय-सूची

पृष्ठ

दूसरा खंड २२७-४००

दक्षिण अफ्रीकाके

के

सत्याग्रहका इतिहास

पहला खंड

प्रास्ताविक

दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंकी सत्याग्रहकी लड़ाई आठ बरस चली। इस संग्रामके लिए ही 'सत्याग्रह' शब्दकी खोज की गई और प्रयोग किया गया। बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि इस संग्रामका इतिहास लिखूं। उसका कितना ही अंश तो केवल मैं ही लिख सकता हूं। कौन सी बात किस हेतुसे की गई, इसका पता तो युद्धका संचालन करनेवाले-को ही हो सकता है। राजनैतिक क्षेत्रमें बड़े पैमानेपर यह पहला ही प्रयोग था। इसलिए इस सत्याग्रहके सिद्धांतका विकास कैसे हुआ इसकी जानकारी सबको हो जाना हर हालतमें जरूरी समझा जायगा।

पर इस वक्त, तो हिंदुस्तानमें सत्याग्रहके लिए विशाल क्षेत्र है। वीरमगाम*की चुंगीकी एक छोटी-सी लड़ाईसे इसका अनिवार्य क्रम आरंभ हुआ है।

वीरमगामकी चुंगीकी लड़ाईमें निमित्त था बढ़वाणका साधुचरित परोपकारी दरजी भाई मोतीलाल। १९१५ में मैं विलायतसे वापस आकर काठियावाड़ जा रहा था। तीसरे दर्जेमें सवार था। बढ़वाण स्टेशनपर यह दरजी अपनी छोटी-सी टोली लेकर आया था। वीरम-गामकी कथा थोड़ी-सी सुनाकर उसने मुझसे कहा—"इस कष्टको काटिये। आपने काठियावाड़में जन्म लिया है, इसे सार्थक कीजिये।" उसकी आंखोंमें दृढ़ता और करुणा दोनों थी।

मैंने पूछा—"तुम जेल जानेको तैयार हो?"

तुरंत जवाब मिला—"हम फांसी चढ़नेके लिए तैयार हैं।"

---

*वीरमगाम अहमदाबादसे ४ मील पश्चिममें एक कसबा है। बढ़वाण वीरमगामसे ४ मील पश्चिममें पड़ता है।

मैं—"मेरे लिए तो वचन ही काफी है, पर देखना विश्वासघात न हो।"

मोतीलाल—"यह तो काम पड़ने पर मालूम होगा।"

मैं राजकोट पहुंचा। वहां अधिक ब्योरे मालूम किये और सरकारके साथ लिखा-पढ़ी शुरू कर दी। बगसरा[1] आदिके भाषणोंमें मैंने लोगोंको सलाह दी कि वीरमगामकी चुंगीके मामलेमें सत्याग्रह करना पड़े तो वे उसके लिए तैयार रहें। सरकारकी वफादार खुफिया पुलिसने ये भाषण उसके दफ्तरमें पहुंचाये। पहुंचानेवालेने सरकारके साथ अनजानमें जनताकी भी सेवा की। अंतमें लार्ड चेम्सफर्डके साथ इस विषयमें बातचीत हुई और उन्होंने दिये हुए वचनका पालन किया। औरोंने भी कोशिशकी, यह मैं जानता हूं। पर मेरी पक्की राय है कि इस मामलेको लेकर सत्याग्रह किये जानेकी संभावना थी, इसीसे यह चुंगी रद्द हुई।

वीरमगामके बाद गिरमिटके कानूनसे लड़ना पड़ा। इस कानूनको रद्द करानेके लिए भरपूर कोशिश की गई थी। इस लड़ाईको पार पहुंचानेके लिए सार्वजनिक आंदोलन भी अच्छा-खासा हुआ था। बंबईमें हुई सभामें गिरमिट यानी शर्तबंद कुली प्रथाको बंद करानेके लिए १९१७ की ३१ वीं जुलाईकी तारीख तय की गई थी। यह तिथि कैसे नियत हुई इसका इतिहास यहां नहीं दिया जा सकता। इस आंदोलनके अंतर्गत वाइसरायके पास पहले बहनोंका प्रतिनिधिमंडल गया। इसमें खास कोशिश किसकी थी यह लिखे बिना नहीं रहा जा सकता। वह थी चिरस्मरणीय बहन जाइजी पेटिट की। इस लड़ाईमें केवल सत्याग्रहकी तैयारीसे ही हमारी विजय हो गई। पर उसके विषयमें सार्वजनिक आंदोलनकी आवश्यकता थी, यह अंतर याद रखने लायक है। गिरमिटको बंद कराना वीरमगामकी चुंगी उठवानेसे ज्यादा वजनदार मामला था।

---

[1] काठियावाड़का एक स्थान।

लार्ड चेम्सफर्डने रौलट कानूनके बाद गलतियां करनेमें कसर नहीं की। फिर भी आज मेरा यही खयाल है कि वह चतुर और समझदार वाइसराय थे। सिविल सर्विसके स्थायी अधिकारियोंके पंजेसे अंततक कौन वाइसराय बच सकता है?

तीसरी लड़ाई थी चंपारनकी। इसका ब्योरेवार इतिहास राजेंद्र बाबूने लिखा है। इसमें सत्याग्रह करना पड़ा केवल तैयारी काफी नहीं हुई पर विपक्षका स्वार्थ कितना बड़ा था! चंपारनके लोगोंने कितनी शांति रखी यह बात लिखने लायक है। सभी नेताओंने मन वचन और कायासे पूरी तरह शांति रखी इसका साक्षी मैं स्वयं हूं। तभी तो यह सदियोंकी बुराई छः महीनोंमें नामशेष हो गई।

चौथी लड़ाई थी अहमदाबादके मिल मजदूरोंकी। उसका इतिहास गुजरात न जाने तो दूसरा कौन जान सकता है! मजदूरोंने कैसी शांति रखी! उनके नेताओंके बारेमें क्या मुझे कुछ कहनेकी जरूरत है? पर यह सब होते हुए भी इस विजयको मैं दोषपूर्ण मानता हूं। इसलिए कि मजदूरोंकी प्रतिज्ञा का पालन करानेके लिए मैंने जो उपवास किया वह मालिकोंपर दबाव-सा हो गया। उनके और मेरे बीच जो स्नेह था वह उपवासका असर उनपर डाले बिना रह ही नहीं सकता था। फिर भी इस संघर्षका सार तो स्पष्ट ही है। मजदूर शांतिके साथ अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहते तो उनकी जीत होती ही और वे मालिकोंका मन हर लेते। वे मालिकोंका दिल नहीं जीत सके क्योंकि वे मन-वचन कर्मसे निर्दोष—शांत—रहे यह नहीं कहा जा सकता। वे शरीरसे शांत रहे यह भी बहुत माना जायगा।

पांचवी लड़ाई खेड़ामें लड़ी गई। इसमें सभी नेताओंने शुद्ध सत्यका पालन किया यह मैं नहीं कह सकता। हां शांति अवश्य बनाये रखी गई। किसानोंकी शांति कुछ मजदूरोंकी तरह केवल कायिक ही थी। इससे महज आबरू बचा रही। जनतामें जबरदस्त जागृति फैली। पर खेड़ाने शांतिका पूरा पाठ नहीं पढ़ा था। मजदूर शांतिका शुद्ध रूप नहीं

समझ पाये थे। इससे रौलट ऐक्टके विरुद्ध सत्याग्रह करते समय लोगों को कष्ट सहना पड़ा। मुझे अपनी हिमालय-जैसी भूल कबूल करनी पड़ी और उपवास करना-कराना पड़ा।

छठी लड़ाई रौलट कानूनके विरुद्ध हुई। उसमें हमारे भीतरके दोष बाहर आ गये, पर असल बुनियाद पक्की थी। मैंने अपना सब गलतियां कबूल कीं, प्रायश्चित्त किया। रौलट कानूनपर अमल तो कभी हो न सका और अंतमें यह कानून रद्द भी हो गया। इस संग्रामसे हमें बहुत बड़ा सबक मिला।

हमारी सातवीं लड़ाई जो खिलाफत, पंजाब और स्वराज्यकी। वह अभी चल रही है। उसमें एक भी सत्याग्रही अविचलित रहा तो हमारी विजय निश्चित है, यह मेरा अटल विश्वास है।

पर जो युद्ध चल रहा है वह महाभारत है। उसकी तैयारी बिना कराये किस तरह हो गई, इसका क्रम मैंने ऊपर दे दिया है। वीरमगाम की चुंगीकी बाबत उस समय क्या खबर थी कि मुझे और भी लड़ाइयां लड़नी होंगी। वीरमगामका भी दक्षिण अफ्रीकामें मुझे कहां पता था? सत्याग्रहकी यही तो खूबी है। वह खुद हमारे पास आ जाता है। हमें उसे ढूंढनेतक जाना नहीं पड़ता। यह गुण उसके सिद्धांतमें ही निहित है। जिसमें कुछ छिपा हुआ नहीं है, जिसमें कोई चालाकी नहीं करनी होती, जिसमें असत्यके लिए तो स्थान ही नहीं, ऐसा धर्मयुद्ध अनायास ही अपने पास आता है और धर्ममें आस्था रखनेवाला जन उसके स्वागतके लिए सदा तैयार रहता है। जिसकी रचना पहलेसे करनी पड़े वह धर्मयुद्ध नहीं हो सकता। धर्मयुद्धकी रचना करनेवाला और संचालक तो स्वयं ईश्वर है। यह युद्ध ईश्वरके ही नामपर चल सकता है और जब सत्याग्रहीकी सारी बुनियादें ढीली हो जाती हैं, वह बिलकुल निर्बल हो जाता है, जब उसके चारों ओर अंधकार छा जाता है तभी ईश्वर उसकी मददको पहुंचता है। मनुष्य जब अपने-आपको रजकणसे भी छोटा मानता है तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है। राम निर्बलको ही बल देते हैं।

इस सत्यका अनुभव तो अभी हमें होना है। इसलिए मैं मानता हूँ कि दक्षिण अफ्रीकाका इतिहास हमारे लिए सहायकरूप है।

जो-जो अनुभव वर्तमान संग्राममें अबतक हुए हैं पाठक देखेंगे कि उससे मिलते-जुलते अनुभव दक्षिण अफ्रीकामें भी हुए थे। दक्षिण अफ्रीकाका इतिहास हमें यह भी बतायगा कि अभीतक हमारे संग्राममें नैराश्यका एक भी कारण नहीं है। विजयके लिए बस इतना ही जरूरी है कि हम अपनी योजनापर दृढ़ताके साथ कायम रहें।

यह प्रस्तावना मैं जुहू[1]में बैठा लिख रहा हूँ। इतिहासके ३ प्रकरण यरवडा-जेलमें लिखे थे। मैं बोलता गया और भाई इंदुलाल याज्ञिक लिखते गये। बाकीके प्रकरण पीछे लिखनेकी सोचता हूँ। जेलमें मेरे पास आधारके लिए पुस्तकें न थीं। उन्हें इकट्ठा करनेकी इच्छा नहीं है। ब्योरेवार इतिहास लिखनेकी मुझे फुरसत नहीं है। उत्साह या इच्छा भी नहीं है। मेरा उद्देश्य इतना ही है कि हमारे वर्तमान संग्राममें इससे मदद मिले और कभी किसी फुरसतवाले साहित्यविलासीके हाथों यह इतिहास विस्तारपूर्वक लिखा जाय तो उसके काममें मेरा यह प्रयत्न पतवार—पथप्रदर्शक—रूप हो सके। यद्यपि यह बिना आधारके लिखी हुई चीज है फिर भी कोई यह न समझे कि इसमें एक भी ऐसी बात है जो सही नहीं है या एक जगह भी अतिशयोक्ति की गई है यह मेरी प्रार्थना है।

जुहू, मंगलवार,
फाल्गुन बदी ११ सं १९८
२ अप्रैल १९२४

मोहनदास करमचंद गांधी

---

[1] बम्बईके समुद्रतटपर।

पहला खंड

१

भूगोल

अफ्रीका दुनियाके बड़े-से-बड़े भूखंडोंमेंसे एक है। हिंदुस्तान भी एक भूखंडके बराबर विस्तारवाला देश माना जाता है पर महज रकबेकी दृष्टिसे देखें तो अफ्रीकामें चार या पांच हिंदुस्तान समा जायंगे। दक्षिण अफ्रीका अफ्रीकाका ठेठ दक्षिणी भाग है। हिंदुस्तानकी तरह अफ्रीका भी प्रायद्वीप है। अतः दक्षिण अफ्रीकाका बड़ा हिस्सा समुद्रसे घिरा हुआ है। अफ्रीकाके बारेमें आम खयाल यह है कि वहां ज्यादा-से-ज्यादा गरमी पड़ती है और एक दृष्टिसे यह बात सही भी है। भूमध्यरेखा अफ्रीकाके बीचसे होकर गुजरती है और इस रेखाके आसपासकी गरमीका अंदाजा हिंदुस्तानके रहनेवालोंको नहीं हो सकता। हिंदुस्तानके ठेठ दक्षिणमें जिस गरमीका अनुभव हम करते हैं उससे भूमध्यरेखाके पासकी गरमीका कुछ अन्दाजा किया जा सकता है। पर दक्षिण अफ्रीकामें वैसी गरमी बिलकुल नहीं क्योंकि अफ्रीकाका यह भाग भूमध्यरेखासे बहुत दूर है। उसके बड़े भागकी आब-हवा तो इतनी सुन्दर और ऐसी मोतदिल है कि वहां यूरोपकी जातियां सुखसे घर बना सकती हैं। हिंदुस्तानमें बसना उनके लिए नामुमकिन-सा है। इसके सिवा दक्षिण अफ्रीकामें तिब्बत या काश्मीरके जैसे बहुत-से ऊंचे प्रदेश हैं फिर भी वे तिब्बत या काश्मीरकी तरह दससे चौदह हजार फुटतककी ऊंचाईवाले नहीं हैं। इसमे वहांकी हवा खुश्क और बर्दाश्त होने लायक ठंडी रहती है। इसीलिए दक्षिण

अफ्रीकाके कितने ही भाग क्षयरोगियोंके लिए अत्युत्तम माने जाते हैं। दक्षिण अफ्रीकाकी स्वर्णपुरी जोहान्सबर्ग ऐसे ही भागोंमेंसे एक है। जमीनके जिस टुकड़ेपर जोहान्सबर्ग आबाद है वह आजसे ५० साल पहले बिलकुल वीरान और सूखी घासका मैदान था पर जब वहां सोनेकी खानोंकी खोज हुई तब वहां जादूके महलकी तरह मकान-पर-मकान बनने लगे और आज तो वह सुंदर बंगलोंका विशाल नगर है। यहांके धनिकोंने दक्षिण अफ्रीकाके उपजाऊ भागों और यूरोपसे भी एक-एक पौधेके १५ १५ रुपये देकर पेड़-पौधे मंगाये और लगाये हैं। उसका पिछला इतिहास न जाननेवाले यात्रीको आज यही भास पड़ेगा कि ये पेड़-पौधे हजारों सालसे यहां लग रहे होंगे।

दक्षिण अफ्रीकाके सभी विभागोंका वर्णन मैं यहां नहीं करना चाहता। जिन विभागोंके साथ हमारे विषयका कुछ संबंध है केवल उन्हींका थोड़ा परिचय दे रहा हूं। दक्षिण अफ्रीकामें दो हुकूमतें हैं—ब्रिटिश और पुर्तगीज। पुर्तगीज हिस्सेको डेलागोआबे कहते हैं और हिंदुस्तानसे जाते हुए वह दक्षिण अफ्रीकाका पहला बंदरगाह माना जाता है। वहांसे थोड़ा दक्षिणकी ओर और बढ़िये नीचे उतरिये तो पहला ब्रिटिश राज्य नेटाल आता है। उसका बंदरगाह पोर्ट नेटाल कहलाता है पर हम उसे डर्बनके नामसे जानते हैं और दक्षिण अफ्रीकामें भी वह आमतौरसे इसी नामसे ख्यात है। नेटालका यह सबसे बड़ा नगर है। नेटाल-की राजधानीका नाम पीटर मारित्सबर्ग है। वह डर्बनसे अंदरका भाग आगे जाते हुए लगभग ६० मीलके फासलेपर पड़ता है। समुद्रकी सतहसे उसकी ऊंचाई लगभग दो हजार फुट है। डर्बनकी आब-हवा कुछ-कुछ बंबईसे मिलती हुई मानी जा सकती है पर बंबईसे वहांकी हवामें कुछ अधिक ठंड अवश्य है। नेटालसे आगे बढ़कर और अंदर जानेपर ट्रांसवाल आता है जिसकी जमीन आज दुनियाको सबसे

ज्यादा सोना दे रही है। कुछ बरस पहले यहां हीरेकी खान भी मिली है, जिससे दुनियाका बड़े-से-बड़ा हीरा निकला है। यह कोहेनूरसे भी बड़ा हीरा इसके पास है ऐसा समझा जाता है। उसका नाम खानके मालिकके नामपर रखा गया है और वह कलीनन[1] हीरा कहलाता है।

पर जोहान्सबर्ग स्वर्णपुरी है और हीरेकी खानें भी उसके पास ही हैं फिर भी वह ट्रांसवालकी राजधानी नहीं है। उसकी राजधानी प्रिटोरिया है। यह जोहान्सबर्गसे ३६ मीलके फासलेपर है और वहां खासकरके राजदरबारी आदमियों तथा उनसे संबंध रखनेवालोंकी बस्ती है। इससे वहांका वातावरण कुछ शांत माना जाता है। जोहान्सबर्गका वातावरण तो अतिशय अशांत कहा जाता है। जैसे हिंदुस्तानके किसी शांतिभरे गांव या छोटे-से नगरसे कोई बम्बई-जैसे महानगरमें पहुंचे तो वहांकी धूम-धड़क्केसे और अशांतिसे घबरा जाता है प्रिटोरियासे जानेवालेका जोहान्सबर्गका दृश्य भी वैसा ही मालूम होता है। अगर यह कहें कि जोहान्सबर्गके लोग चलते नहीं बल्कि दौड़ते हैं तो यह अतिशयोक्ति नहीं मानी जायगी। किसीको किसीकी ओर देखने तककी फुरसत नहीं होती और हरएक इसी धुनमें मग्न दिखाई देता है कि कैसे कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक पैसा कमा लूं। ट्रांसवालको छोड़कर पश्चिमकी ओर और भी अंदर जाइये तो आरेंज फ्री स्टेट अथवा आरेंजियाका उपनिवेश आता है। इसकी राजधानी ब्लूमफोंटीन है। यह अतिशय शांत और छोटा-सा नगर है। आरेंजियामें कोई खान-वान नहीं है। वहांसे रेलपर कुछ घंटेकी यात्रासे ही हम केप कॉलोनीकी सरहदपर पहुंच जाते हैं। केप कॉलोनी दक्षिण अफ्रीकाका सबसे

---

[1] कलीनन हीरेका वजन ३ हजार कैरट है। कोहेनूरका वजन १ कैरटके और उसके राजमुकुटके हीरे 'ओलफ' का २ कैरटके लगभग है।

बड़ा उपनिवेश है। उसकी राजधानी और सबसे बड़ा बंदरगाह केप टाउनके नामसे प्रसिद्ध है। 'केप ऑव गुड होप' नामका अंतरीप इसी राज्यमें है। गुड होपके मानी हैं शुभाशा। वास्को डी गामा जब पुर्तगालसे हिंदुस्तानकी खोजमें निकला तब उसने यहीं पहुंचकर अपने जहाजका लंगर डाला और यहीं उसे यह आशा बंधी कि अब अपनी मुराद जरूर पूरी होगी। इसीसे इस स्थानका नाम 'शुभाशा अंतरीप' रखा।

इन चार मुख्य ब्रिटिश उपनिवेशोंके अतिरिक्त और कई प्रदेश हैं जो ब्रिटिश साम्राज्यके संरक्षणमें हैं और जिनमें उन लोगोंकी बस्ती है जो दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोंके आगमनके पहलेसे इस देशमें रहते थे।

दक्षिण अफ्रीकाका मुख्य धंधा खेती ही माना जायगा। खेतीके लिए यह बहुत ही अच्छा देश है। कितने ही भाग तो अतिशय उपजाऊ और सुहावने हैं। अनाजोंमें सबसे अधिक और आसानीसे उपजनेवाली फसल मकईकी है। मकई दक्षिण अफ्रीकाके हब्शी बाशिंदोंका मुख्य आहार है। कुछ हिस्सोंमें गेहूं भी पैदा होता है। फलोंके लिए तो दक्षिण अफ्रीका प्रसिद्ध है। नेटालमें बहुत किस्मोंके और बहुत बढ़िया केले पपीते और अनन्नास पकते हैं और इतनी इफरातसे कि गरीब-से-गरीब आदमीको भी मिल सकें। नेटाल और दूसरे उपनिवेशोंमें भी नारंगी संतरा पीच और एप्रिकाट (जर्दालू) इतने बड़े परिमाणमें पैदा होते हैं कि हजारों आदमी सामान्य श्रमसे देहातमें उन्हें बिना पैसेके पा सकते हैं। केप कॉलोनी तो अंगूर और बेरका देश है। वहां जैसे अंगूर शायद ही और कहीं उपजते हों। मौसममें वे इतने सस्ते हो जाते हैं कि गरीब आदमी भी जी भरकर खा सके। जहां हिंदुस्तानी बसते हों वहां आमके न हों यह हो नहीं सकता। हिंदुस्तानियोंने आमकी गुठलियां बोईं और इसका फल यह हुआ कि दक्षिण अफ्रीकामें आज आम भी अच्छी मात्रामें उपलब्ध हैं। उनकी कुछ किस्में तो बेशक

बल्कि 'झापुस-मायरी' के साथ मुकाबला कर सकती है।
साग-भाजी भी इस रसीली भूमिमें बकरातसे उपजती है
और कह सकते हैं कि शौकीन हिंदुस्तानियोंने हिंदुस्तानकी
लगभग सभी साग-तरकारियां यहां उपजा ली हैं।

मवेशियोंकी तादाद भी यहां काफी कही जा सकती है।
गाय-बैल हिंदुस्तानके गाय-बैलोंसे बड़े डील-डौलवाले और
अधिक बलवान होते हैं। गोरक्षाका दावा करनेवाले हिंदु
स्तानमें कितने ही गाय-बैलोंको हिंदुस्तानके लोगोंकी तरह
ही दुबला-सूखा देखकर मैंने शर्मसे सिर झुकाया है और
अनेक बार मेरा दिल उनकी दशा देखकर रोया है। दक्षिण
अफ्रीकामें दुबली गाय या दुबला बैल मैंने कहीं देखा हो ऐसा
मुझे याद नहीं आता यद्यपि मैं अपनी आंखें प्रायः खुली
रखकर उसके सभी भागोंमें फिरा हूं। प्रकृतिने अपनी दूसरी
देनोंके साथ-साथ इस भूमिको सृष्टि-सौंदर्यसे संवारनेमें भी
कोताही नहीं की है। डर्बनका दृश्य तो बहुत ही सुंदर
माना जाता है पर केप कॉलोनी उससे भी बढ़-चढ़कर है।
केप टाउन नगर 'टेबल माउन्टेन' नामक पहाड़की तलहटीमें
बसा हुआ है जो न बहुत नीचा है और न बहुत ऊंचा। दक्षिण
अफ्रीकाकी पूजा करनेवाली एक विदुषीने इस पहाड़पर
एक कविता लिखी है, जिसमें वह कहती है कि जो अलौकिकता
मैंने 'टेबल माउन्टेन' में अनुभव की है वह मुझे किसी और
पर्वतमें नहीं मिली। इसमें अतिशयोक्ति भले ही हो—
मैं मानता हूं कि है—पर इस विदुषी बहनकी एक बात मेरे
मनमें बैठ गई है। वह कहती है कि टेबुल माउन्टेन केप टाउन
निवासियोंके मित्रका काम करता है। यह पर्वत बहुत ऊंचा
नहीं है। इससे डरावना नहीं लगता। लोगोंको दूरसे ही
उसका पूजन करके संतोष नहीं करना पड़ता बल्कि वे
इस पहाड़पर ही घर बनाकर रहते हैं और बिलकुल समुद्रके
किनारे होनेसे समुद्र सदा अपनी स्वच्छ जलसे उसके पांव
पखारा और उसका चरणामृत पिया करता है। बच्चे और

बूढे स्त्री और पुरुष सब निर्भय होकर लगभग सारे पहाड़पर विचर सकते हैं और हमारों नगरवासियोंके कोलाहलसे सारा पर्वत प्रतिदिन गूंज उठता है। इसके विशाल वृक्ष सुगंध-भरे और रंग-बिरंगे फूल सारे पहाड़को इस तरह सवार देते हैं कि उसकी सुषमा निरखते और उसपर विचरते लोग अघाते ही नहीं।

दक्षिण अफ्रीकामें इतनी बड़ी नदियां नहीं हैं जिनकी तुलना हमारी गंगा-यमुनाके साथ की जा सके। थोड़ी नदियां हैं पर वे बहुत छोटी कही जायगी। इस देशमें बहुतेरे भाग ऐसे हैं जहां नदीका पानी पहुंचता ही नहीं। ऊंचे प्रदेशोंमें नहरें भी कहांसे लाई जाय ? और जहां समुद्रकी समता करनेवाली नदियां न हों वहां नहरें कहांसे हो सकती हैं ? दक्षिण अफ्रीकामें जहां जहां प्रकृतिने पानीकी कमी कर रखी है वहां पाताल जैसे गहरे कुएं खोदकर पवनचक्कियों और भापकी कलोंके जरिए इतना पानी खींचा जाता है कि खेतोंको सींच सके। वहांकी सरकारकी तरफसे खेतीको भरपूर मदद मिलती है। किसानोंको सलाह देनेके लिए वह खेती के विशेषज्ञों को भेजा करती है। कितने ही स्थानोंमें प्रजाके लाभके लिए सरकार अनेक प्रयोग किया करती है। यह नमूनेके खेत रखती है लोगोंको मवेशी और बीज मिलनेका सुभीता कर देती है बहुत थोड़े खर्चसे बहुत गहरे कुए खुदवा देती है और उसकी कीमत किस्तोंमें चुकानेका सुभीता किसानोंके लिए कर देती है। इसी तरह लोहेके कंटीले तारोंकी बाड़ भी खेतोंके इर्द-गिर्द लगवा देती है।

दक्षिण अफ्रीका भूमध्यरेखाके दक्षिणमें पड़ता है और हिंदुस्तान उत्तरमें। इससे वहांका सारा वातावरण हिंदुस्तानियोंको उल्टा-सा मालूम होता है। वहांका ऋतुक्रम भी विपरीत है। जब हमारे यहां गरमी होती है तब वहां जाड़ेके दिन होते हैं। वर्षाका वहां कोई पक्का नियम नहीं दिखाई देता। वह जाड़े जब हो सकती है। आमतौरपर २० इंचसे अधिक बारिश नहीं होती।

२

इतिहास

अफ्रीकाके भूगोलपर निगाह डालते हुए जिन विभागोंको हम देख गए है, पाठक यह न समझ ले कि वे आदिकालसे ही है। बिलकुल पुराने जमानेमें वहां कौन-से लोग बसते थे इसका पक्का निश्चय अभी नहीं हो सका है। यूरोपके लोग जब दक्षिण अफ्रीकामें आबाद हुए उस वक्त वहां हब्शी जातिके लोग रहते थे। यह माना जाता है कि अमरीकामें जिन दिनों गुलामीका चक्र जोर-शोरसे चल रहा था उस वक्त ये हब्शी वहांसे भागकर दक्षिण अफ्रीकामें आ गये और आबाद हुए। उनकी जुदा-जुदा जातियां हैं जैसे जुलू, स्वाजी, बसूटो, बेकवाना इत्यादि। इनकी भाषामें भी भेद हैं। ये हब्शी ही दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासी माने जायंगे। पर दक्षिण अफ्रीका इतना लम्बा चौड़ा देश है कि फिलहाल जितने हब्शी वहां बसते हैं उनसे बीस-तीस गुनी बड़ी आबादी उसमें सुखसे समा सकती है। डर्बनसे केप टाउन रेलके रास्ते लगभग १८०० मीलका सफर है। समुद्रकी राह भी एक हजार मीलसे कमका फासला नहीं है। इन चारों राज्योंका रकबा ४७३००० वर्गमील है।

इस विशाल भूखंडमें १९१४ में हब्शियोंकी आबादी करीब ५० लाख और गोरोंकी करीब १३ लाखके थी। हब्शियोंमें जुलू सबसे ज्यादा कद्दावर और सुंदर कहे जा सकते हैं। हब्शियोंके लिए सुंदर विशेषणका व्यवहार मैंने जान-बूझकर किया है। सफेद चमड़े और नुकीली नाकपर हम रूपका आरोप किया करते हैं। इस बहमको क्षणभरके लिए अलग रख दें तो जुलू लोगोंको गढ़नेमें ब्रह्माने कोई कसर रखी है, यह नहीं जान पड़ेगा। स्त्री-पुरुष दोनों ऊंचे कदके होते हैं छाती अपनी ऊंचाई के अनुपातसे चौड़ी

होती है। सारे शरीरकी रगें सुगठित और खूब मजबूत होती है। इनकी पिंडलियां और भुजाएं भी सदा मांससे भरी हुई और गोलाकार दिखाई देती हैं। कोई स्त्री या पुरुष झुककर या कूबड़ निकालकर चलता हुआ शायद ही कभी दिखाई देता हो। होंठ अवश्य लंबे और मोटे होते हैं पर सारे शरीरके आकारको देखते हुए मैं तो उन्हें तनिक भी बेडौल न कहूंगा। आंखें गोल और तेजस्विनी होती हैं। नाक चपटी और बड़ी होती है पर इतनी ही कि उनके चौड़े मुह पर फबे। उनके सिरके घुंघराले बाल उनकी शीशम-जैसी काली और चमकीली त्वचापर खिल उठते हैं। आप किसी जुलूसे पूछें कि दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाली जातियोंमें सबसे अधिक सुंदर तुम किसे कहोगे तो यह दावा वह अपनी जातिके लिए ही करेगा और इसमें मुझे उसका तनिक भी अज्ञान नहीं दिखाई देता। जो प्रयत्न सैंडो आदि आज यूरोपमें अपने शागिर्दोंकी बाहु छाती आदिके व्यवस्थित विकासके लिए कर रहे हैं वैसे किसी भी प्रयत्नके बिना कुदरती तौरपर ही इस जातिके अंग प्रत्यंग सुदृढ़ और गठे हुए दिखाई देते हैं। प्रकृतिका नियम है कि भूमध्य रेखाके नजदीक रहने वालोंका चमड़ा काला ही होना चाहिए और हम यह मान लें कि प्रकृति जो-जो शक्लें गढ़ती है उसमें सुंदरता होती ही है तो सौंदर्यविषयक अपने संकुचित और एकदेशीय विचारोंसे बच जायं। इतना ही नहीं हिंदुस्तानमें अपने ही चमड़ेका कुछ काला पाकर हमारे मनमें जो अशोभन लज्जा और अरुचि उत्पन्न होती है उससे भी हम मुक्त हो सकते हैं।

ये हब्शी मिट्टी और घासके गुंबददार झोंपड़ोंमें रहते हैं। इन झोंपड़ोंमें एक ही गोल दीवार होती है और ऊपर घासका छप्पर। छप्पर भीतर लगे हुए एक खंभेपर टिका होता है। दरवाजा एक ही होता है और इतना नीचा कि बिना झुके कोई अंदर नहीं जा सकता। यही दरवाजा हवाके आने-जानेका रास्ता होता है। उसमें किवाड़ तो शायद

ही होते हैं। हम लोगोंकी तरह ये लोग भी दीवार और जमीनको मिट्टी और गोबर से लीपते हैं। ऐसा माना जाता है कि ये लोग कोई भी चौकोर चीज नहीं बना सकते। अपनी आंखोंको उन्होंने केवल गोल चीज ही देखना और बनाना सिखाया है। हम प्रकृतिको भूमितिकी सरल रेखाएं, सीधी आकृतियां बनाते नहीं पाते और प्रकृतिके इन निर्दोष भोले-भाले बच्चोंका ज्ञान उनके प्रकृतिके अनुभवपर ही आश्रित होता है।

उनके इस मिट्टीके महलमें साज-सामान भी उसके अनुरूप ही होता है। यूरोपीय सभ्यताके प्रवेशके पहले ये पहनने ओढ़ने सोने-बैठने सबमें चमड़ेका ही उपयोग करते थे। कुरसी-मेज सदूक-पिटारा रखनेको तो इस 'महल' में जगह भी नहीं होती और अंग्रेजीके आधारपर आज भी इनके वर्तन वहां शायद ही होते हैं। अब उनके घरोंमें कबलका प्रवेश हो गया है। ब्रिटिश राज्यके पहुंचनेके पहले हब्शी स्त्री पुरुष लगभग नंगे ही फिरा करते थे। आज भी देहातमें बहुतेरे इसी तरह रहते हैं। गुह्य अंगोंको वे एक चमड़ेसे ढक लेते हैं। कोई-कोई यह भी नहीं करते पर इसका अर्थ कोई पाठक यह न कर लें कि ये लोग अपनी इंद्रियोंको वशमें नहीं रख सकते। जहां एक बड़ा समुदाय किसी रूढ़िसे बंधकर व्यवहार करता हो वहां यह बात बिलकुल मुमकिन है कि दूसरे समुदायको वह रूढ़ि अयोग्य मालूम होती हो फिर भी पहले समुदायको निगाहमें उसमें तनिक भी दोष न हो। इन हब्शियों-को एक दूसरेकी ओर ताकने-झांकनेकी फुरसत ही नहीं होती। भागवतकार कहते हैं कि शुकदेवजी जब नंगी नहाती हुई स्त्रियोंके बीचसे होकर चले गये तो न उनके मनमें तनिक भी विकार उत्पन्न हुआ न उन निष्पाप स्त्रियोंको तनिक भी क्षोभ हुआ या जरा भी शर्म आई। मुझे इसमें कुछ भी अलौकिक नहीं दिखाई देता। हिंदुस्तानमें आज ऐसे मौकेपर हममेंसे कोई भी इतनी स्वच्छता इतनी निर्विकारिताका

अनुभव नहीं कर सकता तो यह कुछ मनुष्य-जातिकी पवित्रताकी सीमा नहीं है, बल्कि हमारे दुर्भाग्यकी निशानी है। हम जो इन लोगोंको जंगली मानते हैं यह तो हमारे अभिमानकी प्रतिध्वनि है। जैसा हम मानते हैं वैसे जंगली वे नहीं हैं।

ये हब्शी जब शहरमें आते हैं तब उनकी स्त्रियोंके लिए यह नियम है कि उन्हें छातीसे घुटनेतकका भाग अवश्य ढक रखना चाहिए। इस कारण उन्हें पसंद न होते हुए भी वैसा कपड़ा लपेटना पड़ता है। इससे दक्षिण अफ्रीकामें इस नापके कपड़ेकी बहुत खपत होती है और ऐसे लाखों कंबल और चादरें हर साल यूरोपसे आती हैं। पुरुषोंके लिए अपनी देहको कमरसे घुटनेतक ढक रखना लाजिमी है। इससे उन्होंने यूरोपके उतारे हुए कपड़े पहननेका चलन चला दिया है। जो यह नहीं करते वे मेखलादार जांघिया पहनते हैं। ये सारे कपड़े यूरोपसे ही आते हैं।

इन लोगोंकी खास खुराक मकई और जब मिल जाय तब मांस है। मसाले वगैरहसे तो खुशकिस्मतीसे ये बिलकुल अनजान हैं। उनके भोजनमें मसाला पड़ा हो या हल्दीका रंग भी आ गया हो तो ये नाक-भौं सिकोड़ेंगे और जो निरे जंगली कहे जाते हैं वे तो उसे छुएंगे भी नहीं। साबित उबाली हुई मकईको थोड़ा नमक मिलाकर एक बखतमें एक सेर खा लेना साधारण जुलूके लिए कोई असाधारण बात नहीं है। मकईके आटेको पानीमें पकाकर उसकी लपसी बनाकर खानेमें वे संतोष मानते हैं। मांस जब मिल जाय तब कच्चा या पक्का उबालकर या भूनकर केवल नमकके साथ खा लेते हैं। मांस चाहे जिस प्राणीका हो उसे खाते उन्हें हिचक नहीं होती।

उनकी भाषाके नाम भी जातिके नाम पर होते हैं। लिखन-कलाका प्रवेश गोरोंके ही द्वारा हुआ है। हब्शी वर्ण-माला-जैसी कोई चीज नहीं है। हालमें रोमन लिपिमें बाइबिल आदि पुस्तकें हब्शी भाषाओंमें छापी गई हैं। जुलू भाषा अत्यन्त मधुर है। अधिकांश शब्दोंके अंतमें आ का उच्चारण

होता है । इससे भाषाकी ध्वनि कानोंको हलकी और मीठी लगती है। मैंने पढ़ा और सुना है कि उसके शब्दोंमें अर्थ और काव्य दोनों होते हैं । जिन थोड़े-से शब्दोंका ज्ञान मुझे अनायास हो गया है उनके आधारपर मुझे यह मत ठीक मालूम होता है । नगरों आदिके यूरोपियनोंके रखे हुए नाम जो मैंने लिये हैं उनके काव्यमय ह्ब्शी नाम भी हैं ही पर वे मुझे याद नहीं रहे। इससे उन्हें नहीं दे सका।

पादरियोंके मतानुसार तो हब्शियोंका न कोई धर्म था और न है पर धर्मको व्यापक अर्थ में लें तो कह सकते हैं कि वे एक ऐसी अलौकिक शक्तिको अवश्य मानते और पूजते हैं जिसे वे खुद पहचान नहीं सकते । इस शक्तिसे वे डरते भी हैं। शरीरके नाशके साथ मनुष्यका सर्वथा नाश नहीं होता इसकी भी उन्हें धुंधली प्रतीति होती है। हम नीतिको धर्मका आधार मानें तो नीतिपालक होनेके कारण उन्हें धर्म निष्ठ भी मान सकते हैं। सच और झूठके भेदको वे पूरी तरह समझते हैं । अपनी स्वाभाविक अवस्थामें वे जिस सीमातक सत्यका पालन करते है गोरे या हम लोग उस सीमातक उसका पालन करते हैं या नहीं इसमें शक है। उनके मंदिर-देवालय नहीं होते । दूसरी जातियोंकी तरह इन लोगोंमें भी बहुत तरहके बहम देखनेमें आते हैं । पाठकोंको यह जानकर अचरज होगा कि शरीर-बलमें दुनियाकी किसी भी जातिसे हेठी न ठहरनेवाली यह कौम वस्तुत इतनी डरपोक इतनी बुजदिल है कि हब्शी अजान गोरे बालकको भी देखकर डर जाता है। कोई उसके सामने तमंचा तान दे तो वह या तो भाग जायगा या ऐसे जड़ बन जायगा कि उसमें भागनेकी शक्ति भी न रहेगी । इसका कारण तो है ही । उसके दिलमें यह बात बैठ गई है कि मुट्ठीभर गोरोंने जो ऐसी बड़ी और जंगली जाति को बसमें कर रखा है यह जरूर कोई जादू होना चाहिए। भाले और तीरसे काम लेना हब्शी बहुत अच्छी तरह जानते थ। वे तो उनसे छीन लिये गये हैं । बंदूक उन्होंने

न कभी देखी न चलाई। जिसको न दियासलाई दिखानी पड़ती है, न एक उंगली हिलानेके सिवा और कोई हरकत करनी पड़ती है फिर भी एक छोटी-सी नली से यकायक आवाज होती है, आग भड़कती है और गोली लगकर क्षणभर में आदमीका काम तमाम कर देती है! यह ऐसा चमत्कार है जो बेचारे हब्शी की समझमें नहीं आ सकता। इससे वह इस चीजको काममें लानेवालेके डरसे हमेशा बदहवास रहता है। उसने और उसके बाप-दादोंने देखा है कि इन गोलियोंने कितने ही असहाय और निरपराध हब्शियोंकी जान ले ली है। यह क्यों और कैसे होता है बहुतेरे हब्शी इसे आज भी नहीं जानते।

इस जातिमें 'सभ्यता' धीरे-धीरे प्रविष्ट होती जा रही है। एक ओरसे भले पादरी ईसामसीहका संदेश जैसा कुछ उन्होंने उसे समझा है उनके पास पहुंचा रहे हैं। उनके लिए मदरसे खोल रहे हैं और उन्हें सामान्य अक्षरज्ञान दे रहे हैं। इनकी कोशिशसे कितने ही चरित्रवान हब्शी भी तैयार हुए हैं पर बहुतेरे जो अक्षरज्ञान और सभ्यतासे परिचित न होनेके कारण अनेक अनीतियोंसे बचे हुए थे आज ढोंगी-पाखंडी भी हो रहे हैं। जो हब्शी 'सभ्यता' के संपर्कमें आ चुके हैं उनमें शायद ही कोई ऐसा हो जो शराबकी बुराईसे बचा हो। उनके तगड़े मस्त शरीरपर जब शराबका भूत सवार होता है तब वे पूरे पागल हो जाते हैं और न करनेके सब काम कर डालते हैं। सभ्यताके साथ-साथ आवश्यकताओंका बढ़ना तो उतना ही पक्का है जितना दो और दो मिलकर चार होना। जरूरत बढ़ानेके लिए हो या उन्हें श्रमका मूल्य सिखानेके लिए, हर हब्शीको 'मुंड-कर' या व्यक्ति-कर (Poll tax) और कुटी-कर (Hut tax) देना पड़ता है। ये कर न लगाये जायं तो यह अपने खेतोंमें रहनेवाली जाति खानोंसे सोना या हीरा निकालनेके लिए जमीनके अंदर सैकड़ों गजकी गहराईमें क्यों उतरने जाय? और इन खानोंके लिए इनका श्रम सुलभ न हो तो सोना और हीरे पृथ्वीके उदरमें ही पड़े रह जायं। वैसे ही इनपर कर लगाये बिना

यूरोपियनोंको नौकर मिलना भी कठिन होगा। इसका फल यह हुआ है कि खानोंके भीतर काम करनेवाले हजारों हब्शियोंको दूसरे रोगोंके साथ-साथ एक प्रकारका क्षय रोग भी हो जाता है जिसे 'माइनर्स थाइसिस' (खानमें काम करनेवालोंका क्षय) कहते हैं। यह रोग प्राणहारी है। इसके पंजेमें पड़नेके बाद विरले ही उभर रहे हैं। ऐसे हजारों आदमी एक खानके अंदर रहें और उनके बाल-बच्चे साथ न हों तो उस दशामें वे कितना संयम रख सकते हैं पाठक इसका सहज ही अनुमान कर सकते हैं। इसके फलस्वरूप पैदा होनेवाले रोगोंके भी ये लोग शिकार हो जाते हैं। दक्षिण अफ्रीकाके विचारशील गोरे भी इस गंभीर प्रश्नपर विचार न करते हों सो बात नहीं है। उनमेंसे कितने ही अवश्य यह मानते हैं कि सभ्यताका असर इस जातिपर कुल मिलाकर अच्छा पड़ा है यह दावा शायद ही किया जा सकता है। इसका बुरा असर तो हर आदमी देख सकता है।

इस महान् देशमें जहाँ ऐसी सरल_निर्दोष जाति बसती थी कोई चार सौ साल पहले वलन्दा लोगोंने पड़ाव डाला। ये गुलाम तो रखते ही थे अपने जावाके उपनिवेशसे कितने ही वलन्दा अपने मलायी गुलामोंको लेकर उस प्रदेशमें दाखिल हुए जिसे आज हम केप कालोनी कहते हैं। ये मलायी लोग मुसलमान हैं। उनमें वलन्दा लोगोंका रक्त और वैसे ही उनके कितने ही गुण भी हैं। वे सारे दक्षिण अफ्रीकामें इक्के-दुक्के बिखरे हुए दिखाई देते हैं पर उनका केन्द्र केप टाउन ही माना जाता है। आज उनमेंसे कितने ही गोरोंकी नौकरी करते हैं और दूसरे स्वतंत्र व्यवसाय करते हैं। मलायी स्त्रियां बड़ी ही मेहनती और होशियार होती हैं। उनकी रहन-सहन आम तौरसे साफ-सुथरी दिखाई देती है। औरतें धुलाई और सिलाईका काम बहुत अच्छा कर सकती हैं। मर्द कोई छोटा-मोटा रोजगार करते हैं। बहुतेरे तांगा-गाड़ी हांकनेका धंधा करके गुजर-बसर करते हैं। कुछने ऊँचे दरजेकी अंग्रेजी शिक्षा भी

प्राप्त की है। उनमेंसे एक डाक्टर अब्दुल रहमान केप टाउनमें मशहूर हैं। वह केप टाउनकी पुरानी धारा-सभामें भी पहुंच गए थे। नये विधानमें प्रधान धारा-सभामें जानेका यह हक छीन लिया गया है।

बलन्दा लोगोंका वर्णन करते हुए बीचमें मलायी लोगोंका जिक्र अपने-आप आ गया। पर अब हम जरा देखें कि बलन्दा लोग किस तरह आगे बढ़े। बलन्दाके मानी डच होते हैं यह मुझे बतानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। ये लोग जितने बहादुर योद्धा थे और हैं उतने ही कुशल किसान थे और आज भी हैं। उन्होंने देखा कि हमारे आसपासका देश खेती के लिए बहुत ही उपयुक्त है। उन्होंने यह भी देखा कि इस देश के असल बाशिंदे सालमें कुछ ही दिन काम करके आसानीसे अपना निर्वाह कर सकते हैं। तब उनसे मजदूरी क्यों न करायें? बलन्दाके पास युद्धकला थी बंदूक थी और दूसरे प्राणियोंकी तरह आदमियोंको भी कैसे बसमें किया जाता है यह जानते थे। उनका विश्वास था कि ऐसा करनेमें धर्मकी कोई बाधा नहीं है। अतः अपने कार्यके औचित्यके विषयमें तनिक भी शंकाशील हुए बिना उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासियोंकी मजदूरीके बलपर खेती आदि करना शुरू कर दिया।

जैसे बलन्दा दुनियामें अपना फैलाव करनेके लिए अच्छी-अच्छी जमीनें ढूंढ रहे थे वैसे ही अंग्रेज भी इस फेरमें फिर रहे थे। अतः धीरे-धीरे अंग्रेज भी यहां पहुंचे। अंग्रेज और डच चचेरे भाई तो हैं ही। दोनोंका स्वभाव एक लोभ एक। एक ही कुम्हारके बनाये हुए मटके जब इकट्ठे होते हैं तो कभी-कभी आपसमें टकराकर फूटते भी हैं। वैसे ही ये दोनों जातियां भी धीरे-धीरे देशमें घुसते और हब्शियोंको बसमें करते हुए एक दूसरेसे टकरा गई। इनमें भी झगड़े हुए, लड़ाइयां भी हुईं। मजूबाकी पहाड़ीपर अंग्रेजोंने हार भी खाई। इस हारका दाग उनके दिलपर रह गया और वह पककर फोड़ा

मन गया। यह फोड़ा १८९९ से १९०२ ई० तक जो जगत प्रसिद्ध युद्ध हुआ उसमें फूटा। लार्ड राबर्ट्सने जब अनरए भोजेको अपने अधीन किया तब उन्होंने स्वर्गीया महारानी विक्टोरियाको यह तार किया— मजूबाका बदला ले लिया। पर इन दानोंके बीच जब पहली (बोअर-युद्ध पहले) मुठ-भेड़ हुई तब बहुतेरे बरंदा लोग अंग्रजो के मातहत हुकूमत भी कबूल करनेको तैयार न थे। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके अज्ञात भीतरी भागमें चले गये। इसीके फलस्वरूप ट्रांसवाल और आरेंज की स्टेटकी उत्पत्ति हुई।

यही बर्न्स या डच लोग दक्षिण अफ्रीकामें बोअरके नामसे पुकारे जाने लगे। उन्होंने अपनी भाषाकी रक्षा उसी तरह चिपका रखकर की है जैसे बच्चा माताके चिपका रहता है। अपनी स्वतंत्रताके साथ अपनी भाषाका अतिशय निकट संबंध है यह बात उनके अन्तरमें अंकित हो गई है। उसपर कितने ही हमले हुए फिर भी वे अपनी भाषाकी रक्षा किये जा रहे हैं। इस भाषाने भी अब ऐसा नया रूप ग्रहण कर लिया है जो यहांके लोगोंके अनुकूल हो। हालैंडके साथ वे अपना निकट संबंध बनाये नहीं रख सके इसमें जैसे संस्कृत से प्राकृत भाषाएं निकलीं वैसे ही डच भाषासे अपभ्रंश डच बोअर लोग बोलने लगे। पर अब वे अपने बच्चोंपर अनावश्यक बोझ डालना नहीं चाहते। इसलिए इस प्राकृत बोलीको स्थायी रूप दे दिया है और यह 'टाल' के नामसे विख्यात है। उसीमें उनकी पुस्तकें लिखी जाती हैं। बच्चोंकी पढ़ाई इसी भाषामें होती है और धारा-सभाके बोअर सदस्य उसीमें भाषण भी करते हैं। यूनियनकी स्थापनाके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामें दोनों भाषाओं 'टाल' या डच और अंग्रेजी को समान पद प्राप्त है यहांतक कि उनके सरकारी गजट और धारा-सभाकी कार्रवाईका दोनों भाषाओंमें प्रकाशित होना जरूरी है।

बोअर लोग सीधे सादे और धर्ममें पक्के निष्ठा रखते

हुआ करते थे। फिर भी ये बहादुर स्त्रियां न झुकीं। अंतमें बादशाह एडवर्डने लार्ड किचनरको लिखा— 'मुझसे यह सहन नहीं हो सकता। बोअर स्त्रियोंको झुकानेका अगर हमारे पास यही इलाज हो तो इसकी बनिस्बत चाहे जैसी भी सुलह कर लेना मैं पसंद करूंगा। आप लड़ाईको जल्दी समेटिये।

इस सारे दुःख-दर्दकी आवाज जब इंगलैंड पहुंची तब ब्रिटिश जनता बहुत दुःखी हुई। बोअरोंकी बहादुरीसे वह आश्चर्यचकित हो रही थी। ऐसी छोटी-सी जाति दुनियाको घेर रखनेवाली सल्तनतके छक्के छुड़ा दे यह बात तो ब्रिटिश जनताके मनमें चुभती ही रहती थी। पर जब उसे इन छावनियोंके भीतर बंद स्त्रियोंका आर्तनाद उन स्त्रियोंके द्वारा नहीं उनके मर्दोंके द्वारा भी नहीं—वे तो रणमें ही जूझ रहे थे—बल्कि उन इक्के-दुक्के उदार चरित अंग्रेज स्त्री-पुरुषोंके जरिये जो उस वक्त दक्षिण अफ्रीकामें मौजूद थे पहुंचा तो उसके अंदर अनुतापका उदय हुआ। स्वर्गीय सर हेनरी कैम्पबेल बैनरमैनने अंग्रेज जनताके हृदयको पहचाना और युद्धके विरुद्ध गर्जना की। स्वर्गीय मीस्टेडने प्रकट रूपसे ईश्वरसे प्रार्थना की कि वह इस युद्धमें अंग्रेजोंको हरा दे और दूसरोंको भी वैसा करनेकी प्रेरणा की। यह दृश्य अद्भुत था। सच्चा दुःख सच्चाईके साथ सहा जाय तो वह पत्थरके दिलको भी पानी कर देता है। यह है इस कष्ट-सहन अर्थात् तपस्याकी महिमा और इसमें ही सत्याग्रहकी कुंजी है।

इसका फल यह हुआ कि फ्रीनिखनकी सुलह हुई और दक्षिण अफ्रीकाके चारों राज्य एक शासन प्रबंधके नीचे आये। यद्यपि इस सुलहकी बात अखबार पढ़नेवाले हर हिंदुस्तानीको मालूम है फिर भी एक-दो बातें ऐसी हैं जिनकी कल्पनातक बहुतोंको होना मुमकिन नहीं। फ्रीनिखनकी सुलह होते ही दक्षिण अफ्रीकाके चारों राज्य एकमें मिल गये हों सो बात नहीं। हरएक की अपनी धारा-सभा थी। उनका

वाले होते हैं। वे बड़े-बड़े खेतों के बीच बसते हैं। उनके खेतोंके विस्तारकी कल्पना हमें नहीं हो सकती। हमारे किसानोंके खेतके मानी होते हैं दो या तीन बीघे जमीन। अकसर इससे भी छोटे होते हैं। उनके खेतोंका स्वरूप यह है कि एक-एक आदमीके पास सैकड़ों-हजारों बीघा जमीन होती है। यह सारी जमीन तत्काल जोत डालनेका लोभ भी इन किसानोंको नहीं होता। कोई उनसे दलील करे तो कहते हैं— पड़ी रहने दो। जिस जमीनको हम न जोतेंगे उसे हमारी संतान जोतेगी।

हरएक बोअर युद्धकलाका पूरा पंडित होता है। वे आपसमें भले ही लड़ते-झगड़ते रहें पर अपनी आजादी उन्हें इतनी प्यारी होती है कि जब उसके ऊपर हमला होता है तो सारे बोअर उसका सामना करनेको जुट जाते हैं और एकजान होकर लड़ते हैं। उन्हें लंबी कवायदकी जरूरत नहीं होती क्योंकि लड़ना सारी जातिका स्वभाव या सहज गुण है। जनरल स्मट्स जनरल डी वेट जनरल हर्टज़ोग तीनों बड़े वकील और बड़े किसान हैं और तीनों वैसे ही बड़े लड़वैया भी हैं। जनरल बोथाके पास नौ हजार एकड़का एक खेत था। खेतीकी सारी पेचीदगियां उन्हें मालूम थीं। सुलहके लिए जब वह यूरोप गये तब उनके बारेमें कहा गया कि भेड़ोंकी परीक्षामें उनके-जैसा कुशल यूरोपमें भी शायद ही कोई हो। यही जनरल बोथा स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरके स्थानापन्न हुए। उन्हें अंग्रेजी अच्छी आती थी फिर भी इंगलैंडमें जब वे बादशाह और मंत्रिमंडलसे मिले तब उन्होंने सदा अपनी मातृ-भाषामें ही बातचीत करना पसंद किया। कौन कह सकता है कि उनका यह आग्रह उचित नहीं था? अपना अंग्रेजीका ज्ञान दिखानेके लिए गलतियां करनेकी जोखिम वह क्यों उठायें? उपयुक्त शब्दकी तलाशमें उनके विचारोंकी शृंखला टूट जाय यह साहस वह किसलिए करें? मंत्रिमण्डल अनजानमें कोई अपरिचित अंग्रेजी मुहावरा बोल जायें वह उसका अर्थ न समझें और कुछका-कुछ जवाब

दे जाय शायद घबरा जाय और यों उनका काम बिगड़ जाय ऐसी संगीन गलती वह क्यों करें ?

बोअर पुरुष जैसे बहादुर और सीधे हैं बोअर स्त्रियाँ भी वैसी ही बहादुर और सरल स्वभावकी होती हैं। बोअर-युद्ध के समय जो बोअर लोगोंने अपना खून बहाया वह बलि वे बोअर स्त्रियोंकी हिम्मत और उनसे मिलनेवाले बढ़ावे के बल-पर ही दे सके। इन स्त्रियोंको न अपना सुहाग उजड़ने का डर था और न भविष्यकी ही चिंता थी। मैं कह चुका हूँ कि बोअर लोग ईसाई हैं और धर्ममें पक्की आस्था रखनेवाले हैं। पर वे हजरत ईसाके नये इकरारनामे(न्यू टेस्टामेंट) को मानते हैं यह नहीं कह सकते। सच पूछिये तो यूरोप ही नये इकरार नामेको कहाँ मानता है ? फिर भी यूरोपमें नये इकरार नामेका आदर करनेका दावा किया ही जाता है गोकि कुछ ही यूरोपवासी ईसामसीहके शांति धर्मको जानते और उसका पालन करते हैं। पर बोअर लोगोंके बारेमें तो कह सकते हैं कि वे नये करारको नाममात्र जानते हैं। पुराने करार (ओल्ड टेस्टामेंट) को वे अवश्य भावपूर्वक पढ़ते और उसमें जो लड़ाइयोंका वर्णन है उसे कंठ करते हैं। हजरत मूसाकी 'दाँत के बदले दाँत और आँख के बदले आँख' की शिक्षाको वे पूरे तौरसे मानते हैं और जैसा मानते हैं वैसा ही आचरण भी करते हैं।

बोअर स्त्रियोंने भी यह समझकर कि अपनी स्वतंत्रताकी रक्षाके खातिर जितना भी दुःख सहन करना पड़े वह धर्मका आदेश है धीरज और आनंदसे सारी मुसीबतें सह लीं। उन्हें झुकानेके लिए स्वर्गीय लार्ड किचनरने कोई उपाय उठा न रखा। उन्हें जुदा-जुदा शिविरों या हातोंमें बंद करके रखा गया। वहाँ उनपर असह्य आपत्तियाँ आईं। खाने-पीनेकी सामान ठंडमें और गरमी धूपमें बेहाल। कोई शराब पीकर बदहवास या बदमाश सैनिक इन असहाय स्त्रियोंपर आक्रमण भी कर बैठता। इन हातोंमें अनेक प्रकारके उपद्रव

हुआ करते थे। फिर भी ये बहादुर स्त्रियां न झुकीं। अंतमें बादशाह एडवर्डने लार्ड किचनरको लिखा—"मुझसे यह सहन नहीं हो सकता। बोअर स्त्रियोंको झुकानेका अगर हमारे पास यही इलाज हो तो इसकी बनिस्बत चाहे जैसी भी सुलह कर लेना मैं पसंद करूंगा। आप लड़ाईको जल्दी समेटिये।

इस सारे दुःख-दर्दकी आवाज जब इंगलैंड पहुंची तब ब्रिटिश जनता बहुत दुःखी हुई। बोअरोंकी बहादुरीसे वह आश्चर्यचकित हो रही थी। ऐसी छोटी-सी जाति दुनियाको घेर रखनेवाली सल्तनतके छक्के छुड़ा दे यह बात तो ब्रिटिश जनताके मनमें चुभती ही रहती थी। पर जब उसे इन बहनोंके भीतर बंद स्त्रियोंका आर्तनाद उन स्त्रियोंके द्वारा नहीं उनके मर्दोंके द्वारा भी नहीं—वे तो रणमें ही जूझ रहे थे—बल्कि इन इक्के-दुक्के उदार चरित अंग्रेज स्त्री-पुरुषोंके जरिये जो उस वक्त दक्षिण अफ्रीकामें मौजूद थे पहुंचा तो उसके अंदर अनुतापका उदय हुआ। स्वर्गीय सर हेनरी केम्पबेल बैनरमैनने अंग्रेज जनताके हृदयको पहचाना और युद्धके विरुद्ध गर्जना की। स्वर्गीय स्टीडने प्रकट रूपसे ईश्वरसे प्रार्थना की कि वह इस युद्धमें अंग्रेजोंको हरा दे और दूसरोंको भी वैसा करनेकी प्रेरणा की। यह दृश्य अद्भुत था। सच्चा दुःख सचाईके साथ सहा जाय तो वह पत्थरके दिलको भी पानी कर देता है। यह है इस कष्ट-सहन अर्थात् तपस्याकी महिमा और इसमें ही सत्याग्रहकी कुंजी है।

इसका फल यह हुआ कि फीनिखनकी सुलह हुई और दक्षिण अफ्रीकाके चारों राज्य एक शासन प्रबंधके नीचे आये। यद्यपि इस सुलहकी बात अखबार पढ़नेवाले हर हिंदुस्तानीको मालूम है फिर भी एक-दो बातें ऐसी हैं जिनकी कल्पनातक बहुतोंको होना मुमकिन नहीं। फीनिखनकी सुलह होते ही दक्षिण अफ्रीकाके चारों राज्य एकमें मिल गये हों सो बात नहीं। हरएक की अपनी धारा-सभा थी। उनका

लार्ड मिलनरने इसके जवाबमें कहा कि मैंने अमरल बोथा को इस तरहका कोई विश्वास नहीं दिलाया था। बोअर जनता ज्यों-ज्यों विश्वासकी अधिकारिणी सिद्ध होती जायगी त्यों-त्यों उन्हें स्वतन्त्रता मिलती जायगी। अब इन दोनोंके बीच कौन इंसाफ करे? कोई किसीको पंच मान लेनेकी बात कहे तो भी जनरल बोथाको यह क्यों मंजूर होने लगी? इस अवसरपर बड़ी सरकारने जो न्याय किया वह उसको संपूर्ण रीतिसे शोभा देनेवाला था। उसने यह मंजूर किया कि विपक्षने—उसमें भी निर्बल पक्षने—समझौतेका जो अर्थ समझा हो वह अर्थ सबल पक्षको स्वीकार करना ही चाहिए। न्याय और सत्यकी नीतिसे तो सदा यही अर्थ ठीक होता है। अपने कथनका मैंने अपने मनमें चाहे जो अर्थ रखा हो फिर भी मुझे मानना चाहिए कि उसका जो असर मुझसे या पढ़नेवालेके मनपर पड़ता हो उसी अर्थमें मैंने अपनी बात कही या लेख लिखा। इस सुनहले नियमका पालन हम व्यवहारमें अक्सर नहीं करते इसीसे बहुत-से विवाद पैदा होते हैं और सत्यके नामपर अर्धसत्य—वस्तुतः डेढ़ असत्य—काममें लाया जाता है।

इस प्रकार जब सत्यकी—यानी यहां जनरल बोथाकी पूरी विजय हुई तब वे काममें जुट गये। इसके फलस्वरूप सब राज्य इकट्ठे हो गये और दक्षिण अफ्रीकाको संपूर्ण स्वाधीनता मिल गई। उसका झंडा यूनियन जैक है। नक्शेमें इस प्रदेशका रंग लाल है। फिर भी दक्षिण अफ्रीका पूरे तौरपर स्वतन्त्र है, यह माननेमें तनिक भी अतिशयता नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य दक्षिण अफ्रीकाका कारबार करनेवालोंकी रजामंदीके बिना वहांसे एक पाई भी नहीं ले सकता। इतना ही नहीं ब्रिटिश मंत्रियोंने स्वीकार कर लिया है कि दक्षिण अफ्रीका ब्रिटिश झंडेको उतार फेंकना और नामसे भी स्वतन्त्र हो जाना चाहे तो उसे कोई रोकनेवाला नहीं है। और अगर वहांके गोरोंने अबतक ऐसा कदम नहीं उठाया तो इसके सबल कारण हैं। एक तो यह कि बोअर जनताके नेता चतुर और समझदार हैं।

ब्रिटिश साम्राज्यके साथ इस तरहकी साझेदारी या संबंध जिसमें खुद उन्हें कुछ भी खोना न पड़े वे रखें तो इसमें कोई दोष नहीं। पर इसके सिवा दूसरा व्यावहारिक कारण भी है। और वह यह कि नेटालमें अंग्रेजोंकी संख्या अधिक है। केप कॉलोनी में अंग्रेजोंकी संख्या अधिक है पर बोअर लोगोंसे ज्यादा नहीं है और ओरेंज फ्रीस्टेटमें केवल अंग्रेजोंका ही प्रभाव है। इसलिए बोअर जाति सारे दक्षिण अफ्रीकामें स्वतंत्र प्रजातंत्र राज्य स्थापित करना चाहे तो यह घरमें ही झगड़ा खड़ा कर लेना है और शायद गृहयुद्ध भी भड़क उठे। इसीसे दक्षिण अफ्रीका आज भी ब्रिटिश उपनिवेश कहलाता है।

यूनियनका विधान किस तरह बना यह भी जानने लायक बात है। चारों राज्योंकी धारा-सभाओंने एकमत होकर यूनियन संयुक्तराज्यका विधान बनाया। ब्रिटिश पार्लमेंट को उसे अक्षरशः स्वीकार कर लेना पड़ा। आम सभाके एक सदस्यने उसके एक व्याकरण-दोषकी ओर ध्यान खींचकर गलत शब्द निकाल देनेकी सलाह दी। स्वर्गीय सर हेनरी कैम्पबेल बनरमैनने इस सुझावको नामंजूर करते हुए कहा कि राज्य-व्यवस्था शुद्ध व्याकरणसे नहीं चला करती। यह विधान ब्रिटिश मंत्रिमंडल और दक्षिण अफ्रीकाके मंत्रियोंमें मशवरा होकर तैयार हुआ है। उसका व्याकरण-दोषतक दूर करनेका अधिकार ब्रिटिश पार्लमेंटके लिए नहीं रखा गया है। फलतः यह विधान ज्यों-का-त्यों आम-सभा और उमरांव सभा दोनोंको मंजूर करना पड़ा।

इस प्रसंगमें एक तीसरी बात भी उल्लेखनीय है। विधान में कितनी ही धाराएं ऐसी हैं, जो तटस्थ व्यक्तिको अवश्य बेकार मालूम होंगी। उनके कारण खर्च भी बहुत बढ़ा है। यह दोष विधान बनानेवालेकी दृष्टिके बाहर नहीं था पर उनका उद्देश्य पूर्णता प्राप्त करना नहीं था बल्कि कुछ घट बढ़कर एकमत होना और अपने प्रयत्नको सफल करना था। इसीसे इस वक्त यूनियनकी चार राजधानियां मानी जाती हैं,

क्योंकि उपराज्योंमेंसे कोई भी अपनी राजधानीका महत्व छोड़ देनेको तैयार नहीं है। चारों राज्योंकी स्थानीय धारा सभाएं भी कायम रखी गई हैं। चारों राज्योंको गवर्नर जैसा कोई अधिकारी भी चाहिए ही। इससे चार प्रांतीय शासक स्वीकार किये गये हैं। हर आदमी समझता है कि चार स्थानीय धारा-सभाएं चार राजधानियां और चार हाकिम बकरीके गलेके स्तनकी तरह निरर्थक और निरे आडंबररूप हैं। पर दक्षिण अफ्रीकाके व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञोंने इसकी परवा न की। इस प्रबंधमें आडंबर था और खर्च बढ़ता था। फिर भी चारों राज्योंका एक हो जाना वांछनीय था। इससे उन्होंने बाहरी दुनियाकी नुक्ताचीनीकी चिंता न कर जो उन्हें ठीक मालूम होता था वह किया और ब्रिटिश पार्लामेंटसे उसे मंजूर कराया।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीकाका अतिशय संक्षिप्त इतिहास पाठकोंकी जानकारीके लिए मैंने देनेका यत्न किया है। मुझे जान पड़ा कि इसके बिना सत्याग्रहके महान् संग्रामका रहस्य नहीं समझाया जा सकेगा। अब मूल विषयपर आनेके पहले हमें यह देखना है कि इस देशमें हिंदुस्तानी कैसे आये और सत्याग्रह-कालके पहले अपने ऊपर आनेवाली मुसीबतोंसे किस तरह जूझे।

२

दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंका आगमन

पिछले प्रकरणमें हम यह देख चुके कि नेटालमें अंग्रेज किस तरह आ बसे। उन्होंने जुलू लोगोंसे कुछ हक हासिल किये। अनुभवसे उन्होंने देखा कि नेटालमें ईख, चाय और कहवेकी फसल खूब अच्छी हो सकती है। बड़े पैमानेपर ईख उपजानेके लिए हजारों मजदूर होने चाहिए। दस-बीस

अंग्रेज-कुटुंब इस मददके बिना ऐसी फसलें नहीं उपजा सकते। अत उन्होंने हब्शियोंको काम करनेके लिए ललचाया और डराया भी पर अब गुलामीका कानून नहीं रह गया था। इससे सफलताके लिए जितना चाहिए था उतना दबाव वे हब्शियोंपर न डाल सके। हब्शी ज्यादा मेहनत करनेका आदी नहीं। छ महीनेकी मामूली मेहनतसे वह मजेमें गुजर कर सकता है। फिर किसी मालिकके साथ वह लंबी मुद्दत के लिए क्यों बंधे? और जबतक पक्के बारहमासी मजदूर न मिलें तबतक अंग्रेज अपना अभीष्ट सिद्ध न कर सकते थे। अत उन लोगोंने भारत-सरकारके साथ लिखा-पढ़ी शुरू की और हिंदुस्तान से मजदूरोंकी मदद मांगी। भारत-सरकार ने नेटालकी मांग मंजूर की और हिंदुस्तानी मजदूरोंका पहला जहाज १८६० की १६-वीं नवबरको नेटाल पहुचा। दक्षिण अफीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें यह तारीख महत्त्व पूर्ण है क्योंकि इस पुस्तक और इसके विषयका मूल इसी घटनामें है।

मेरे विचारसे भारत-सरकारने यह मांग मंजूर करनेमें भलीभांति सोचा-विचारा नहीं। वहांके अंग्रेज अधिकारी जाने-बेजाने नेटालके अपने भाइयोंकी ओर झुके। अवश्य ही जहांतक हो सकता था मजदूरोंके बचावकी शर्तें उन्होंने इकरारनामेमें दाखिल करा दीं और उनके खाने-पीनेका सामान्य सुभीता भी करा दिया पर यों दूर देशको गये हुए अपढ़ मज दूरोंपर कोई कष्ट पड़े तो वे उससे कैसे छुटकारा पा सकेंगे इसका पूरा खयाल तो उन्हें नहीं रहा। उनके धर्मका क्या होगा, अपनी नीतिकी रक्षा वे कैसे करेंगे इसका तो विचार भी नहीं किया गया। अधिकारियोंने यह भी न सोचा कि यो कानूनमें गुलामी उठ चुकी है पर मालिकोंके दिलसे तो दूसरोंको गुलाम बनानेका लोभ अभी नहीं मिटा है। उन्हें यह समझना चाहिए था पर उन्होंने नहीं समझा कि ये मजदूर दूर देशमें आकर एक बंधी मुद्दतके लिए गुलाम हो

क्योंकि उपराज्योंमेंसे कोई भी अपनी राजधानीका महत्व छोड़ देनेको तैयार नहीं है। चारों राज्योंकी स्थानीय धारा सभाएं भी कायम रखी गई हैं। चारों राज्योंको गवर्नर जैसा कोई अधिकारी भी चाहिए ही। इससे चार प्रांतीय शासक स्वीकार किये गये हैं। हर आदमी समझता है कि चार स्थानीय धारा-सभाएं, चार राजधानियां और चार हाकिम बकरीके गलेके स्तनकी तरह निरर्थक और निरे आडंबररूप हैं। पर दक्षिण अफ्रीकाके व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञोंने इसकी परवा न की। इस प्रबंधमें आडंबर था और खर्च बढ़ता था। फिर भी चारों राज्योंका एक हो जाना वांछनीय था। इससे उन्होंने बाहरी दुनियाकी नुक्ताचीनीकी चिंता न कर जो उन्हें ठीक मालूम होता था वह किया और ब्रिटिश पार्लमेंटसे उसे मंजूर कराया।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीकाका अतिशय संक्षिप्त इतिहास पाठकोंकी जानकारीके लिए मैंने देनेका यत्न किया है। मुझे जान पड़ा कि इसके बिना सत्याग्रहके महान् संग्रामका रहस्य नहीं समझाया जा सकेगा। अब मूल विषयपर आनेके पहले हमें यह देखना है कि इस देशमें हिंदुस्तानी कैसे आये और सत्याग्रह-कालके पहले उनपर आनेवाली मुसीबतोंसे किस तरह जूझे।

२

दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंका आगमन

पिछले प्रकरणमें हम यह देख चुके कि नेटालमें अंग्रेज किस तरह जा बसे। उन्होंने जुलू लोगोंसे कुछ हक हासिल किये। अनुभवसे उन्होंने देखा कि नेटालमें ईख चाय और कहवेकी फसल खूब अच्छी हो सकती है। बड़े पैमानेपर इन्हें उपजानेके लिए हजारों मजदूर होने चाहिए। दस-बीस

अंग्रेज-मजदूर इस मददके बिना ऐसी फसलें नहीं उपजा सकते। अत उन्होंने हब्शियोंको काम करनेके लिए ललचाया और डराया भी पर अब गुलामीका कानून नहीं रह गया था। इससे सफलताके लिए जितना चाहिए था उतना दबाव व हब्शियोंपर न डाल सके। हब्शी ज्यादा मेहनत करनेका आदी नहीं। छ महीनेकी मामूली मेहनतसे वह मजेमें गुजर कर सकता है। फिर किसी मालिकके साथ वह लबी मुद्दत के लिए क्यों बंधे? और जबतक पक्के बारहमासी मजदूर न मिलें तबतक अंग्रेज अपना अभीष्ट सिद्ध न कर सकते थे। अत उन लोगोंने भारत-सरकारके साथ लिखा-पढ़ी शुरू की और हिंदुस्तान से मजदूरोंकी मदद मांगी। भारत-सरकार ने नेटालकी मांग मजूर की और हिंदुस्तानी मजदूरोंका पहला जहाज १८६ की १६-वीं नवबरको नेटाल पहुचा। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें यह तारीख महत्व पूर्ण है, क्योंकि इस पुस्तक और इसके विषयका मूल इसी घटनामें है।

मेरे विचारसे भारत-सरकारने यह मांग मजूर करनेमें भलीभांति सोचा-विचारा नहीं। यहांके अंग्रेज अधिकारी जाने-बेजाने नेटालके अपने भाइयोंकी ओर झुके। अवश्य ही जहांतक हो सकता था मजदूरोंके बचावकी शर्तें उन्होंने इकरारनामेमें दाखिल करा दीं और उनके खाने-पीनेका सामान्य सुभीता भी करा दिया पर यों दूर देशको गये हुए अपढ़ मज दूरोंपर कोई कष्ट पड़े तो वे उससे कैसे छुटकारा पा सकेंगे इसका पूरा खयाल तो उन्हें नहीं रहा। उनके धर्मका क्या होगा, अपनी नीतिकी रक्षा वे कैसे करेंगे इसका तो विचार भी नहीं किया गया। अधिकारियोंने यह भी न सोचा कि जो कानूनमें गुलामी उठ चुकी है पर मालिकोंके दिलसे तो दूसरोंको गुलाम बनानेका लोभ अभी नहीं मिटा है। उन्हें यह समझना चाहिए था पर उन्होंने नहीं समझा कि ये मजदूर दूर देशमें आकर एक बंधी मुद्दतके लिए गुलाम हो

जायंगे। सर विलियम विलसन हंटरने जिन्होंने इस स्थितिका गहरा अध्ययन किया था इसकी तुलना करते हुए दो शब्दों या शब्दसमूहका व्यवहार किया था। नेटालके ही भारतीय मजदूरोंके बारेमें लिखते हुए एक बार उन्होंने लिखा कि यह आधी गुलामीकी स्थिति है। दूसरे वक्त अपने पत्रके अंदर उन्होंने इसका वर्णन यह कहकर किया कि यह स्थिति गुलामीकी हदके पास पहुंच रही है—उससे मिलती-जुलती है। नेटालके एक कमीशनके सामने गवाही देते हुए वहांके बड़े-से-बड़े यूरोपियन—स्वर्गीय श्री एस्कम्बने भी यही बात कबूल की। ऐसे बहुतसे सबूत तो नेटालके अग्रगण्य गोरोंके मुहसे—उनके बयानों से ही लिये जा सकते हैं। उन बयानोंमेंसे अधिकांश उस अरजीमें शामिल कर लिये गये हैं जो इस बारेमें भारत-सरकारके पास भेजी गई थी। पर होनहार होकर ही रही और जो स्टीमर इन मजदूरोंको नेटाल ले गया वह सत्याग्रहके महान वृक्षका बीज भी अपने साथ ले गया।

मजदूरोंको नेटालके दलाल हिंदुस्तानियोंने किस तरह ठगा कैसे उनके जालमें फसकर ये लोग नेटाल पहुंचे वहां पहुंचनेपर उनकी आंखें कैसे खुलीं आंख खुल जानेपर भी ये नेटालमें क्यों बने रहे कैसे उनके पीछे दूसरे भी वहां पहुंचे वहां पहुंचकर उन्होंने धर्म और नीतिके सारे बंधन कैसे तोड़ फेंके अथवा ये बंधन खुद टूट गये कैसे विवाहिता पत्नी और वेश्याके बीचका भेदतक नहीं रहा इस सबकी कहानी तो इस छोटी-सी पुस्तकमें लिखी ही नहीं जा सकती।

इन मजदूरोंको नेटालमें एग्रिमेन्टमें गये हुए मजदूर कहते हैं। इनसे ये अपने-आपको 'गिरमिटिया' कहने लगे। इसलिए आगसे हम 'एग्रिमेंट' को 'गिरमिट' और उसके अंदर गये हुए मजदूरोंको 'गिरमिटिया' कहेंगे।

नेटालमें गिरमिटियोंके जानेकी खबर जब मारिशस पहुंची तब इस तरहके मजदूरोंसे संबंध रखनेवाले हिंदुस्तानी व्यापारी

वहां जानेको ललचाये। मारिशस नेटाल और हिंदुस्तानके बीचमें पड़ता है। उस देशमें हजारों हिंदुस्तानी मजदूर और व्यापारी बसते हैं। उनमेंसे एक व्यापारी स्वर्गीय सेठ अबूबकर आमदने नेटालमें दुकान खोलनेका इरादा किया। इस वक्त नेटालके अंग्रेजोंको हिंदुस्तानी व्यापारी क्या कर सकते हैं इसका पता नहीं था इसकी परवा भी नहीं थी। गिरमिटियोंकी मददसे वे ईख चाय कहवे वगैरहकी नफा देनेवाली फसल उपजा सके। ईखकी शक्कर बनाकर इतने थोड़े समयमें छोटे पैमानेपर दक्षिण अफ्रीकाको ये शक्कर चाय और कहवा देने लगे कि देखकर अचरज हो। अपनी कमाईसे उन्होंने महल खड़े किये और सचमुच जंगलमें मंगल कर दिया। ऐसे समय सेठ अबूबकर-सरीखा अच्छा भला और चतुर व्यापारी उनके बीचमें आ बसे तो यह उन्हें क्या न खटकता? फिर इनके साथ तो एक अंग्रेज भी साथी हो गया! सेठ अबूबकरने अपना व्यापार चलाया जमीन खरीदी और उनके अच्छा पैसा कमाने की खबर उनके वतन पोरबंदर और उसके आस पासके गांवोंमें फैली। फलतः दूसरे मेमन नेटाल पहुंचे। उनके पीछे सूरतकी ओरके बोहरे भी पहुंचे। उन्हें मुनीम तो चाहिए ही। अतः गुजरात काठियावाड़के हिंदू मुनीम भी वहां पहुंचे।

इस प्रकार नेटालमें दो वर्गके हिंदुस्तानी बसे—१ स्वतंत्र व्यापारी और उनके स्वतंत्र कमचारी और २ गिरमिटिया। कुछ दिनोंमें गिरमिटियोंके बाल-बच्चे हुए। गिरमिटके कानूनके अनुसार उनकी संतान यद्यपि मजदूरी करनेके लिए बंधी नहीं थी फिर भी इस कानूनकी कुछ कठोर धाराओंके अधीन तो थी ही। गुलामीका दाग गुलामकी औलादको लगे बिना कैसे रहता? ये गिरमिटिया पांच बरसके इकरारपर आते थे। पांच साल पूरे हो जानेपर वे मजदूरी करनेको बंधे नहीं थे। उन्हें खुली मजदूरी या व्यापार करना और नेटालमें स्थायी रूपसे बसना हो तो इसका उन्हें हक था। कुछने इस अधिकार

का उपयोग किया, कुछ हिंदुस्तान लौट आये। जो नेटालमें रह गये वे 'फ्री इंडियंस' कहलाने लगे। हम उन्हें 'गिरमिट मुक्त' या थोड़ेमें 'मुक्त हिंदुस्तानी' कहेंगे। इस अन्तरको समझ लेना जरूरी है क्योंकि जो अधिकार पूर्ण स्वतंत्र भारतीय जिनका जिक्र ऊपर किया गया है भोग रहे थे वे सभी इस बंधनसे मुक्त हुए हिंदुस्तानियोंको प्राप्त नहीं थे। जैसे उन्हें एकसे दूसरी जगह जाना हो तो उनके लिए परवाना लेना जरूरी था। वे ब्याह करें और चाहते हों कि वह कानूनसे जायज माना जाय तो जरूरी था कि गिरमिटियोंकी रक्षाके लिए नियुक्त अधिकारी (प्रोटेक्टर आव इंडियन इमिग्रांट्स) के दफ्तरमें जाकर उसे दर्ज करायें आदि। इनके सिवा दूसरे भी कठोर अंकुश उनपर थे।

ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें १८८०-९० में बोअर लोगोंके प्रजातंत्र राज्य थे। प्रजातंत्र राज्यका अर्थ भी यहाँ स्पष्ट कर देना जरूरी है। प्रजातंत्र यानी गोरातंत्र। हब्शी जनता का उसमें कुछ लेना-देना हो ही नहीं सकता था। हिंदुस्तानी व्यापारियोंने देखा कि हम केवल गिरमिटिया और गिरमिट मुक्त हिंदुस्तानियोंमें ही अपना रोजगार कर सकते हों ऐसी बात नहीं है। हम हब्शियोंके साथ भी व्यापार कर सकते हैं। हब्शी लोगोंके लिए हिन्दुस्तानी व्यापारी बड़े सुभीतेकी चीज साबित हुए। गोरे व्यापारियोंसे वे बहुत डरा करते थे। गोरा व्यापारी उनके साथ व्यापार करना तो चाहता था पर हब्शी ग्राहक उनसे यह आशा रख ही नहीं सकता था कि वह मीठी जबानसे उसे बुलायेगा। अपने पैसेके बदलेमें पूरा माल पा जाता तो वह धन्य भाग समझता। पर कुछको यह कड़ुवा अनुभव भी हुआ कि चार शिलिंगकी चीज लेनी है और दुकानदारके हाथमें एक पौंडका सिक्का रख दिया पर उसे १६ के बदले ४ शिलिंग ही वापस मिले या कुछ भी न मिला। गरीब ग्राहक अधिक माँग हिसाबकी गलती दिखाये तो बदलेमें भद्दी गालियाँ पाये। इतनेसे ही छूट जाय तो भी

प्रसीनसा समझिये नहीं तो गालीके साथ घूसा या लात भी मिलती। मेरे कहनेका यह मतलब हर्गिज नहीं कि सभी अंग्रेज व्यापारी ऐसा करते हैं। पर ऐसी मिसालें काफी तादादमें मिलती हैं, यह तो जरूर कहा जा सकता है। इसके विपरीत हिंदुस्तानी व्यापारी हब्शी ग्राहकको मीठी बोलीसे तो बुलाता ही है, उसके साथ हँसकर बात भी करता है। हब्शी भोला होता है। वह चाहता है कि दुकानके अंदर जाकर चीजोंको देखे-भाले। हिंदुस्तानी व्यापारी इस सबको सह लेता है। यह सही है कि वह परमार्थ दृष्टिसे ऐसा नहीं करता इसमें उसकी स्वार्थदृष्टि होती है। मौका मिल जाय तो हिंदुस्तानी व्यापारी हब्शी ग्राहकको ठगनेसे भी नहीं चूकता पर हब्शियोंमें भारतीय व्यापारीकी प्रियताका कारण उसकी मिठास—उसका मधुर व्यवहार है। फिर हब्शी हिंदुस्तानी व्यापारीसे डरता तो कभी नहीं। उल्टी ऐसी मिसालें मौजूद हैं कि किसी हिंदुस्तानी दुकानदारने हब्शी ग्राहकको ठगनेकी कोशिश की और वह जान गया तो उसके हाथों उस व्यापारी की मरम्मत भी हो गई। गालियाँ तो उसे अक्सर मिला करती हैं। इस प्रकार हब्शी और हिंदुस्तानीके संबंधमें डरनेका कारण हिंदुस्तानीके लिए ही होता है। अंतमें इसका फल यह हुआ कि भारतीय व्यापारीके लिए हब्शियोंकी ग्राहकी बहुत लाभजनक सिद्ध हुई। हब्शी तो सारे दक्षिण अफ्रीकामें फैले हुए हैं ही। हिंदुस्तानी व्यापारियोंने सुन रखा था कि ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें बोअर लोगोंके बीच भी व्यापार किया जा सकता है। बोअर सीधे भोले और दिखावेसे दूर रहनेवाले होते हैं। हिंदुस्तानीकी दुकानसे सौदा खरीदने में उन्हें शर्म नहीं लगती। अतः कितने ही हिंदुस्तानी व्यापा-रियोंने ट्रांसवाल और फ्री स्टेटकी ओर भी प्रयाण किया। उन्होंने वहां दुकानें खोलीं। उन दिनों वहां रेलें आदि नहीं थीं। इसलिए खूब अधिक नफा मिल सकता था। व्यापारियोंका खयाल सही निकला। बोअरों और हब्शियोंमें उनका माल

सूब बिकने लगा। रह गई केप कॉलोनी। वहां भी कितने ही हिंदुस्तानी व्यापारी पहुंच गये और अच्छी खासी कमाई करने लगे। इस प्रकार छोटी-छोटी संस्थाओंमें चारों उपनिवेशोंमें हिंदुस्तानी बंट गये और तत्काल समस्त स्वतंत्र भारतीयोंकी तादाद चालीससे पचास हजारके बीच और गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोंकी एक लाख होनेका अंदाजा किया जाता है। ये पंक्तियां लिखते समय इस संख्यामें मुमकिन है कुछ कमी हुई हो पर वेशी हरगिज नहीं हुई है।

४
मुसीबतोंका सिंहावलोकन—१

नेटाल

नेटालके गोरे मालिकोंको महज गुलाम दरकार थे। ऐसे मजदूर वे नहीं चाहते थे जो नौकरी करनेके बाद आजाद होकर उनके साथ थोड़ी-सी भी प्रतियोगिता कर सकें। ये गिरमिटिया तो इसीलिए नेटाल गये थे कि हिंदुस्तानमें अपनी खेती-बारी आदिमें बहुत सफल नहीं हो सके थे फिर भी ऐसे नहीं थे कि खेतीका कुछ भी ज्ञान न रखते हों या जमीन और खेतीकी कीमत न समझते हों। उन्होंने देखा कि नेटालमें अगर हम साग भाजी भी बोयें तो अच्छी उपज कर सकते हैं और अगर जमीनका एक छोटा-सा टुकड़ा भी ले लें तो उससे और ज्यादा पैसा कमा सकते हैं। अतः बहुत-से गिरमिटिया जब नौकरीके बंधनसे मुक्त हुए तब कोई-न-कोई छोटा-मोटा धंधा करने लग गये। इससे कुल मिलाकर तो नेटाल-जैसे देशमें बसनेवालोंको लाभ ही हुआ। अनेक प्रकारकी साग सब्जियां जो कुशल किसानोंके अभावके कारण अबतक पैदा नहीं होती थीं अब उपजने लगीं। जो चीजें जहां-तहां थोड़ी-बहुत उपजती थीं वे अब अधिक मात्रामें मिलने लगीं। इससे

साग-सब्जीका भाव एकबारगी गिर गया। पर यह बात पैसेवाले गोरोंको न रुची। उन्होंने सोचा कि आजतक जिस चीजको हम अपना इजारा[1] मानते थे उसमें अब हिस्सा बटाने वाले पैदा हो गये। इससे इन गरीब गिरमिटियोंके विरुद्ध आंदोलन आरंभ हुआ। पाठकोंको यह जानकर अचरज होगा कि गोरे एक ओर तो ज्यादा-से-ज्यादा मजदूर मांग रहे थे हिंदुस्तानसे जितने गिरमिटिया आते वे तुरत खप जाते और दूसरी ओर जो मजदूर गिरमिटसे मुक्त होते जाते उनपर तरह-तरहके अंकुश रखनेके लिए आंदोलन चल रहा था। यह था उनकी होशियारी और जीतोड़ मेहनतका मुआवजा !

आंदोलनने कितने ही रूप धारण किये। एक पक्षने यह मांग पेश की कि जो गिरमिटिया गिरमिटसे मुक्त हो चुके हैं वे हिंदुस्तान लौटा दिये जायं और पुराना इकरारनामा बदलकर नये इकरारनामेमें नये आनेवाले मजदूरोंसे यह शर्त लिखा ली जाय कि गिरमिटसे मुक्त होनेपर वे या तो हिंदुस्तान लौट जायगे या फिरसे गिरमिटमें दाखिल हो जायंगे। दूसरे पक्षने यह मत प्रकट किया कि गिरमिटसे छुटकारा पानेपर वे नया इकरारनामा लिखना पसंद न करें तो उनसे भारी वार्षिक 'व्यक्ति-कर' लिया जाय। दोनों दलोंका मतलब तो एक ही था कि जैसे भी हो गिरमिटियावर्ग किसी भी दशामें नेटाल-में स्वतंत्र होकर न रह सके। कोलाहल इतना बढ़ा कि अंतमें नेटालकी सरकारने एक कमीशन नियुक्त कर दिया। दोनों पक्षोंकी मांग सोलह आने गैरवाजिब थी और गिरमिटियोंकी उपस्थिति आर्थिक दृष्टिसे संपूर्ण जनताके लिए सब प्रकार लाभदायक थी। इसलिए कमीशनके सामने जो स्वतंत्र गवा हियां हुई वे उक्त दोनों पक्षोंके विरुद्ध थीं। फलत तात्का लिक परिणाम तो विरुद्ध पक्षकी दृष्टिसे कुछ भी न हुआ पर जैसे आग बुझ जानेके बाद अपना कुछ निशान छोड़ ही जाती है वसे ही यह आंदोलन भी नेटाल-सरकारपर अपनी

1 एकाधिकार।

छाप छोड़ गया। नेटालकी सरकारके मानी थे खासतौरसे धनिक वर्गकी हिमायती सरकार! अतः भारत-सरकारके साथ उसका पत्र-व्यवहार आरंभ हुआ और दोनों पक्षोंके सुझाव उसके पास भेजे गये। पर हिंद सरकार यकायक ऐसा सुझाव कैसे स्वीकार कर सकती थी जिससे गिरमिटिए हमेशाके लिए गुलाम बन जाते? हिंदुस्तानियोंको गिरमिटमें बांधकर इतनी दूर भेजनेका एक कारण या बहाना यह था कि गिरमिट की मियाद पूरी होनेपर गिरमिटिए आजाद होकर अपनी शक्तिका पूर्ण विकास और उस अनुपातसे अपनी आर्थिक स्थितिको सुधार सकेंगे। नेटाल इस वक्त भी 'क्राउन कॉलोनी' (शाही उपनिवेश) था और ऐसे उपनिवेशोंके शासन प्रबंधके लिए उपनिवेश-विभाग भी पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता था। इसलिए नेटालको अपनी अन्यायपूर्ण इच्छा पूरी होनेमें मदद नहीं मिल सकती थी। इससे और ऐसे ही दूसरे कारणोंसे नेटालमें उत्तरदायी शासनाधिकार प्राप्त करनेका आंदोलन आरंभ हुआ। १८९३ में यह अधिकार उसे मिल गया। अब नेटालमें बल आया। उपनिवेश-विभागके लिए भी अब नेटालकी मांगोंको वे कैसी ही क्यों न हों मंजूर कर लेना अधिक कठिन नहीं रहा। नेटालकी इस नई यानी जवाब देह सरकार की ओरसे हिंदुस्तानकी सरकारसे मशवरा करनेके लिए राजदूत भेजे गये। उनकी मांग यह थी कि हरएक गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानीपर २५ पौंड यानी ३७५) रु॰ का वार्षिक व्यक्ति-कर लगाया जाय। इसके मानी यह होते थे कि कोई भी हिंदुस्तानी मजदूर यह कर अदा न कर सके और फलतः आजाद होकर नेटालमें न रह सके। तत्कालीन वाइसराय लार्ड एल्गिनको यह प्रस्ताव बहुत भारी लगा और अन्तमें उन्होंने ३ पौंडका वार्षिक व्यक्ति-कर मंजूर किया। गिरमिटियाकी कमाईके हिसाबसे तीन पौंडके मानी उसकी लगभग दो महीनेकी कमाई होते थे। यह कर केवल मजदूरपर ही नहीं था। उसकी स्त्री तेरह बरससे ऊपरकी

लड़की और सोलहसे ऊपरके लड़केको भी देना था। ऐसा मजदूर शायद ही हो जिसके स्त्री और दो बच्चे न हों। अतः मोटे हिसाबसे हर मजदूरको १२ पौंड वार्षिक कर अदा करना था। यह कर कितना कष्टदायक हो गया इसका वर्णन नहीं हो सकता। उस दुःखको केवल वही जान सकता है जिसने उसका अनुभव किया हो या थोड़ा-बहुत वह समझ सकता है जिसने उसे अपनी आंखों देखा हो। नेटाल-सरकारके इस कार्यका भारतीय जनताने कसकर विरोध किया। बड़ी (ब्रिटिश) और भारत-सरकारके पास अर्जियां भेजी गईं। पर इस आंदोलनका नतीजा इससे अधिक और कुछ न निकला कि २५ के ३ पौंड हो गये। गिरमिटिया बेचारे खुद तो इस मामलेमें क्या कर सकते थे? आंदोलन तो महज हिंदुस्तानी व्यापारीवर्गने देशके दर्दसे कहिये या परार्थ दृष्टिसे किया था।

जो सलूक गिरमिटियोंके साथ किया गया वही स्वतंत्र भारतीयोंके साथ भी हुआ। नेटालके गोरे व्यापारियोंने उनके खिलाफ भी मुख्यतः इन्हीं कारणोंसे आंदोलन चलाया। हिंदुस्तानी व्यापारी अच्छी तरह जम गये थे। उन्होंने नगरके अच्छे भागोंमें जमीनें खरीद ली थीं। गिरमिटसे छूटे हुए हिंदुस्तानियोंकी आबादी ज्यों-ज्यों बढ़ती गई त्यों-त्यों उनको दरकार होनेवाली चीजोंकी खपत अच्छी होने लगी। हजारों बोरा चावल हिंदुस्तानसे आता और अच्छे नफेपर बिकता। यह व्यापार अधिकांशमें और स्वभावतः हिंदुस्तानियोंके हाथमें रहा। उधर हब्शियोंके साथ होनेवाले व्यापारमें भी उनका हिस्सा अच्छा-खासा हो गया। छोटे गोरे व्यापारियोंसे यह देखा न गया। इसके सिवा इन व्यापारियोंको कुछ अंग्रेजोंने ही यह बताया कि कानूनके अनुसार उन्हें नेटालकी धारा सभाके सदस्य होने और चुननेका हक है। मताधिकारियोंकी सूचीमें कुछ नाम भी दर्ज कराये थे। नेटालके राजकाजी गोरे इस स्थितिको न सह सके। उन्हें यह चिंता हो गई कि यों हिंदुस्तानियोंकी स्थिति नेटालमें दृढ़ हो गई और उनकी

छाप छोड़ गया। नेटालकी सरकारके मानी थे खासतौरसे धनिक वर्गकी हिमायती सरकार! अतः भारत-सरकारके साथ उसका पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ और दोनों पक्षोंके सुझाव उसके पास भेजे गये। पर हिंद सरकार यकायक ऐसा सुझाव कैसे स्वीकार कर सकती थी जिससे गिरमिटिए हमेशाके लिए गुलाम बन जाते? हिंदुस्तानियोंका गिरमिटमें बांधकर इतनी दूर भेजनेका एक कारण या बहाना यह था कि गिरमिट की मियाद पूरी होनेपर गिरमिटिए आजाद होकर अपनी शक्तिका पूर्ण विकास और उस अनुपातसे अपनी आर्थिक स्थितिको सुधार सकेंगे। नेटाल इस वक्त भी 'क्राउन कॉलोनी' (शाही उपनिवेश) था और ऐसे उपनिवेशोंके शासन प्रबंधके लिए उपनिवेश-विभाग भी पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता था। इसलिए नेटालको अपनी अन्यायपूर्ण इच्छा पूरी होनेमें मदद नहीं मिल सकती थी। इससे और ऐसे ही दूसरे कारणोंसे नेटालमें उत्तरदायी शासनाधिकार प्राप्त करनेका आंदोलन आरंभ हुआ। १८९३ में यह अधिकार उसे मिल गया। अब नेटालमें बल आया। उपनिवेश-विभागके लिए भी अब नेटालकी मांगोंको वे कैसी ही क्यों न हों मंजूर कर लेना अधिक कठिन नहीं रहा। नेटालकी इस नई यानी जवाब देह सरकार की ओरसे हिंदुस्तानकी सरकारसे मशवरा करनेके लिए राजदूत भेजे गये। उनकी मांग यह थी कि हरएक गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानीपर २५ पौंड यानी ३७५) रु॰ का वार्षिक व्यक्ति-कर लगाया जाय। इसके मानी यह होते थे कि कोई भी हिंदुस्तानी मजदूर यह कर अदा न कर सके और फलतः आजाद होकर नेटालमें न रह सके। तत्कालीन वाइसराय लार्ड एल्गिनको यह प्रस्ताव बहुत भारी लगा और अन्तमें उन्होंने ३ पौंडका वार्षिक व्यक्ति-कर मंजूर किया। गिरमिटियाकी कमाईके हिसाबसे तीन पौंडके मानी उसकी लगभग दो महीनेकी कमाई होते थे। यह कर केवल मजदूरपर ही नहीं था। उसकी स्त्री तेरह बरससे ऊपरकी

लड़की और सोलहसे ऊपरके लड़केको भी देना था। ऐसा मजदूर शायद ही हो जिसके स्त्री और दो बच्चे न हों। अतः मोटे हिसाबसे हर मजदूरको १२ पौंड वार्षिक कर अदा करना था। यह कर कितना कष्टदायक हो गया इसका वर्णन नहीं हो सकता। उस दुःखको केवल वही जान सकता है जिसने उसका अनुभव किया हो या थोड़ा-बहुत वह समझ सकता है जिसने उसे अपनी आँखों देखा हो। नेटाल-सरकारके इस कार्यका भारतीय जनताने कसकर विरोध किया। वड़ी (ब्रिटिश) और भारत-सरकारके पास अर्जियाँ भेजी गईं। पर इस आंदोलनका नतीजा इससे अधिक और कुछ न निकला कि २५ के ३ पौंड हो गये। गिरमिटिया बेचारे खुद तो इस मामलेमें क्या कर सकते थे? आंदोलन तो महज हिंदुस्तानी व्यापारीवर्गने देशके दर्दसे कहिये या परार्थ दृष्टिसे किया था।

जो सलूक गिरमिटियोंके साथ किया गया वही स्वतन्त्र भारतीयोंके साथ भी हुआ। नेटालके गोरे व्यापारियोंने उनके खिलाफ भी मुख्यतः इन्हीं कारणोंसे आंदोलन चलाया। हिंदुस्तानी व्यापारी अच्छी तरह जम गये थे। उन्होंने नगरके अच्छे भागोंमें जमीनें खरीद ली थीं। गिरमिटसे छूटे हुए हिंदुस्तानियोंकी आबादी ज्यों-ज्यों बढ़ती गई त्यों-त्यों उनको दरकार होनेवाली चीजोंकी खपत अच्छी होने लगी। हजारों बोरा चावल हिंदुस्तानसे आता और अच्छे मुनाफेपर बिकता। यह व्यापार अधिकांशमें और स्वभावतः हिंदुस्तानियोंके हाथमें रहा। उधर हब्शियोंके साथ होनेवाले व्यापारमें भी उनका हिस्सा अच्छा-खासा हो गया। छोटे गोरे व्यापारियोंसे यह देखा न गया। इसके सिवा इन व्यापारियोंको कुछ अंग्रेजोंने ही यह बताया कि कानूनके अनुसार उन्हें नेटालकी धारा सभाके सदस्य होने और चुननेका हक है। मताधिकारियोंकी सूचीमें कुछ नाम भी दर्ज कराये थे। नेटालके राजकाजी गोरे इस स्थितिको न सह सके। उन्हें यह चिंता हो गई कि यों हिंदुस्तानियोंकी स्थिति नेटालमें दृढ़ हो गई और उनकी

प्रतिष्ठा बढ़ी तो उनकी प्रतियोगितामें गोरे कैसे टिक सकेंगे ? अतः नेटालकी जवाबदेह सरकारने स्वतंत्र भारतीयोंके बारेमें जो पहला कदम उठाया वह था ऐसा कानून बना देना जिससे एक भी नया हिंदुस्तानी वोटर या मताधिकारी न हो सके। १८९४ में इस विषयका पहला बिल नेटालकी धारा सभामें पेश किया गया। इस बिलका मंशा था हिंदुस्तानीको हिंदुस्तानीकी हैसियतसे वोट देनेके हकसे वंचित कर देना। यह पहला कानून था जो नेटालमें रंग-भेदके आधारपर भारतीयोंके विरुद्ध बनाया गया। भारतीय जनताने विरोध किया। रातोंरात अरजी तैयार हुई। उसपर चारसौ आदमियोंसे दस्तखत कराये गये। इस अरजीके पहुंचते ही धारा सभा चौंकी पर बिल तो पास होकर ही रहा। उन दिनों लार्ड रिपन उपनिवेश-सचिव थे। उनके पास अरजी भेजी गई। उसपर दस हजार हस्ताक्षर थे। दस हजार हस्ताक्षरके मानी हुए नेटालमें आबाद हिंदुस्तानियोंकी लगभग सारी आबादी। लार्ड रिपनने बिलको नामंजूर किया। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य कानूनमें रंगभेदको स्वीकार नहीं कर सकता। यह चीज़ कितने महत्वकी थी पाठक इसे आगे चलकर अधिक समझ सकेंगे। इसके जवाबमें नेटालकी सरकारने नया बिल पेश किया। इसमें रंग-भेद नहीं रखा गया, पर अप्रत्यक्ष रीतिसे चोट तो हिंदुस्तानियोंपर ही थी। हिंदुस्तानी जनता इसके विरुद्ध भी लड़ी पर उसका विरोध विफल हुआ। यह कानून दोअर्थी था। उसका पक्का अर्थ करानेके लिए वह आखिरी अदालत यानी प्रिवी कौंसिलतक लड़ सकती थी पर लड़ना ठीक नहीं समझा गया। मेरा अब भी खयाल है कि न लड़ना ठीक ही हुआ। मूल वस्तु मान ली गई यही क्या कम था।

पर नेटालके गोरों या वहांकी सरकारको इतनेसे संतोष होनेवाला नहीं था। हिंदुस्तानियोंकी राजनैतिक शक्ति बढ़ने न देना तो एक बहुत जरूरी काम था ही पर उनकी

आंख असलमें तो भारतीय व्यापार और स्वतंत्र भारतीयोंके आगमनपर थी। तीस करोड़की आबादीवाला हिंदुस्तान नेटाल-की ओर उलट पड़े तो वहांके गोरोंकी क्या दशा होगी? वे तो इस समुद्रमें विलीन हो जायगे। इस आशंकासे वे बेचैन हो रहे थे। उस वक्त नेटालकी आबादी मोटे हिसाब से यह थी ४ लाख हब्शी ४० हजार गोरे ६० हजार गिरमिटिए, १० हजार गिर-मिट-मुक्त और १० हजार स्वतंत्र भारतीय। गोरोंके डरके लिए कोई ठोस कारण तो था ही नहीं पर डरे हुए आदमीको दलीलसे समझाया नहीं जा सकता। हिंदुस्तानकी असहाय स्थिति और उसके रस्म-रिवाजसे वे अनजान थे। इसमें उनको यह भ्रम हो रहा था कि जैसे साहसी और शक्तिमान हम हैं वैसे ही हिंदुस्तानी भी होंगे और इस कारण उन्होंने केवल त्रैराशिकका हिसाब कर लिया। इसलिए उनको दोष कैसे दिया जा सकता है? जो हो नतीजा यह हुआ कि नेटालकी धारा सभाने जो दो दूसरे कानून पास किये उनमें भी मताधिकारकी लड़ाईमें हिंदुस्तानियोंकी जीत होनेके फलस्वरूप रंग भेदको दूर रखना पड़ा और गर्भित भाषासे काम निकालना पड़ा। इसकी बदौलत स्थिति थोड़ी-बहुत सम्हली रह सकी। हिंदुस्तानी कौम इस मौकेपर भी खूब लड़ी फिर भी कानून तो पास होकर ही रहे। एक कानूनके जरिये भारतीयोंके व्यापारपर कठोर अंकुश रखा गया दूसरेके द्वारा उनके प्रवेश पर। पहले कानूनका आशय यह था कि कानून द्वारा नियुक्त अधिकारीकी अनुमतिके बिना किसीको भी व्यापारका पर वाना न मिले। व्यवहारमें यह स्थिति थी कि कोई भी गोरा जाकर अनुमति-पत्र पा सकता था। पर भारतीयको वह बड़ी कठिनाई से मिलता। उनमें वकील वगैरहका तो खर्च करना ही पड़ता। नतीजा बहुत और कमजोर हिम्मतके तो बिना परवानेके ही रह जाते। दूसरे कानूनकी खास शर्त यह थी कि जो हिंदुस्तानी यूरोपकी किसी भी भाषामें प्रवेशका प्रार्थनापत्र लिख सके वही प्रवेशकी अनुमति पावे। अर्थात्

करोड़ों हिंदुस्तानियोंके लिए तो नेटालका दरवाजा बिल्कुल ही बंद हो गया। जाने या अनजानमें मुझसे नेटालके साथ अन्याय न हो जाय इसलिए मुझे यह बता देना चाहिए कि जो भारतीय इस कानूनके पास होनेसे तीन साल पहलेसे नेटालमें घर बनाकर रहता हो वह अगर नेटाल छोड़कर हिंदुस्तान या और कहीं जाय और फिर लौटे तो वह अपनी स्त्री और नाबालिग बच्चोंके साथ यूरोपकी कोई भाषा न जाननेपर भी दाखिल हो सकता था। इसके अतिरिक्त गिरमिटियों और स्वतंत्र भारतीयोंपर दूसरी भी कितनी ही कानूनी और बेकानूनी रुकावटें थी और अबतक हैं। पर पाठकोंको उन्हें सुनानेकी जरूरत मुझे नहीं दिखाई देती। जितना विवरण इस पुस्तकका विषय समझानेके लिए जरूरी है उतना ही मैं देना चाहता हूं। दक्षिण अफ्रीकाके हरएक राज्यके हिंदुस्तानियोंकी हालतका इतिहास बहुत लम्बा होगा यह तो हर पाठक समझ सकता है, पर ऐसा इतिहास देना इस पुस्तकका उद्देश्य नहीं है।

४

मुसीबतोंका सिंहावलोकन—२

ट्रांसवाल और दूसरे उपनिवेश

जैसा नेटालमें हुआ वैसा ही कमोबेश दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे उपनिवेशोंमें भी हुआ। १८८० के पहलेसे ही हिंदुस्तानियोंका नफरतकी निगाहसे देखना शुरू हो गया और केप कॉलोनीको छोड़कर और सभी उपनिवेशोंमें यह धारणा हो गई थी कि हिंदुस्तानी मजदूरके रूपमें तो बहुत अच्छे हैं। पर बहुतेरे गोरोंके मनमें यह बात पक्के तौरसे बैठ गई थी कि स्वतंत्र भारतीयोंसे तो दक्षिण अफ्रीकाको हानि ही है। ट्रांसवाल प्रजातंत्र राज्य था। उसके अध्यक्षके सामने हिंदुस्ता-

ब्रिटिश
साउथ अफ्रीका
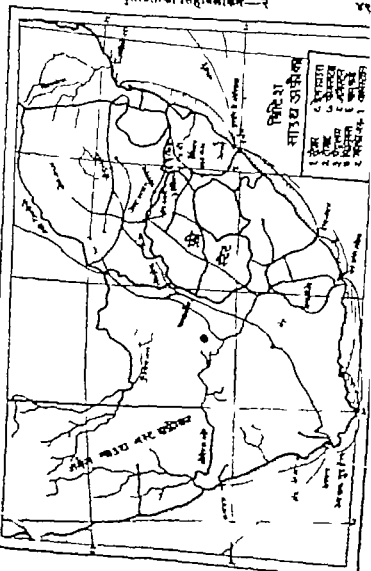
नियों का यह कहना कि हम ब्रिटिश प्रजा कहलाते हैं अपनी हँसी कराना था। हिंदुस्तानियोंको कोई भी शिकायत करनी हो तो वे ब्रिटिश दूतके ही पास कर सकते थे। पर ऐसा होते हुए भी अचरजकी बात यह थी कि ट्रांसवाल जब ब्रिटिश साम्राज्यसे बाहर था उस वक्त ब्रिटिश दूत जो मदद कर सकता था वह मदद जब ट्रांसवाल ब्रिटिश साम्राज्यके अंदर मान लिया गया बिलकुल बंद हो गई। जब लार्ड मोर्ले भारत मंत्री थे और ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोंकी वकालत करनेके लिए एक प्रतिनिधि-मंडल उनके पास गया तब उन्होंने साफ कह दिया कि 'उत्तरदायी—स्वराज्य भोगी—सरकारोंपर बड़ी (साम्राज्य) सरकारका काबू बहुत ही थोड़ा होता है। स्वतंत्र राज्यको वह लड़ाईकी धमकी दे सकती है उससे लड़ाई कर भी सकती है पर उपनिवेशोंके साथ तो महज मशविरा ही किया जा सकता है। उनके साथ हमारा संबंध कच्चे धागेसे जुड़ा हुआ है। जरा ताना कि टूटा। बलसे तो काम लिया ही नहीं जा सकता। कलसे—युक्तिसे—जो कुछ कर सकता हूं वह सब करनेका विश्वास आपको दिलाता हूं।' ट्रांसवालके साथ जब लड़ाई छिड़ी तब लार्ड लैंसडाउन लार्ड सेलबर्न आदि ब्रिटिश अधिकारियोंने कहा था कि भारतीयोंकी दुःखद स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है।

अब हम इस दुःखद प्रकरणको देखें। ट्रांसवालमें हिंदुस्तानी पहले-पहल १८८१ ई० में दाखिल हुए। स्वर्गीय सेठ अबूबकरने ट्रांसवालकी राजधानी प्रिटोरियामें दुकान खोली और उसके एक खास मुहल्लेमें जमीन भी खरीदी। इसके बाद दूसरे व्यापारी भी एक-एक करके वहां पहुंचे। उनका व्यापार खूब तेजीसे चला तो गोरे व्यापारियोंके दिलमें डाह पैदा हुई। अखबारोंमें हिंदुस्तानियोंके खिलाफ लेख लिखे जाने लगे। धारा-सभाको अर्जियां भेजी गईं जिनमें हिंदुस्तानियोंको निकाल बाहर करने और उनका व्यापार बंद करा देनेकी प्रार्थना भी की गई। इस नये देशमें गोरोंकी धन-तृष्णाकी

कोई हद न थी। नीति-अनीतिका भेद वे शायद ही समझते हों। धारा-सभाको उन्होंने जो आवेदनपत्र भेजा था उसके अंदर इस तरहके वाक्य हैं—"ये लोग (हिंदुस्तानी व्यापारी) मानवी सभ्यता क्या चीज है यह जानते ही नहीं। वे बदचलनीसे पैदा होनेवाले रोगोंसे सड़ रहे हैं। हरएक स्त्रीको वे अपना शिकार समझते हैं और उन्हें आत्मा रहित मानते हैं।" इन चार वाक्योंमें चार झूठ भरे हैं। ऐसे नमूने बीसियों पेश किये जा सकते हैं। जैसी जनता वैसे ही उसके प्रतिनिधि। हमारे व्यापारी भाइयोंको इसकी क्या खबर कि उनके विरुद्ध कैसा बेहूदा और अन्याय भरा आन्दोलन चल रहा है? अखबार वे पढ़ते न थे। अखबारी और अर्जियोंके आंदोलनका असर धारा सभा पर हुआ और उसमें एक बिल पेश किया गया। इसकी खबर प्रमुख भारतीयोंके कान तक पहुंची तो वे चौंके। वे राष्ट्रपति क्रूगरके पास गये। प्रियमत राष्ट्रपतिने तो उन लोगों को घरके अंदर कदम भी न रखने दिया। आंगनमें ही खड़ा करके उनकी बात थोड़ी-बहुत सुननेके बाद कहा—"आप लोग तो इस्माईल[1] की औलाद हैं इसलिए आप लोग ईसोकी औलादकी गुलामी करनेके लिए ही पैदा हुए हैं। हम ईसोकी औलाद माने जाते हैं। इसलिए हमारी बराबरीका हक तो आपको मिल ही नहीं सकता। हम जो हक दे रहे हैं उसीसे आपको

---

१ इब्राहीम (२२५ २१ ई पू) के बड़े और अभिषिक्त बेटे जो उनकी कनिष्ठ पत्नी (दासी) हाजराके पैदा हुए थे। ज्येष्ठ पत्नी साराके पेटसे इसहाकका जन्म होनेपर उसके कहनेसे इब्राहीम हाजरा और इस्माईलको उस जगह ले जाकर छोड़ आये जहां अब मक्का नगर है। मुसलमान हजरत इब्राहीमके समान इन्हें भी पैगंबर मानते हैं। अरबका प्रमुखतम कबीला कुरेश जिसमें हजरत मुहम्मदका जन्म हुआ था इन्हींकी औलाद माना जाता है। ईसो इसहाकके सबसे बड़े बेटे थे। बाइबिलके सृष्टिक्रममें इनकी कथाएं विस्तारसे दी हुई हैं।—अनु

बदले कम खोया। पंचके इस फैसलेके अनुसार १८८६में कानूनमें सुधार हुआ। उसके अनुसार रजिस्ट्रीकी फीस २५ पौंडके बजाय ३ पौंड रखना तय हुआ और जमीन जो कहीं भी खरीद और रख न सकनेकी कड़ी शर्त थी उसके बदले यह निश्चय हुआ कि ट्रांसवालकी सरकार जिस हल्केके मुहल्ले बाड़में तै कर दे उसीमें हिंदुस्तानी जमीन ले सकें। इस दफा पर अमल करानेमें भी ट्रांसवाल सरकारने दिलमें चोर रखा। अतः ऐसे मुहल्लोंमें भी जरखरीद जमीन लेनेका हक तो नहीं ही दिया। हर शहर-कसबेमें जहां हिंदुस्तानी बसते थे वे मुहल्ले नगरसे बहुत दूर और गंदी-से-गंदी जगहोंमें रखे गये। वहां पानी-रोशनीका सुभीता कम-से-कम था पाखानोंकी सफाईका हाल भी वही था। मानो हम हिंदुस्तानी ट्रांसवालके 'पंचम' बन गये और कह सकते हैं कि इन मुहल्लों और हिंदुस्तानके भंगी-बाड़ोंमें कुछ भी फर्क न था। लगभग यह स्थिति हो गई कि जैसे हिन्दू भंगी चमारको छूने और उनके पड़ोसमें बसनेसे अपवित्र हो जाता है वैसे ही भारतीयके स्पर्श या पड़ोससे गोरा नापाक हो जाता। फिर इस १८८५के तीसरे कानूनका ट्रांसवालकी सरकारने यह अर्थ किया कि हिंदुस्तानी व्यापार भी इन मुहल्लोंमें ही कर सकते हैं। यह अर्थ सही है या नहीं इसके निर्णयका अधिकार पंचने ट्रांसवालकी अदालतोंको ही दे रखा था। इसलिए भारतीय व्यापारियोंकी स्थिति अति विषम हो गई। फिर भी कहीं बात चीत चलाकर कहीं मुकदमे लड़कर कहीं सिफारिशसे काम लेकर भारतीय व्यापारी अपनी स्थितिकी रक्षा समुचित रीतिसे कर सके। बोअर-युद्ध आरंभ होनेके समय ट्रांसवालमें भारतीयोंकी ऐसी दुर्दशा और अनिश्चित स्थिति थी।

अब हम फ्री स्टेटकी दशा देखें। वहां दस-पन्द्रहसे अधिक हिंदुस्तानी दुकानें नहीं खुल पाई थीं कि गोरोंने जबर्दस्त आंदोलन उठा दिया। वहांकी धारा-सभाने चौकसीसे काम करके खतरेकी जड़ ही काट दी। उसने एक कड़ा कानून

पास करके और मुकसानका नगण्य मुआवजा देकर, हरएक हिंदुस्तानी दुकानदारको फ्री स्टेटसे निकाल बाहर किया। इस कानूनके अनुसार कोई हिंदुस्तानी व्यापारी जमीनके मालिक या किसानकी हैसियतसे फ्री स्टेटमें नहीं रह सकता था। चुनावमें मत देनेका अधिकारी तो हो ही नहीं सकता था। खास तौरसे इजाजत हासिल करके मजदूर या होटलके 'वेटर (खिदमतगार)'के रूपमें रह सकता था। यह इजाजत भी हरएक प्रार्थीको मिल ही जाय सो बात नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि फ्री स्टेटमें कोई प्रतिष्ठित भारतीय दो-चार दिन रहना चाहे तो भी बड़ी कठिनाईसे ही रह सकता था। बोअर-युद्धके समय वहां कोई चालीस हिंदुस्तानी वेटरों-के सिवा और कोई हिन्दुस्तानी नहीं था।

केप कालोनीमें यद्यपि हिंदुस्तानियोंके खिलाफ थोड़ा आंदोलन होता रहता था स्कूलों आदिमें भारतीय बालकका प्रवेश नहीं हो सकता होटलों वगैरहमें हिंदुस्तानी मुसाफिर शायद ही उतर सकता—इस तरहके हिंदुस्तानियोंकी अव-हेलना करनेवाले बरताव तो वहां भी होते थे फिर भी व्यापार करने और जमीन रख सकनेके बारेमें कोई रुकावट बहुत दिनोंतक वहां नहीं थी।

ऐसा होनेके कारण मुझे बता देने चाहिए। एक तो जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं केपटाउनमें खासतौरसे और सारी केप कालोनीमें आमतौरसे मलायी लोगोंकी आबादी अच्छी-खासी तादादमें थी। मलायी लोग खुद मुसल-मान हैं। इसलिए हिंदुस्तानी मुसलमानोंके साथ तुरंत उनकी राह-रस्म हो गई और उनके जरिये दूसरे हिंदुस्तानियोंसे भी थोड़ी-बहुत तो हो ही गई। इसके सिवा कुछ हिंदुस्तानी मुसल-मानोंने मलायी स्त्रियोंसे ब्याह भी कर लिया। मलायोंके खिलाफ किसी तरहका कायदा-कानून केपकी सरकार कैसे बना सकती थी? उनकी तो यह कालोनी जन्मभूमि है। उनकी भाषा भी डच है। डच लोगोंके साथ ही वे शुरूसे ही रहते

आ रहे हैं। अतः रहन-सहन मेंभी उनकी बहुत नकल करने लगे हैं। इन कारणोंसे केप कॉलोनीमें सदा कम-से कम वर्णद्वेष रहा है। इसके सिवा केप कॉलोनी सबसे पुराना उपनिवेश और दक्षिण अफ्रीकाका शिक्षण-केन्द्र है। इससे वहां प्रौढ़ विनयशील और उदारहृदय गोरे भी पैदा हुए। मैं तो मानता हूं कि दुनियामें एक भी ऐसी जगह और एक भी जाति ऐसी नहीं है जहां या जिसमें उपयुक्त अवसर मिले और संस्कार डाले जायं तो सुन्दर-से-सुन्दर मानव-पुष्प उत्पन्न न हो सकते हों। दक्षिण अफ्रीकामें सौभाग्यसे मुझे सभी जगह इसकी मिसालें दिखाई दीं पर केप कॉलोनीमें ऐसे पुरुषोंका अनुपात बहुत बड़ा है। उनमें सर्वाधिक विख्यात और विद्वान श्री मेरीमन हैं जो दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहे जाते हैं और केप कॉलोनीके प्रधान मंत्री भी रह चुके हैं।[1] श्री मेरीमैनके बराबर नहीं तो उनसे दूसरे दरजेपर गिना जाता है संपूर्ण श्राइनर परिवार, और मोल्टीनो परिवार का भी वही पद है। श्राइनर घरानेमें कानूनके माहिर हिमायती श्री डब्ल्यू० पी० श्राइनर[2] हो गये हैं। वह एक समय केप कॉलोनीके मंत्रिमंडलमें भी रह चुके हैं। उनकी बहन ओलिव श्राइनर दक्षिण अफ्रीकाकी लोकप्रिय विदुषी थीं और जहां-जहां अपनी भाषा बोली जाती है वहां-वहां विख्यात थी। मनुष्यमात्रपर उनका प्रेम असीम था। आंखोंमें जब देखिए प्रेमका झरना ही झरता होता। इस बहनने जब ड्रीम्स (स्वप्न) नामक पुस्तक लिखी तबसे वह ड्रीम्स की लेखिकाके

---

१ [illegible] सन् १८७० में केप कॉलोनीमें उत्तरदायी शासन-व्यवस्था स्थापित होनेके बाद उसकी [illegible] धारासभाके सदस्य रहे और १९१० में [illegible] की स्थापना हुई तो अंतिम मंत्रिमंडलके प्रधान थे।

२ [illegible] सन् १८०२ से [illegible] मंत्रिमंडलके प्रधान मंत्री थे।

३ [illegible] लम्बी [illegible] रहे और पीछे प्रधान मंत्री हुए।

नामसे प्रसिद्ध होगई। इनकी सरलता इतनी थी कि ऐसे प्रति
ष्ठित और प्रख्यात कुलकी तथा विदुषी होते हुए भी घरके
बरतनतक खुद मांजा करती थीं। श्री मेरीमैन और इन दोनों
परिवारोंने सदा हब्शियोंका पक्ष लिया। जब-जब उनके हकपर
हमला होता उनकी जबर्दस्त हिमायत करते। उनके
प्रेमकी धारा हिन्दुस्तानियोंकी ओर भी बहती थी यद्यपि वे
सभी हब्शी और हिंदुस्तानीमें भेद करते थे। उनकी दलील
यह थी कि हब्शी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके आगमनसे पहलेके
बाशिंदे हैं इसलिए गोरे उनके स्वाभाविक अधिकारोंको छीन
नहीं सकते पर हिंदुस्तानियोंके बारेमें उनकी प्रतियोगिताका
खतरा दूर करनेके लिए कोई कानून बनाया जाय तो यह बिल-
कुल अन्याय नहीं माना जायगा। फिर भी उनकी हमदर्दी
हमेशा हिंदुस्तानियोंके साथ रहती। स्वर्गीय गोपालकृष्ण
गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे तब उनके सम्मानमें वहां
जो पहली सभा केप टाउनके टाउनहालमें हुई उसमें श्री श्राइ
नरने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। श्री मेरीमैनने
भी उनके साथ बड़े सौजन्य और विनयसे बातें कीं और हिंदु
स्तानियोंके साथ हमदर्दी जाहिर की। केप टाउनके अखबारोंमें
भी और जगहके पत्रोंकी तुलनामें पक्षपातकी मात्रा बहुत
कम थी।

श्रीमेरीमैन आदिके बारेमें जो कुछ लिखा है वह दूसरे
यूरोपियनोंके विषयमें कहा जा सकता है। यहां तो मैंने
मिसालके तौरपर उपयुक्त सर्वमान्य नाम दे दिये हैं।

इन कारणोंसे यद्यपि केप कालोनीमें रंगद्वेष सदा कम
रहा फिर भी दक्षिण अफ्रीकाके शेष तीनों उपनिवेशोंमें जो
हवा हर वक्त बहा करती थी उसकी गंध केप कालोनीमें पहुंचे
ही नहीं यह कैसे हो सकता था? अतः वहां भी नेटालके
जैसे भारतीयोंके प्रवेश और व्यापारके लिए परवानेकी शर्त
लगा देनेवाले कानून पास हुए। यों कह सकते हैं कि दक्षिण
अफ्रीकाका दरवाजा जो हिंदुस्तानियोंके लिए बिलकुल खुला

६

भारतीयोंने क्या किया ?—१

भारतीय जनताकी स्थितिका विचार करते हुए पिछले प्रकरणोंमें हम ऊपर देख चुके हैं कि उसपर होनेवाले हमलोंका उसने किस तरह सामना किया पर सत्याग्रहकी उत्पत्तिकी कल्पना पाठकोंको भली भांति हो सके इसके लिए जरूरी है कि भारतीय जनताकी सुरक्षाके विषयमें किये गये प्रयत्नोंपर एक अलग प्रकरण लिखा जाय।

१८९३ ई. तक दक्षिण अफ्रीकामें ऐसे स्वतन्त्र और यथेष्ट शिक्षा प्राप्त भारतीय थोड़े ही थे जो भारतीय जनताके लिए लड़ सकें। अंग्रेजी जाननेवाले हिंदुस्तानियोंमें मुख्यतः क्लर्क और मुनीम थे। वे अपना काम चलाने भर अंग्रेजी जानते थे पर अर्जियां आदि उनसे नहीं लिखी जा सकती थीं। फिर उन्हें अपने मालिकको सारा वक्त देना ही चाहिए था। इनके सिवा अंग्रेजी पढ़ा हुआ दूसरा वर्ग उन हिंदुस्तानियोंका था जो दक्षिण अफ्रीकामें ही पैदा हुए थे। इनमें अधिकांश गिरमिटियोंकी संतान थे और उनमेंसे बहुतेरे जिन्होंने थोड़ी-सी योग्यता भी

नामसे प्रसिद्ध होंगी। कचहरीमें दुभाषियाकी सरकारी नौकरी शिक्षित और ईसाई जातिकी उनसे बड़ी-से-बड़ी सेवा हमदर्दी दरसानेके सिवा और क्या हो सकती थी! इसके सिवा गिरमिटिया और गिरमिटमुक्त दोनों मुख्यतः संयुक्त प्रांत और मद्रासके आये हुए हिंदुस्तानी थे। स्वतंत्र भारतीय थे गुजरातके मुसलमान और वे खास तौरसे व्यापारी थे। हिंदू अधिकांश क्लर्क—मुनीम थे यह हम पीछे कह चुके हैं। इनके अतिरिक्त थोड़े पारसी भी व्यापारी और क्लर्क वर्गमें थे। पर सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी आबादी ३० ४० से अधिक होनेकी संभावना न थी। स्वतंत्र व्यापारी वर्गमें थोड़ी जमात थी सिंधके व्यापारियोंकी। सारे दक्षिण अफ्रीकामें दो सौ या इससे कुछ अधिक सिंधी होंगे। कह सकते हैं कि उनका व्यापार हिंदुस्तानके बाहर जहां कहीं भी वे बसे हैं वहां एक ही तरहका होता है। वे 'फैंसी गुड्स'के व्यापारी कहे जाते हैं। 'फैंसी गुड्स'के मानी हैं रेशम, जरी वगैरहकी चीजें, बंबईके बने शीशम, चन्दन और हाथी-दांतके नक्काशीदार सन्दूक वगैरह घरकी सजावट। इसी तरहका सामान वे खास तौरसे बेचते हैं। उनके गाहक ज्यादातर गोरे ही होते हैं।

गिरमिटियोंको गोरे 'कुली' कहकर ही पुकारते हैं। कुलीके मानी हैं बोझ ढोनेवाला। यह नाम इतना चल गया है कि गिरमिटिया खुद भी अपने-आपको 'कुली' कहते नहीं हिचकता। पीछे तो यह नाम भारतीयमात्रको मिल गया। सैकड़ों गोरे हिंदुस्तानी वकील और हिन्दुस्तानी व्यापारीको क्रमशः 'कुली वकील' और 'कुली व्यापारी' कहा करते। इस विशेषणके व्यवहारमें कोई दोष है इसे कितने ही गोरे तो मानते या जानते भी नहीं। पर बहुतेरे तो तिरस्कार प्रकट करनेके लिए ही कुली शब्दका उपयोग करते। इसमें स्वतंत्र भारतीय अपनेआपको गिरमिटियोंसे भिन्न बतानेका यत्न करते हैं। इन तथा जिन्हें हम हिंदुस्तानसे ही साथ ले जाते हैं उन कारणों से भी

स्वतंत्र भारतीय वर्ग और गिरमिटिया तथा गिरमिटमुक्त वर्गके बीच दक्षिण अफ्रीकामें भेद किया जा रहा था।

इस दुःखके दरियाके सामने बांध बननेका काम स्वतंत्र हिंदुस्तानी व्यापारियों और खास तौरसे मुसलमान व्यापारियोंने अपने ऊपर लिया। पर गिरमिटियों या गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोंको साथ लेनेकी कोशिश इरादेके साथ नहीं की गई। यह बात उस वक्त शायद सूझी भी नहीं। सूझती भी तो उन्हें साथ लेनेसे काम बिगड़नेका ही डर होता। दूसरे मुख्य आपत्ति तो स्वतंत्र व्यापारी वर्गपर ही है यह सोचा गया। इसलिए बचावके प्रयत्नने ऐसा संकुचित रूप धारण किया। इन स्वतंत्र व्यापारियोंमें अंग्रेजीके ज्ञानका अभाव था। हिंदुस्तानमें उन्हें सार्वजनिक कार्मोका अनुभव नहीं हुआ था पर इन कठिनाइयोंके होते हुए भी कह सकते हैं कि उन्होंने मुसीबतका सामना डटकर किया। उन्होंने यूरोपियन वकीलोंकी मदद ली अर्जियां तैयार कराई जब-तब शिष्ट-मण्डल भी ले गये और जहां-जहां बन पड़ा और सूझा वहां-वहां अन्यायसे लोहा लिया। यह स्थिति १८९३ ई० तक थी।

इस पुस्तकको अच्छी तरह समझनेके लिए पाठकोंको कुछ मुख्य तिथियां याद रखनी होंगी। पुस्तकके अंतमें मुख्य घटनाओंका तारीखवार परिशिष्ट दिया गया है। उसे वे समय-समयपर देख लिया करेंगे तो इस युद्धका रहस्य और रूप समझनेमें मदद मिलेगी। १८९३ तक फ्री स्टेटमें हमारी हस्ती मिट चुकी थी। ट्रांसवालमें १८८५ का तीसरा कानून जारी था और नेटालमें अन्दर यह विचार चल रहा था कि कैसे केवल गिरमिटिया हिंदुस्तानी ही वहां रह सकें दूसरे निकाल बाहर किये जाय और इस उद्देश्यसे उत्तरदायी शासनव्यवस्था प्राप्त कर ली गई थी।

१८९३ ई० के अप्रैल महीनेमें मैं दक्षिण अफ्रीका जानेके लिए हिंदुस्तानसे रवाना हुआ। गिरमिटियोंके पिछले इतिहासका मुझे कुछ भी ज्ञान न था। मैं केवल स्वार्थ बुद्धिसे

सरलता और परिस्थितिका अज्ञान। नेटालमें हिंदुस्तानियोंको जो-जो तकलीफें भुगतनी पड़ती थी उन सबका उसे पता नहीं था। और जिन बर्तावोंमें हमारा तीव्र अपमान था वे उन्हें अपमानकारक नहीं जान पड़े थे पर मेरी आंखोंने तो पहले ही दिन यह देख लिया कि गोरोंका बर्ताव हमारे साथ बहुत ही अशिष्ट और अपमानकर है।

नेटाल पहुंचनेके १५ दिनके अंदर ही कचहरियोंमें मुझे जो कड़वे अनुभव हुए इनके अंदर जो कष्ट उठाने पड़े रास्तेमें जो मार खाई, होटलमें जगह पानेमें जो कठिनाई हुई बल्कि जगह पाना लगभग नामुमकिन था—इस सबका वर्णन मैं यहां नहीं करूंगा। इतना ही कहूंगा कि ये सारे अनुभव मेरी रग-रग में समा गये। मैं तो सिर्फ एक मुकदमेके लिए गया था स्वार्थ और कुतुहलकी दृष्टिसे इसलिए इस पहले वर्षमें तो मैं इन दुःखोंका साक्षी और अनुभवकर्ता मात्र रहा। मेरे धमका पालन यहीस आरंभ हुआ। मैंने देखा कि स्वार्थ दृष्टिसे दक्षिण अफ्रीका मेरे लिए बेकार मुल्क है। जहां अपमान होता हो वहां रहकर पैसा कमाने या सैर-सपाटा करनेका लोभ मुझे तनिक भी न था। यही नहीं इससे अत्यन्त अरुचि थी। मेरे सामने धर्मसंकट खड़ा हो गया। मेरे सामने दो रास्ते थे। एक यह कि जिस स्थितिको मैं जान नहीं सकता था उसे अब जान लिया। इसलिए दादा अब्दुल्लाके साथ किये हुए इकरारनामेसे छुटकारा प्राप्तकर भाग जाऊं। दूसरा यह कि चाहे जो संकट सहने पड़ें सहूं और अंगीकृत कामको पूरा करूं। मड़ाकेकी ठंडमें मारित्सबर्ग स्टेशनपर रेलवे पुलिसके धक्के खाकर यात्रा स्थगित कर और ट्रेनसे उतरकर वेटिंग रूममें बठा था। मेरा सामान कहां है इसकी खबर मुझे न थी। किसीसे पूछनेकी हिम्मत भी नहीं होती थी। कहीं फिर अपमान हो मार खानी पड़े तो ? ऐसी दशामें ठंडसे कांपते हुए नींद कहांसे आती ! मन चक्करदार झूलेपर सवार हुआ। बड़ी रातको निश्चय किया 'निकल भागना तो

नामर्दी है छिपे हुए कामको पूरा करना ही चाहिए। व्यक्तिगत अपमान सहना पड़े मार खानी पड़े तो सह और जाकर भी प्रिटोरिया पहुंचना ही चाहिए। प्रिटोरिया मेरे लिए केन्द्र-स्थान था। मुकदमा वहीं चल रहा था। अपना काम करते हुए कोई उपाय हो सके तो करूं। यह निश्चय कर लेनेपर मनको कुछ शांति हुई हृदयमें कुछ बल भी आया। पर मैं सो तो नहीं ही सका।

सवेरा होते ही मैंने दादा अब्दुल्लाकी कोठी और रेलवेके जनरल मैनेजरको तार किया। दोनों जगहोंसे जवाब भी आ गया। दादा अब्दुल्ला और उनके उस वक्त नेटालमें रहनेवाले साझी सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम झवेरीने फौरन सब प्रबंध कर दिया। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अपने हिंदुस्तानी आढ़तियोंको मेरी फिक्र रखनेके लिए तार किये। जनरल मैनेजरसे भी मिले। आढ़तियेको भेजे हुए तारके फलस्वरूप मारित्सबर्गके भारतीय व्यापारी आकर मुझसे मिले। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि आपके जैसे कड़वे अनुभव हम सबको हो चुके हैं। पर हम इसके आदी हो गये हैं इसलिए इसकी परवा नहीं करते। व्यापार करना और भावुक दिल रखना दोनों बातें साथ कैसे चल सकती हैं? इसलिए पैसेके साथ साथ अपमान भी मिले तो उसे भी बक्समें धर लेनेका नियम हमने स्वीकार कर लिया है। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि इस स्टेशनपर हिंदुस्तानियोंको सदर दरवाजेसे आनेकी मनाही है और टिकट लेनेमें भी उन्हें बड़ी कठिनाई होती है। उसी रातमें जो ट्रेन आई उससे मैं रवाना हो गया। मेरा निश्चय ठीक था या नहीं इसकी परीक्षा अंतर्यामीने पूरे तौरपर की। प्रिटोरिया पहुंचनेके पहले मुझे और अपमान सहने पड़े और मार बर्दाश्त करनी पड़ी। पर इस सबका मेरे मनपर यही असर हुआ कि मेरा निश्चय और पक्का हो गया।

यों १८९३ में मुझे अनायास दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयों-

की स्थितिका सच्चा अनुभव हो गया। जैसा अवसर आनेपर प्रिटोरियाके भारतीयोंके साथ मैं इस विषयमें बातचीत करता उन्हें समझाता भी पर इससे अधिक मैंने कुछ नहीं किया। मुझे ऐसा जान पड़ा कि दादा अब्दुल्लाके मुकदमेकी पैरवी करना और दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंके दुःखके निवारणकी चिंता करना ये दोनों बातें साथ नहीं चल सकतीं। मैंने देखा कि दोनोंको साधनेकी कोशिशमें दोनों जायगे। इस तरह करते-करते १८९४ आ पहुंचा। मुकदमा भी खतम हो गया। मैं डर्बन लौटा। देश लौटनेकी तैयारी की। दादा अब्दुल्लाने मेरी विदाईके लिए एक जलसा भी किया। उसमें किसीने डर्बनके 'मर्करी' अखबारका एक पर्चा मेरे हाथमें दिया। उसमें धारा-सभा (लेजि॰ असेंबली) की कारवाईके विवरणमें कुछ पंक्तियां मैंने 'भारतीय मताधिकार' (इंडियन फ्रेंचाइज) उपशीर्षकके नीचे पढ़ीं। सरकारकी ओरसे उसमें एक बिल पेश किया गया था जो हिंदुस्तानियोंको धारा-सभाके चुनावमें मत देनेके अधिकारसे वंचित करता था। मैंने देखा कि हिंदुस्तानियोंके सारे हक छीन लेनेकी यह शुरुआत है। उस मौकेपर दिये गये भाषणोंमें ही यह इरादा स्पष्ट था। जलसेमें आये हुए सेठों आदिको मैंने यह खबर पढ़कर सुनाई। जितना समझाते बना समझाया भी। सारी हकीकत तो मैं जानता नहीं था। मैंने उन्हें सलाह दी कि हिंदुस्तानियोंको इस हमलेका सामना डटकर करना चाहिए। उन्होंने भी इस बातको कबूल किया पर कहा कि इस तरहकी लड़ाई हमारे बूते नहीं लड़ी जा सकती और मुझसे रुक जानेका आग्रह किया। मैंने यह लड़ाई लड़ने तक यानी महीने-दो महीने रुक जाना मंजूर किया। उसी रात धारा-सभाको भेजनेके लिए अर्जी तैयार की। बिलका और आगे बढ़ना रोकनेके लिए तार भेजा गया तुरंत एक कमेटी बनाई गई। उसके अध्यक्ष सेठ अब्दुल्ला हाजी बनाये गये। तार उन्हींके नामसे भेजा गया। बिलके

कार्रवाई दो दिन रुकी रही। दक्षिण अफ्रीकाकी धारा-सभाओंमेंसे नेटालकी धारा-सभामें हिंदुस्तानियोंका यह पहला आवेदनपत्र था। उसका असर तो अच्छा हुआ पर बिल पास हुआ ही। उसका अंत क्या हुआ यह तो चौथे प्रकरणमें बता चुका हूँ। इस तरह लड़नेका यहाँ हिंदुस्तानियोंका यह पहला अनुभव था। इससे उनमें खूब जोश पैदा हुआ। रोज सभाएं होतीं और अधिकाधिक लोग उनमें सम्मिलित होते। इस कामके लिए जितना चाहिए था उससे अधिक पैसा इकट्ठा हो गया। नकलें करने दस्तखत लेने आदिके कामोंमें मदद करनेके लिए बिना पैसा लिये और पासका पैसा लगाकर काम करनेवाले भी बहुसंख्यक स्वयंसेवक मिल गये। गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोंकी संतान भी इस काममें उत्साहके साथ शामिल हुई। ये सभी अंग्रेजी जाननेवाले और सुंदर अक्षर लिखनेवाले युवक थे। उन्होंने नकल तैयार करने आदिका काम रात-दिनका ख्याल न कर बड़े उत्साहसे किया। एक महीनेके अंदर ही दस हजार हस्ताक्षरोंवाला आवेदनपत्र लार्ड रिपनके पास भेज दिया और मेरा तात्कालिक काम पूरा हुआ।

मैंने विदा मांगी पर भारतीय जनताको इस संघर्षमें इतना रस मिलने लगा था कि अब वह मुझे छोड़ना ही नहीं चाहती थी। उसने कहा—'आप ही तो हमें समझाते हैं कि हमें जड़मूलसे उखाड़ फेंकनेका यह पहला कदम है। विलायतसे क्या जवाब आयेगा इसे कौन जानता है? हमारा उत्साह आपने देख लिया। हम काम करनेको तैयार हैं। करना चाहते भी हैं। हमारे पास पैसा भी है। पर रास्ता दिखानेवाला न हुआ तो इतना किया कराया बेकार हो जायगा। इसलिए हम तो मानते हैं कि कुछ दिन यहाँ और रह जाना आपका फर्ज है।' मुझे भी दिखाई दिया कि कोई स्थायी संस्था हो जाय तो अच्छा है। पर रहूँ कहाँ और किस तरह? उन लोगोंने मुझे तनख्वाह देनेकी बात कही पर मैंने तनख्वाह लेनेसे साफ इन्कार किया। सार्वजनिक

कार्य बड़ी-बड़ी तनख्वाह लेकर नहीं हो सकता। फिर मैं तो नींव डालनेवाला था। रहना भी ऐसे ढंगसे चाहिए कि उस वक्तके मेरे विचारोंके अनुसार बैरिस्टरको फबे और जातिको भी शोभा दे अर्थात् खर्च भी भारी था। लोगोंको दबाकर उनसे पैसा करके आंदोलन चलाना और इसके साथ-साथ अपनी रोजी भी कमा लेना यह दो परस्पर विरोधी बातोंका संगम होगा। इससे मेरी अपनी काम करनेकी शक्ति भी घट जायगी। ऐसे अनेक कारणोंसे मैंने लोकसेवाके कार्यके लिए पैसा लेनेसे साफ इनकार कर दिया। पर मैंने यह सुझाव पेश किया कि आप लोगोंमेंसे बड़े व्यापारी अपनी वकालतका काम मुझे दें और इसके लिए मुझे पेशगी 'रिटेनर'[1] दें तो मैं रुकनेको तैयार हूं। एक बरसका रिटेनर आप दें। एक बरस हम एक-दूसरेका अनुभव प्राप्त करें, सालभरके कामका हिसाब करके देखें और फिर ठीक जान पड़े तो आगे काम चलायें। इस सुझावका सबने स्वागत किया। मैंने वकालतकी सनदके लिए दरख्वास्त दी। वहांकी 'लॉ सोसायटी' अर्थात् वकील मंडलने मेरी दरख्वास्तका विरोध किया। उनकी दलील एक ही थी कि नेटालके कानूनके मंशाके अनुसार काले या गेहुंए रंगके लोगोंको वकालतकी सनद नहीं दी जा सकती। मेरी दरख्वास्त की हिमायत वहांके मशहूर वकील मी० एस्कंबने की जो पहले एटर्नी जनरल थे और पीछे नेटालके प्रधान-मंत्री हो गये थे। आमतौरपर लंबे अरसेसे यह रिवाज चला आ रहा था कि वकालतकी सनदकी दरख्वास्त कानून-पंडितोंमेंसे जो अग्रणी हो वह बिना मेहनतानेके अदालतके सामने पेश करे। इसी प्रथाके अनुसार मी० एस्कंबने मेरी वकालत मंजूर की। वह दादा अब्दुल्लाके बड़े (सीनियर) वकील भी थे। वकील-मंडलकी दलील बड़ी अदालत (सुप्रीम कोर्ट) ने रद्द करदी

---

१ वकील बैरिस्टरको इस दृष्टिसे दिया हुआ पेशगी मेहनताना कि वक्त पड़नेपर काम लेनेका हक रहे।

और मेरी दरख्वास्त मंजूर कर ली। यों वकील-मंडलका विरोध बिना चाहे मेरी दूसरी प्रसिद्धिका कारण हो गया। दक्षिण अफ्रीकाके अखबारोंमें वकील-मंडलकी हँसी उड़ाई और कुछने मुझे बधाई भी दी।

जो कामचलाऊ कमेटी बनाई गई थी उसे स्थायी रूप दिया गया। मैंने कांग्रेसकी एक भी बैठक देखी तो नहीं थी पर कांग्रेसके बारे में पढ़ा था। हिंदके दादा (दादा भाई) के दर्शन कर चुका था। उनकी मैं पूजा करता था। अतः कांग्रेसका भक्त तो होना ही चाहिए था। उसके नामको लोकप्रिय बनानेका भी ख्याल था। नया जवान नया नाम क्यों ढूँढ़ने जाय? फिर उसमें भूल कर बैठनेका भी भारी भय था। अतः मैंने सलाह दी कि कमेटी 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' नाम ग्रहण करे। कांग्रेसके विषयमें अपना अधूरा ज्ञान अधूरी रीतिसे मैंने लोगोंके सामने रखा। १८९४ ई० के मई या जूनमें कांग्रेसकी स्थापना हुई। भारतीय संस्था और इस संस्थामें इतना अंतर था कि नेटाल कांग्रेसकी बैठकें बारहों मास हुआ करती थीं और जो सालमें कम-से-कम तीन पौंड दे सके वही उसका सदस्य हो सकता था। अधिक-से अधिक तो जो कुछ भी दिया जाय वह धन्यवाद स्वीकार किया जाता। पाँच-सात सदस्य सालाना २४ पौंड देनेवाले भी निकल आये। १२ पौंड देनेवालोंकी तादाद तो काफी थी। एक महीनेके अंदर कोई तीन सौ सदस्योंके नाम दर्ज हो गये। हिन्दू, मुसलमान पारसी ईसाई आदि जितने धर्मों और प्रान्तोंके लोग वहाँ थे उसमें शामिल हुए। पहले बरसभर काम बड़े जोश से चला। सेठ लोग निजकी सवारियाँ लेकर दूर-दूरके गाँवोंमें नये मेंबर बनाने और चंदा इकट्ठा करने जाते थे। हर आदमी मांगते ही पैसा नहीं दे देता था। उन्हें समझाना होता था। समझानेमें एक प्रकारकी राजनैतिक शिक्षा मिलती थी और लोग परिस्थितिसे परिचित होते थे। फिर हर महीने कम-से-कम एक बार तो कांग्रेसकी बैठक होती

ही थी। उसमें उस महीनेका पाई-पाईका हिसाब सुनाया जाता और वह पास होता। महीनेके अंदर घटित सारी घटनाएं भी सुनाई जातीं और कार्रवाई लिख ली जाती। सदस्य गण जुदा-जुदा सवाल पूछते। नये कामोंपर मशवरा होता। यह सब करते हुए जो लोग कभी ऐसी सभाओंमें नहीं बोलते थे वे वक्ता बन जाते थे। भाषण भी शिष्टता औचित्यका ध्यान रखकर ही करते थे। यह सारा हमारे लिए नया अनुभव था। लोगोंने इसमें बहुत रस लिया। इस बीच लार्ड रिपनके नेटालका (मताधिकार हरण) बिल नामंजूर कर देनेकी खबर आई। इससे लोगोंका हर्ष और आत्म-विश्वास दोनों बढ़े।

जैसे बाहर काम हो रहा था वसे लोगोंके अंदर काम करने का आंदोलन भी चल रहा था। हमारे रहन-सहनके बारेमें सारे दक्षिण अफ्रीकामें गोरे जोरदार आंदोलन कर रहे थे। हिंदुस्तानी बहुत गंदे हैं, कंजूस हैं जिस मकानमें व्यापार करते हैं उसीमें रहते भी हैं, उनके घर जैसे मांद हों अपने आरामके लिए भी वे पैसा नहीं खर्च करते। ऐसे मैले मक्खीचूस लोगोंके साथ साफ-सुथरे उदार और बहुत ज्यादा जरूरतों-वाले गोरे व्यापारमें कैसे प्रतियोगिता कर सकते हैं? यह उनकी हमेशा की दलील थी। इससे घर साफ-सुथरा रखने घर और दुकान अलग-अलग रखने कपड़े साफ रखने बड़ी कमाईवाले व्यापारीको फबने लायक रहन-सहन रखने आदिके बारेमें भी कांग्रेसकी बैठकोंमें विवेचन और विवाद होता सुझाव रखे जाते। कार्रवाई सारी मातृभाषामें ही होती।

इस सबसे लोगोंको अनायास कितनी व्यावहारिक शिक्षा और राजनैतिक काम-काजका कितना अनुभव मिल रहा था पाठक इसे समझ सकते हैं। कांग्रेसके ही अंतर्गत गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानियोंकी सन्तान अर्थात् नेटालमें ही जन्मे हुए अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीय युवकोंके सुभीतेके लिए एक शिक्षण मंडल भी स्थापित किया गया। उसमें नामकी फीस रखी गई। मुख्य उद्देश्य था उन नौजवानोंको इकट्ठा करना

उनमें हिंदुस्तानके प्रति प्रेम उत्पन्न करना और उसका सामान्य ज्ञान करा देना। साथ ही यह हेतु भी था कि स्वतन्त्र भारतीय व्यापारी उन्हें अपना ही समझते हैं यह उन्हें दिखा दिया जाय और व्यापारीवर्गमें भी उनके लिए आदर उत्पन्न किया जाय। अपना खर्च चलाते हुए भी कांग्रेसके पास एक बड़ी रकम इकट्ठी हो गई थी। उससे जमीन खरीदी गई और इस जमीनकी आमदनी आजतक उसे मिला करती है।

इतना ब्यौरा मैंने जान-बूझकर दिया है। सत्याग्रह कैसे स्वाभाविक रीतिसे उत्पन्न हुआ और लोग कैसे उसके लिए तैयार हुए। ऊपरके ब्यौरे जाने बिना पाठक इस बात का पूरी तरह नहीं समझ सकते थे। कांग्रेस के ऊपर मुसीबतें आईं, सरकारी अधिकारियों की ओरसे हमले हुए, उन हमलोंसे वह कैसे बची यह और ऐसी दूसरी बातोंका जानने लायक इतिहास मुझे छोड़ देना पड़ रहा है। पर एक बात बता देना जरूरी है। अतिशयोक्ति से भारतीय जनता सदा बचती रहती। उसकी कमियां उसे दिखानेका यत्न सदा किया जाता। गोरोंकी दलीलोंमें जितनी सचाई होती वह तुरंत स्वीकार कर ली जाती और गोरोंके साथ स्वतन्त्रता और आत्मसम्मानकी रक्षा करते हुए सहयोग करनेके हर अवसरका स्वागत किया जाता। हिंदुस्तानियोंके आन्दोलनका जितना समाचार वहांके अखबार छाप सकते थे उतना उन्हें दे दिया जाता और अखबारोंमें हिंदुस्तानियोंपर बेजा हमला होता तो उसका जवाब भी दिया जाता।

नेटालमें जैसी 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' थी वैसी ही संस्था ट्रांसवालमें भी थी। पर ट्रांसवाल की संस्था नेटालसे सर्वथा स्वतंत्र थी। उसके विधानमें भी अंतर था। पर उसकी चर्चामें पाठकों को उलझाना नहीं चाहता। ऐसी संस्था केप टाउनमें भी थी। उसका विधान नेटाल और ट्रांसवाल दोनोंकी संस्थाओंसे भिन्न प्रकारका था। फिर भी तीनोंके

कार्य लगभग एक ही तरहके कहे जा सकते हैं।

१८९४का साल खतम हुआ। कांग्रेसका पहला बरस भी १८९५के मध्यमें पूरा हो गया। मेरा वकालतका काम भी मुवक्किलोंको पसन्द आया। मेरा प्रवासकाल और लंबा हो गया। १८९६ में लोगोंसे इजाजत लेकर ६ महीनेके लिए हिंदुस्तान लौटा पर पूरे छ महीने भी न रह पाया था कि नेटालसे तार मिला और मुझे तुरंत लौट आना पड़ा। १८९६-९७ का हाल दूसरे अलग अध्यायमें मिलेगा।

७

भारतीयोंने क्या किया ?—२

इस प्रकार नेटाल इंडियन कांग्रेसका काम स्थिर हो गया। मैंने भी लगभग ढाई बरस अधिकतर राजनतिक काम करते हुए नेटालमें बिता लिये। अब मैंने सोचा कि अगर मुझे दक्षिण अफ्रीकामें अभी और रहना हो तो बाल-बच्चोंको भी साथ रखना जरूरी है। कुछ समय देशका दौरा कर आनेका भी मन हुआ। सोचा कि उस बीच भारतके नेताओंको नेटाल और दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे भागोंमें बसनेवाले भारतीयोंकी स्थितिकी संक्षिप्त कल्पना भी करा दूंगा। कांग्रेसने छ महीनेकी छुट्टी दी और मेरी जगह नेटालके सुप्रसिद्ध व्यापारी स्व० आदमजी मियां खांको मंत्री नियुक्त किया। उन्होंने बड़ी होशियारीसे काम किया। स्व० आदमजी मियां खां अंग्रेजी अच्छी जानते थे। अनुभवसे अपने कामचलाऊ ज्ञानको उन्होंने खूब बढ़ा लिया था। गुजरातीका सामान्य अभ्यास था। उनका व्यापार खासतौरसे हब्शियोंमें था। अत जुलू भाषा और हब्शियोंके रस्म-रिवाजकी उन्हें अच्छी जानकारी थी। स्वभाव शांत और बहुत ही मिलनसार था। जितना जरूरी हो उतना ही बोलनेकी आदत थी।

यह सब लिखनेका हेतु इतना ही है कि बड़ी जिम्मेदारीके पदपर काम करनेके लिए अंग्रेजीके या दूसरे अक्षरज्ञानकी जितनी आवश्यकता होती है उससे कहीं अधिक आवश्यकता सचाई, शान्ति सहनशीलता, दृढ़ता अवसरकी पहचान और तदनुरूप कार्य करनेकी योग्यता हिम्मत और व्यवहार-बुद्धिकी होती है। ये गुण न हों तो अच्छे-से-अच्छे अक्षरज्ञानकी भी सामाजिक काममें धेले भर कीमत नहीं होती।

१८९६ के मध्यमें मैं हिंदुस्तान लौटा। कलकत्तेके रास्ते आया क्योंकि उस वक्त नेटालसे कलकत्ते जानेवाले स्टीमर आसानीसे मिल जाते थे। गिरमिटिया कलकत्ते या मद्राससे जहाजपर सवार होते थे। कलकत्तेसे बंबई आते हुए रास्तेमें मेरी ट्रेन छूट गई। इससे मुझे एक दिन इलाहाबादमें अटकना पड़ा। वहींसे मैंने अपना काम शुरू किया। 'पायोनियर'के मि. चेजनीसे मिला। उन्होंने सौजन्यके साथ बातें कीं। सचाईके साथ मुझे बता दिया कि उनका झुकाव उपनिवेशोंकी ओर है, पर कहा कि आप जो कुछ लिखेंगे उसे पढ़ जाऊंगा और अपने पत्रमें उसपर टिप्पणी भी लिखूंगा। मैंने इतनेको ही काफी समझा।

देशमें रहनेके दिनोंमें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें मैंने एक पुस्तिका लिखी। उसपर लगभग सभी अखबारोंमें टीका टिप्पणी हुई। उसके दो संस्करण छपवाने पड़े। पांच हजार प्रतियां देशके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भेजी गईं। इन्हीं दिनों मैंने भारतके नेताओंके दर्शन किये—बंबईमें सर फिरोजशाह मेहता न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी न्यायमूर्ति रानडे इत्यादिके पूनामें लोकमान्य तिलक और उनके मंडल प्रोफेसर भांडारकर, गोपाल कृष्ण गोखले और उनके मंडल वालोंके। बंबई से आरंभ करके पूना और मद्रासमें भाषण भी किये। इनका विवरण यहां नहीं देना चाहता।

पर पूनाका एक पवित्र संस्मरण दिये बिना नहीं रह सकता

यद्यपि अपने विषयके साथ उसका कोई संबंध नहीं। पूनामें सार्व जनिक सभा लोकमान्य तिलकके हाथमें थी। स्वर्गीय गोखले जीका संबंध दक्खिन सभाके साथ था। मैं पहले मिला तिलक महाराजसे। उनसे मैंने जब पूनामें सभा करनेकी बात कही तो उन्होंने मुझसे पूछा—'आप गोपालरावसे मिल चुके हैं ?

मैंने पहले उनका आशय नहीं समझा। अत उन्होंने फिर पूछा—"श्री गोखलेसे आप मिल चुके हैं ? उन्हें जानते हैं ?

मैंने जवाब दिया—"अभी मिला नहीं। उन्हें नामसे ही जानता हूं। पर मिलनेका इरादा है।

लोकमान्य—आप हिंदुस्तानकी राजनीतिसे परिचित नहीं जान पड़ते।

मैंने कहा—विलायतसे पढ़कर लौटनेके बाद मैं हिंदु स्तानमें थोड़े ही दिन रहा और उस अल्पकालमें भी राजनैतिक मामलोंमें जरा भी दखल नहीं दिया। इस चीजको मैं अपने बसके बाहरकी बात मानता था।

लोकमान्य—"तब मुझे आपको कुछ परिचय देना पड़ेगा। पूनामें दो पक्ष हैं—एक सार्वजनिक सभाका दूसरा दक्खिन सभाका।"

मैंने कहा—'इसके बारेमें तो मैं कुछ-कुछ जानता हूं।

लोकमान्य—"यहां सभा करना तो आसान है पर मैं देखता हूं कि आप अपना सवाल सब पक्षोंके सामने रखना चाहते हैं और मदद भी सबकी चाहते हैं। यह बात मुझे पसंद आती है पर आपकी सभाका सभापति हममेंसे कोई हो तो दक्खिन सभावाले नहीं आयंगे और दक्खिन सभाका कोई आदमी सभापति बने तो हममेंसे कोई नहीं जायगा। अत आपको तटस्थ सभापति ढूंढ़ना चाहिए। मैं तो इस मामलेमें सलाह भर द सकता हू। दूसरी मदद मुझसे नहीं हो सकेगी। आप प्रोफेसर भांडारकरको जानते हैं ? न जानते हों तो भी उनके पास जाइये। वह तटस्थ माने जाते हैं। राजनैतिक

'इंग्लिशमैन' के संपादक मि० सांडर्स आदिसे भी मिला। वहां सभाकी तैयारी हो रही थी कि इतनेमें मानो १८९६ ई० के नवंबर महीनेमें मुझे नेटालसे तार मिला— 'अविलम्ब आइये।' मैं समझ गया कि हिंदुस्तानियोंके खिलाफ कोई नया आंदोलन उठा होगा। अतः कलकत्तेका काम पूरा किये बिना ही पीछे फिरा और बम्बईसे आनेवाले पहले ही जहाजपर सवार हो गया। यह स्टीमर दादा अब्दुल्लाकी फर्मने खरीद लिया था और उसके अनेक साहसोंमें नेटाल और पोरबंदरके बीच जहाज चलानेका यह पहला साहस था। इस स्टीमरका नाम 'कोर्लैंड' था। इस स्टीमरके बाद तुरंत ही पर्शियन स्टीम नेविगेशन कंपनीका स्टीमर 'नादरी' भी नेटालके लिए रवाना हुआ। मेरा टिकट 'कोर्लैंड' का था। मेरा कुटुंब भी मेरे साथ था। दोनों जहाजोंमें सब मिलाकर दक्षिण अफ्रीका जाने वाले कोई ८० मुसाफिर रहे होंगे।

हिंदुस्तानमें जो आंदोलन मैंने किया वह इतनी बड़ी चीज हो गया—और बड़े अखबारोंमेंसे अधिकांशने उसपर लेख-टिप्पणियां लिखी—कि रायटरने उसके बारेमें विलायत तार भेजे। यह खबर मुझे नेटाल पहुंचते ही मिली। विलायत-के तारोंपरसे रायटरके वहांके प्रतिनिधिने एक मुख्तसर तार दक्षिण अफ्रीका भी भेजा। इस तारमें जो कुछ मैंने हिंदुस्तानमें कहा था उसमें थोड़ा नमक-मिर्च लगा दिया गया था। ऐसी अतिशयोक्ति हम अक्सर होते देखते हैं। यह सब जान-बूझकर नहीं किया जाता। बहुधंधी लोग किसी चीजको ऊपर-ऊपरसे पढ़ लेते हैं। उनका कुछ अपना ख्याल तो होता ही है। उसका एक खुलासा होता है। दिमाग उसका एक दूसरा ही खुलासा बना लेता है। फिर वह जहां-जहां जाता है वहां उसका एक नया ही अर्थ किया जाता है। ये सारी बातें अनायास हुआ करती हैं। सार्वजनिक कामोंमें यह खतरा रहता है और यह उनकी हद भी होती है। हिंदुस्तानमें मैंने नेटालके गोरोंपर आक्षेप किये। गिरमिटियोंपर लगाये

गये तीन पौंडके करके विरुद्ध बहुत कड़ी बातें कहीं। सुब्रह्मण्यम् नामक निरपराध गिरमिटियाको उसके मालिकने पीट दिया। उसके जख्म मैंने अपनी आंखों देखे। उसका सारा मामला मेरे ही हाथमें था। इससे उसकी तसवीर अपनी शक्तिके अनुसार मैं ठीक-ठीक खींच सका था। इस सबका खुलासा जब नेटालवासी गोरोंने पढ़ा तब वे मुझपर बहुत क्रुद्ध हुए। खूबी यह थी कि जो कुछ मैंने नेटालमें लिखा था वह हिंदुस्तानमें कही और लिखी हुई बातोंसे अधिक तीखा और अधिक ब्योरेवार था। हिंदुस्तानमें मैंने एक भी बात नहीं कही थी जिसमें तनिक भी अतिशयोक्ति हो पर अनुभवसे मैं इतना जानता था कि किसी भी घटनाका वर्णन अनजान आदमीके सामने करो तो जितना अर्थ हमने उसमें रखा हो वह अनजान श्रोता या पाठक उससे अधिक अर्थ उसमें देखता है। इससे जानबूझकर हिंदुस्तानमें नेटालका चित्र मैंने कुछ हलका ही खींचा था पर नेटालमें तो मेरा लेख बहुत थोड़े गोरे पढ़ते और उसकी परवाह करनेवाले और भी कम होते। हिंदुस्तानमें कही हुई बातके विषयमें इसका उलटा ही होता और हुआ। रायटरके खुलासोंको तो हजारों गोरे पढ़ते थे। फिर जो बात तारमें भिजने लायक समझी गई हो उसका महत्व जितना वास्तवमें हो उससे अधिक समझा जाता है। नेटालके गोरे जितना सोचते थे उतना असर हिंदुस्तानमें किये हुए मेरे कामका पड़ा होता तो गिरमिटकी प्रथा शायद बंद हो जाती और इससे सैकड़ों गोरे मालिकोंका नुकसान होता। इसके सिवा यह भी समझा जा सकता है कि नेटालके गोरोंकी हिंदुस्तान में बदनामी हुई।

इस प्रकार नेटालके गोरोंका पारा गरम हो रहा था कि इतनेमें उन्होंने सुना कि मैं बाल-बच्चोंके साथ 'कोर्लैंड' जहाजसे लौट रहा हूं। उस जहाजमें ३ ४ सौ हिंदुस्तानी यात्री हैं। उसीके साथ नादरी' नामका दूसरा स्टीमर भी उतने ही मुसाफिर लेकर आ रहा है। इससे बलती आगमें

गये तीन पौंडके करके विरुद्ध बहुत कड़ी बातें कहीं। सुब्रह्मण्यम् नामक निरपराध गिरमिटियाको उसके मालिकने पीट दिया। उसके जख्म मैंने अपनी आंखों देखे। उसका सारा मामला मेरे ही हाथमें था। इससे उसकी तसवीर अपनी शक्तिके अनुसार मैं ठीक-ठीक खींच सका था। इस सबका खुलासा जब नेटालवासी गोरोंने पढ़ा तब वे मुझपर बहुत क्रुद्ध हुए। खूबी यह थी कि जो कुछ मैंने नेटालमें लिखा था वह हिंदुस्तानमें कही और लिखी हुई बातोंसे अधिक तीखा और अधिक ब्योरेवार था। हिंदुस्तानमें मैंने एक भी बात नहीं कही थी जिसमें तनिक भी अतिशयोक्ति हो पर अनुभवसे मैं इतना जानता था कि किसी भी घटनाका वर्णन अनजान आदमीके सामने करो तो जितना अर्थ हमने उसमें रखा हो वह अनजान श्रोता या पाठक उससे अधिक अर्थ उसमें देखता है। इससे जानबूझकर हिंदुस्तानमें नेटालका चित्र मैंने कुछ हल्का ही खींचा था पर नेटालमें तो मेरा लेख बहुत थोड़े गोरे पढ़ते और उसकी परवाह करनेवाले और भी कम होते। हिंदुस्तानमें कही हुई बातके विषयमें इसका उलटा ही होता और हुआ। रायटरके खुलासोंको तो हजारों गोरे पढ़ते थे। फिर जो बात तारमें भेजने लायक समझी गई हो उसका महत्व जितना वास्तवमें हो उससे अधिक समझा जाता है। नेटालके गोरे जितना सोचते थे उतना असर हिंदुस्तानमें किये हुए मेरे कामका पड़ा होता तो गिरमिटकी प्रथा शायद बंद हो जाती और इससे सैकड़ों गोरे मालिकोंका नुकसान होता। इसके सिवा यह भी समझा जा सकता है कि नेटालके गोरोंकी हिंदुस्तान में बदनामी हुई।

इस प्रकार नेटालके गोरोंका पारा गरम हो रहा था कि इतनेमें उन्होंने सुना कि मैं बाल-बच्चोंके साथ 'कोर्लैंड' जहाजसे लौट रहा हूं। उस जहाजमें ३ ८ सौ हिंदुस्तानी यात्री हैं। उसीके साथ 'नादरी' नामका दूसरा स्टीमर भी उतने ही मुसाफिर लेकर आ रहा है। इससे बलती आगमें

भाया। दोनों जहाजोंके यात्रियोंने वापस आनसे साफ इनकार कर दिया। यह भी जता दिया—"बहुतेरे यात्रियोंको तो ट्रांसवाल जाना है। जो नेटालमें उतरना चाहते हैं उनमें भी बहुत-से नेटालके पुराने निवासी हैं। कुछ भी हो हरएकको नेटालमें उतरनेका कानूनन् हक है और कमेटीकी धमकीके बावजूद अपना हक साबित करनेके लिए मुसाफिर यहां उतरेंगे ही।

नेटाल की सरकार भी हारी। अनुचित प्रतिबंध कितने दिन चल सकता है ? २३ दिन तो हो गये पर वादा अब्दुल्ला न डिगे और न हिंदुस्तानी यात्री ही। अत २३ दिन बाद रोक हटा ली गई और जहाजों को अंदर आनेकी इजाजत मिली। इस बीच मि० एस्कम्बने उत्तेजित कमेटी को ठंडा कर दिया। उन्होंने सभा करके कहा—'डर्बन में यूरोपियनों ने खूब एकता और हिम्मत दिखाई। आप लोगों से जितना हो सकता था उतना आपने किया सरकारने भी आपकी सहायता की। इन लोगों को २३ दिनतक जहाजसे उतरने नहीं दिया। अपनी भावना और अपने जोशका जो दृश्य आपने दिखाया है वह काफी है। इसका गहरा असर बड़ी सरकारपर पड़ेगा। आपके कामसे नेटाल सरकारका रास्ता आसान हो गया। अब आपने बल-प्रयोग करके एक भी हिंदुस्तानी मुसाफिर को उतरने से रोका तो अपना काम आप अपने हाथों बिगाड़ देंगे। नेटाल सरकार की स्थिति भी कठिन हो जायगी और ऐसा करके भी इन लोगों को रोकने में आप सफल नहीं होंगे। मुसाफिरोंका तो कोई दोष है ही नहीं। उनमें स्त्रियां और बच्चे भी हैं। बम्बई में जब वे जहाज पर सवार हुए उस वक्त आपकी मनोदशाकी उन्हें खबर भी नहीं थी। इसलिए अब आप मेरी सलाह मानकर अपने-अपने घर चले जायं और इन लोगोंके आने में तनिक भी रुकावट न डालें। पर मैं आप लोगों को यह वचन देता हूं कि इसके बाद आनेवालोंको रोकने का अधिकार नेटालकी सरकार धारा-सभा से प्राप्त करेगी।

यह तो भाषण का सारमात्र है। मि० एस्कंबके श्रोता निराश तो हुए, पर मेटास के गोरों पर उनका बहुत भारी प्रभाव था। अतः उनके कहने से वे बिखर गये। दोनों जहाज बंदरगाह के अंदर आये।

मेरे बारे में उन्होंने कहला भेजा— 'आप दिन रहते जहाज-से न उतरें। शाम को मैं (मि० एस्कंब) बंदरगाह के सुपरिटेंडेंटको आपको लेने के लिए भेजूंगा। उनके साथ आप घर जायं। आपके घरवाले जब चाहें उतर सकते हैं।' यह कोई कानूनका हुक्म नहीं था, बल्कि कप्तानके लिए मुझे उतरने न देनेकी सलाह थी और मेरे सिरपर जो खतरा झूल रहा था उसकी चेतावनी थी। कप्तान मुझे जबर्दस्ती तो रोक नहीं सकता था। पर मैंने सोचा कि मुझे यह सलाह मान लेनी चाहिए। बाल-बच्चों को मैंने घर न भेजकर डर्बन के प्रसिद्ध व्यापारी और मेरे पुराने मवक्किल तथा मित्र पारसी रुस्तमजीके यहां भेजा और उनसे कहा कि वहीं तुम लोगोंसे मिलूंगा। मुसाफिर वगैरह उतर गये। इतनेमें मि० लॉटन दादा अब्दुल्ला के वकील और मेरे मित्र आये और मुझसे मिले। उन्होंने पूछा—"आप अबतक क्यों नहीं उतरे?" मैंने मि० एस्कंबके पत्र की बात कही। उन्होंने कहा—'मुझे तो शामतक इन्तजार करना और फिर चोर या अपराधीकी तरह शहरमें दाखिल होना पसंद नहीं आता। आपको कोई डर न हो तो अभी मेरे साथ चलें और हम इस तरह पैदल शहरसे होकर चले जायगे कि जैसे कुछ हुआ ही न हो।' मैंने जवाब दिया—"मैं यह नहीं मानता कि मुझे किसी तरहका डर है। मि० एस्कंबकी सूचना का आदर करूं या नहीं यही सवाल मेरे सामने है। इसमें कप्तानकी कुछ जिम्मेवारी है या नहीं इसको भी थोड़ा सोच लेना चाहिए।" मि० लॉटनने हंसकर कहा—"मि० एस्कंबने ऐसा क्या किया है कि उनकी सूचनापर आपको तनिक भी ध्यान देना ही पड़े। फिर इस सूचना में शुद्ध भलमनसी ही है, कोई छल-कपट नहीं

है यह मानने के लिए भी आपके पास क्या आधार है ? शहर में क्या हुआ है और उसमें इन भाईसाहबका कितना हाथ है यह जितना आप जानते हैं उससे ज्यादा मैं जानता हूं। (मैंने धीरेसे सिर हिलाया।) फिर यह मानलें कि उन्होंने अच्छे इरादेसे सलाह दी है तो भी उसपर अमल करनेमें आपकी प्रतिष्ठाकी हानि है यह मैं पक्का मानता हूं। इसलिए मेरी तो सलाह है कि आप तैयार हों तो अभी चलें। कप्तान तो अपना ही आदमी है। इसलिए उसकी जिम्मेदारी अपनी जिम्मेदारी है। इससे पूछनेवाले केवल दादा अब्दुल्ला हो सकते हैं। वह क्या सोचेंगे यह मैं जानता हूं क्योंकि इस लड़ाईमें उन्होंने खूब बहादुरी दिखाई है। मैंने कहा—'तो फिर चलें। मुझे कोई तैयारी नहीं करनी है। सिर्फ पगड़ी सिरपर धर लेना बाकी है। कप्तानको बताऊं और चल दें।' हमने कप्तानकी इजाजत ले ली।

मि. लॉटन डर्बनके बहुत पुराने और प्रसिद्ध वकील थे। हिंदुस्तान लौटनेके पहले ही उनके साथ मेरा बहुत निकटका संबंध स्थापित हो चुका था। अपने टेढ़े मुकदमोंमें मैं उनकी ही मदद लेता और अकसर उन्हें बड़ा (सीनियर) वकील भी बनाता था। वह खूब हिम्मतवाले आदमी थे। कद ऊंचा-पूरा था।

हमारा रास्ता डर्बनके बड़े-से-बड़े महल्लेसे होकर जाता था। हम जब रवाना हुए तब शामके चार-साढ़े चार बजे होंगे। आकाशमें कुछ थोड़े-से बादल थे पर सूरजको छिपा देनेके लिए काफी थे। सेठ रुस्तमजीके मकान का पैदल जानेपर कम-से-कम एक घंटेका रास्ता था। ज्योंही हम जहाजसे उतरे कुछ लड़कोंने हमें देख लिया। उनमें कोई बड़ी उम्रवाला तो था ही नहीं। आमतौरसे बंदरगाहपर जितने आदमी रहा करते हैं उतने ही आदमी दिखाई देते थे। मेरी जैसी पगड़ी पहननेवाला अकेला मैं ही था। इससे लड़कोंने मुझे तुरंत पहचान लिया और 'गांधी' 'गांधी' 'इसको मारो' 'घेरो'

चिल्लाते हुए हमारी ओर वह आये। कुछ लड़के ढेले भी फेंकने लगे। कुछ अधेड़ उमूवाले गोरे भी उनमें शामिल हो गये। धीरे-धीरे हल्ला बढ़ा। मि० लॉटनने देखा कि पैदल जानमें खतरा लेना है। अतः उन्होंने रिक्शा बुलाया। 'रिक्शा' के मानी हैं आदमीके खींचनेकी छोटी-सी गाड़ी। मैं तो कभी रिक्शा में बैठा ही न था कारण कि जिस सवारी को आदमी खींचता हो उसमें बठने से मुझे सख्त नफरत थी। मगर आज मुझे जान पड़ा कि रिक्शामें बैठ जाना मेरा धर्म है। पर भगवान् जिसको बचाना चाहते हों वह गिरना चाहे तो भी नहीं गिर सकता इसका तो मुझे अपने जीवनके पांच सात कठिन प्रसंगोंमें प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है। मैं नहीं गिरा, इसका धनिक भी यश मैं नहीं ले सकता। रिक्शा खींचनेवाले हबशी ही होते हैं। छोकरों और बड़ी उमूवाले गारोंने भी रिक्शावालेको धमकाया कि तुमने इस आदमीको रिक्शामें बैठाया तो हम तुम्हें पीटेंगे और तुम्हारा रिक्शा भी तोड़ डालेंगे। अतः रिक्शावाला 'खा' अर्थात् 'ना' कहकर चलता बना और मेरा रिक्शामें बैठना रह गया।

अब पैदल चलकर जानेके सिवा हमारे पास दूसरा रास्ता नहीं रहा। हमारे पीछे खासा मजमा जुट गया। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते मजमा भी बढ़ता जाता था। मुख्य रास्ते वेस्ट स्ट्रीटमें पहुंचनेपर तो छोटे-बड़े सैकड़ों लोग उसमें शामिल हो गये। एक तगड़े आदमीने मि लॉटनको दोनों हाथोंसे पकड़कर मुझसे अलग कर दिया। अतः अब उनकी स्थिति ऐसी न रही कि मेरे पास पहुंच सकें। मुझपर गालियों पत्थरों और जो कुछ भी उनके हाथमें आया उस सबकी वर्षा होने लगी। मेरी पगड़ी सिरसे गिरा दी गई। इतनेमें एक मोटे-तगड़े आदमीने पहुंचकर मुझको थप्पड़ जमाया और फिर लात भी मारी। मैं चक्कर खाकर गिर ही रहा था कि इतनेमें रास्तेके पासके एक मकानके आंगनकी रेलिंग मेरे हाथ में आ गई। मैंने जरा दम लिया और चक्कर दूर होनेपर

आगे बढ़ा। जीता घर पहुंचनेकी आशा लगभग छोड़ चुका था पर इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि उस वक्त भी मेरा दिल मारनेवालोंका रत्ती भर भी दोष नहीं देखता था।

इस तरह मैं अपना रास्ता तै कर रहा था कि इतनेमें डर्बनके पुलिस सुपरिंटेंडेंटकी पत्नी सामनेकी ओरसे आ निकलीं। हम एक-दूसरेको अच्छी तरह पहचानते थे। यह महिला बहादुर थीं। यद्यपि आकाशमें बादल घिर रहे थे और सूरज भी डूबनेको था फिर भी इस महिलाने अपनी छतरी मेरी रक्षाके लिए खोल दी और मेरी बगलमें होकर चलने लगीं। स्त्रीका अपमान और वह भी डर्बनके बहुत पुराने और लोकप्रिय कप्तानकी पत्नीका यह गोरे नहीं कर सकते थे। उन्हें चोट भी नहीं पहुंचा सकते थे। अतः उनको बचाते हुए मुझपर जो मार पड़ती वह बहुत हल्की होती। इस बीच पुलिस सुपरिंटेंडेंटको इस हमलेकी खबर मिली और उन्होंने पुलिसका एक दस्ता भेज दिया जिसने मुझको घेर लिया। हमारा रास्ता पुलिस चौकीकी बगलसे होकर जाता था। वहां पहुंचे तो देखा कि पुलिस सुपरिंटेंडेंट खड़े हमारी राह देख रहे हैं। उन्होंने मुझे चौकीमें ही चले जानेकी सलाह दी। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और उसमें आश्रय लेनेसे इनकार कर दिया। मैंने कहा कि मुझे तो अपने ठिकाने पर ही पहुंचना है। मुझे डर्बनके लोगोंकी न्यायवृत्ति और अपने सत्य पर विश्वास है। आपने जो मेरे रक्षार्थ पुलिस भेजी उसके लिए अहसानमंद हूं। इसके सिवा मिसेज अलेक्जेंडरने भी मेरी रक्षा की है।"

मैं सही-सलामत रुस्तमजीके यहां पहुंचा। वहां पहुंचते पहुंचते लगभग शाम हो गई थी। 'कोर्लेंड'के डाक्टर दादी बरजोर रुस्तमजी सेठके यहां मौजूद थे। उन्होंने मेरी चोटोंका इलाज शुरू किया। चोटें देखीं। वे अधिक नहीं थीं। एक भीतरी बंद मुहकी चोट बहुत दुख रही थी पर अभी मुझे शांति पानेका अधिकार नहीं मिला था। रुस्तमजी सेठके घरके सामने हजारों आदमी जमा हो गये। रात हुई तो बहुत-

से लफंगे लोग भी उस मजमेमें मिल गए। उन लोगोंने रुस्तमजी सेठको कहला भेजा कि गांधीको हमारे हवाले नहीं कर दोगे तो उसके साथ ही तुम्हें और तुम्हारी दुकानको भी जलाकर खाक कर देंगे। रुस्तमजी ऐसे भारतीय न थे जो किसीके डरानेसे डर जाते। सुपरिटेंडेंट अलेक्जेंडरको इसकी खबर मिली तो वह अपनी खुफिया पुलिसके साथ आकर चुपकेसे इस मजमेमें घुस गए। एक चौकी मंगाकर वह उसके ऊपर खड़े हो गए। यों लोगोंसे बातचीत करनेके बहाने रुस्तमजीके मकानके दरवाजे पर कब्जा कर लिया जिससे कोई उसको तोड़कर घुस न सके। खुफिया पुलिसके आदमियोंको उन्होंने पहले ही मुनासिब जगहों पर रख दिया था। पहुंचनेके साथ ही उन्होंने अपने एक अहलकारको कह दिया था कि हिंदुस्तानीकी पोशाक पहन और चेहरा रंगकर हिंदुस्तानी व्यापारीका भेष बना ले और मुझसे मिलकर कहे—आप अपने मित्रकी उनके मेहमानोंकी उनके मालकी और अपने बाल-बच्चोंकी रक्षा चाहते हों तो हिंदुस्तानी सिपाहीका पहनावा पहनकर रुस्तमजीके गोदामसे निकलकर मजमेमेंसे ही मेरे आदमीके साथ चुपकेसे निकल जाइए और पुलिस चौकी पर पहुंच जाइए, इस गलीके मोड़पर आपके लिए गाड़ी तैयार खड़ी है। आपको और दूसरोंको बचानेका मेरे पास बस यही एक रास्ता है। मजमा इतना उत्तेजित है कि उसे रोक रखनेकेलिए मेरे पास कोई साधन नहीं। आप जल्दी न करेंगे तो यह मकान जमींदोज कर दिया जायगा। यही नहीं जानमालका कितना नुकसान होगा इसका अंदाजा भी मैं नहीं कर सकता।

मैं स्थितिको तुरत समझ गया। मैंने उसी क्षण सिपाहीकी पोशाक मांगी और उसे पहनकर निकल गया और उक्त पुलिस कर्मचारीके साथ सही-सलामत चौकी पर पहुंच गया। इस बीच श्री अलेक्जंडर अवसरके अनुरूप गीतों और भाषणसे भीड़को रिझा रहे थे। जब उन्हें यह इशारा मिल गया कि

मैं पुलिस चौकीमें पहुंच गया तब उन्होंने अपना सच्चा भाषण आरम्भ किया

'आप लोग क्या चाहते हैं ?

'हम गांधीको चाहते हैं।

'उसको क्या करना चाहते हैं ?

'उसे हम जलाएंगे।

'उसने आपका क्या बिगाड़ा है ?

'उसने हमारे बारेमें हिंदुस्तानमें बहुतसी झूठी बातें कही हैं और नेटालमें हजारों हिंदुस्तानियोंको घुसा देना चाहता है।'

'पर वह बाहर न निकले तो क्या कीजिएगा ?'

'तो हम इस मकानमें आग लगा देंगे।

इसमें तो उसके बाल-बच्चे हैं। दूसरे स्त्री-पुरुष हैं। स्त्रियों और बच्चोंको आगमें भूनते आपको शर्म नहीं आती ?

'यह तो आपका दोष है। आप हमें लाचार करते हैं तो हम क्या करें ? हम तो और किसीको कष्ट देना नहीं चाहते। गांधीको सौंप दीजिए। बस हमें और कुछ नहीं चाहिए। आप अपराधीको न सौंपें और उसे पकड़नेमें दूसरोंको नुकसान पहुंचे तो इसका दोष हमारे सिर डालना कहांका न्याय है ?

सुपरिटेंडेंटने हलकी हंसी हंसकर उन लोगोंको यह खबर दी कि गांधी तो उन लोगोंके बीचसे होकर सही-सलामत दूसरी जगह पहुंच गया। लोग खिलखिलाकर हंस पड़े और 'झूठ-झूठ' चिल्ला उठे।

सुपरिटेंडेंट बोले— 'आप अपने बूढ़े कप्तानकी बातका विश्वास न करते हों तो तीन तीन या चार आदमियोंको पसंद करें उनकी कमेटी चुन दें। दूसरे सब लोग यह वचन दें कि कोई मकानके अंदर न घुसेगा और अगर कमेटी गांधीको घरके भीतर न पा सके तो सब लोग शांत होकर घर लौट जाएंगे। आप लोगोंने जोशमें आकर पुलिसके अधिकारको आज नहीं माना इसमें बदनामी पुलिसकी नहीं आपकी ही है। इसीसे पुलिसने आपके साथ चाल चली। आपके

शिकारको आपके बीचसे ही निकाल लेगई और आप हार गए, इसमें पुलिसको तो आप दोष दे ही नहीं सकते। जिस पुलिसको आपने ही नियुक्त किया है उसने अपने कर्तव्यका पालन किया है।

यह सारी बातचीत सुपरिंटेंडेंटने इतनी मिठास इतने हास्य और इतनी दृढ़ताके साथ की कि जो वचन वह मांग रहे थे लोगोंने दे दिया। कमेटी बनी। उसने पारसी रुस्तमजीके मकानका कोना-कोना छान डाला और लोगोंसे कहा— सुपरिंटेंडेंटकी बात सच है। उसने हमें हरा दिया। लोग निराश तो हुए पर अपने वचनपर स्थिर रहे, कोई नुकसान नहीं किया और अपने-अपने घर चले गए। यह दिन १८९७ ई० की १३ वीं जनवरीका था।

इसी दिन सवेरे ज्योंही मुसाफिरोंपर लगी हुई रोक हटी डर्बनके एक अखबारका रिपोर्टर मेरे पास आया और मुझसे सारी बातें पूछ गया था। मुझ पर लगाये गए इल्जामोंकी पूरी सफाई दे देना बहुत ही आसान था। मैंने मिसालें देकर दिखा दिया था कि मैंने तिलभर भी अत्युक्ति नहीं की है। जो कुछ मैंने किया है वह मेरा धर्म था। वह मैं न करूं तो मनुष्य कहलानेका भी अधिकारी न होऊंगा। यह सारी कैफियत दूसरे दिन पूरी-की-पूरी प्रकाशित हुई और समझदार यूरोपियनोंने अपना दोष स्वीकार किया। अखबारोंने नेटालकी परिस्थितिसे सहानुभूति प्रकट की पर साथ ही मेरे कार्यका पूरा समर्थन किया। इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी और साथ-साथ हिंदुस्तानी कौमकी भी। गोरोंपर यह बात साबित हो गई कि गरीब हिंदुस्तानी भी नामर्द नहीं हैं और व्यापारी भी अपने व्यापारकी परवा किए बिना, स्वाभिमान और स्वदेशके लिए लड़ सकते हैं।

इससे एक ओर यद्यपि जातिको दुःख सहन करना पड़ा और स्वयं दादा अब्दुल्लाको भारी नुकसान उठाना पड़ा फिर भी मैं मानता हूं कि इसके अंतमें तो लाभ ही हुआ।

जातिको अपनी शक्तिका कुछ अंदाजा मिला और उसका आत्मविश्वास बढ़ा। मैं भी कुछ अधिक कामका बना, बहुमूल्य अनुभव प्राप्त किया। उस दिनका विचार करता हूं तो देखता हूं कि ईश्वर मुझे सत्याग्रहके लिए तैयार कर रहा था।

नेटालकी घटनाओंका असर विलायतमें भी हुआ। उपनिवेश-सचिव मि० चेंबरलेनने नेटालकी सरकारको तार दिया कि जिन लोगोंने मुझपर हमला किया उनपर मुकदमा चलाया जाना चाहिए और मुझको न्याय मिलना चाहिए।

मि० एस्कब न्याय-विभागके प्रधान एटर्नी-जनरल थे। उन्होंने मुझे बुलाया और मि चेंबरलेनके तारकी बात कही। मुझे जो चोट पहुंची थी उसके लिए दुःख प्रकट किया और मैं बच गया इसपर प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने कहा—'मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपको या आपकी कौमके किसी आदमीको कष्ट पहुंचे यह मैं तनिक भी नहीं चाहता था। आपको कष्ट पहुंचनेका मुझे डर था इसीसे रातमें जहाजसे उतरनेके लिए संदेसा भेजा पर आपको मेरा सुझाव पसंद नहीं आया। मि० लॉटनकी सलाह आपने मानी इसके लिए मैं आपको तनिक भी दोष नहीं देना चाहता। आपको जो ठीक जान पड़े उसे करनेका आपको पूरा अधिकार था। मि चेंबरलेनकी मांगके साथ नेटालकी सरकार पूरी तरह सहमत है। हम चाहते हैं कि अपराधियोंको दंड मिले। हमला करनेवालोंमेंसे आप किसीको पहचान सकते हैं ?' मैंने जवाब दिया—'मुमकिन है, एक-दो आदमियोंको मैं पहचान सकूं पर यह बात आगे बढ़े इसके पहले ही मुझे आपको यह बता देना चाहिए कि मैंने अपने दिलमें यह निश्चय कर रखा है कि अपने ऊपर हुए हमलेके बारेमें मैं किसीके खिलाफ अदालतमें फरियाद नहीं करूंगा। हमला करनेवालोंका तो मैं कोई दोष भी नहीं देखता। उन्हें जो कुछ भी खबर मिली वह अपने नेताओंसे मिली। उसकी

सचाईकी जांच करने यह थोड़े बैठ सकते हैं ? मेरे बारेमें उन्होंने जो कुछ सुना यह सही हो तो वे भड़क उठें और आवेशमें आकर जो न करना चाहिए वह कर बैठें इसके लिए मैं उन्हें दोष नहीं दे सकता। उत्तेजित जनसमूह इसी रीतिसे न्याय करता आया है। अगर इस विषयमें किसीका दोष है तो उस कमेटीका है जो इस मामलेमें बनाई गई थी और खुद आपका है और इसलिए नेटालकी सरकारका है। रायटरने चाहे जैसे तार भेजे हों पर जब आप जानते थे कि मैं खुद यहां आ रहा हूं तब आपका और कमेटीका फर्ज था कि जो अनुमान आपने किए उनके बारेमें पहले मुझसे पूछते और मेरा जवाब सुनते फिर जो आपको मुनासिब मालूम होता है वह करते। अब मुझपर जो हमला हुआ उसके लिए मैं आपपर या कमेटीपर मुकदमा चला सकूं ऐसा तो है ही नहीं और यह मुमकिन हो तो भी अदालतके द्वारा न्याय पानेकी इच्छा मुझे नहीं है। नेटालके गोरोंके हककी रक्षाके लिए आपको जो कुछ करना ठीक जान पड़ा वह आपने किया। यह राजनैतिक विषय हुआ। मुझे भी इसी मैदानमें आपसे लड़ना और आपको और दूसरे गोरोंको यह दिखाना है कि भारतीय राष्ट्र ब्रिटिश-साम्राज्यके एक बड़े भागके रूपमें गोरोंको नुकसान पहुंचाए बिना केवल अपने सम्मान और अधिकारकी रक्षा करना चाहता है।

मि एस्कंब बोले—आपने जो कुछ कहा वह मैंने समझ लिया और वह मुझे पसंद भी आया। आपसे यह सुननेकी मैं आशा नहीं रखता था कि आप मुकदमा चलाना नहीं चाहते और आप मुकदमा चलाना चाहते तो मैं जरा भी नाखुश न होता पर जब आपने फरियाद न करनेका विचार प्रकट कर दिया है तब मुझे यह कहने में झिझक नहीं कि आपने उचित निश्चय किया है। इतना ही नहीं अपने इस संयमसे आप अपनी कौमकी विशेष सेवा करेंगे। साथ ही मुझे यह भी कबूल करना चाहिए कि अपने इस निश्चयसे आप नेटाल सरकारको

विषम स्थितिसे बचा लेंगे । आप चाहें तो हम पद-पकड़ वगैरह करेंगे पर आपको यह बतानेकी जरूरत नहीं है कि यह सब करनेसे गोरोंका क्रोध फिर उमड़ेगा अनेक प्रकारकी टीकाएं होंगी और ये बातें किसी भी सरकारको नहीं रुच सकतीं। पर अगर आपने अंतिम निश्चय कर लिया हो तो आप अपना विचार जतानेवाली एक चिट्ठी मुझको लिख दें। हमारी बातचीतका खुलासा भेजकर ही हम मि० चेंबरलेनके सामने अपनी सरकारका बचाव नहीं कर सकते । मुझे तो आपके पत्रके भावार्थका ही तार करना होगा । पर मैं यह नहीं कहता कि यह चिट्ठी आप मुझे अभी लिखकर दे दें। अपने मित्रोंके साथ आप मशविरा करलें । मि० लाटनकी भी सलाह ले लें। इसके बाद भी अगर आप अपनी रायपर कायम रहें तो मुझे लिखें । पर इतना मुझे कह देना चाहिए कि अपनी चिट्ठीमें फरियाद न करनेकी जिम्मेदारी आपको साफ तौरपर अपने ही ऊपर लेनी होगी। तभी मैं उसका उपयोग कर सकूंगा। मैंने कहा—"इस बारेमें मैंने किसीके साथ मशविरा नहीं किया है। आपने इस बातके लिए मुझे बुलाया है, यह भी मैं नहीं जानता था । और इस विषयमें किसीसे सलाह-मशविरा करनेकी इच्छा भी नहीं है। जब मि० लाटनके साथ चल देनेका निश्चय किया तभी अपने दिलमें तै कर लिया था कि मुझे कोई चोट पहुंचे तो इसके लिए दिलमें बुरा नहीं मानूंगा। अतः पीछे फरियाद करनेका तो सवाल ही नहीं हो सकता। मेरे लिए तो यह धार्मिक प्रश्न है और जैसा कि आप कहते हैं मैं यह मानता भी हूं कि अपने इस संयमसे मैं अपनी कौमकी सेवा करूंगा। यही नहीं, मुझे भी इससे लाभ ही है। इसलिए मैं अपने ऊपर सारी जिम्मेदारी लेकर यहीं आपको पत्र लिख देना चाहता हूं।" और मैंने वहीं उनसे सादा कागज लेकर चिट्ठी लिख दी।

८

भारतीयोंने क्या किया ?—३

विलायतसे संबंध

पिछले प्रकरणोंमें पाठकोंने देखा होगा कि भारतीय समाजने अपनी स्थिति सुधारनेके लिए विशेष और सामान्य रूपसे कितना प्रयत्न किया और उससे अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई। दक्षिण अफ्रीकामें जैसे उसने अपने सभी अंगोंका विकास करनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया उसी तरह हिंदुस्तान और विलायतसे जितनी मदद मिल सकती हो उतनी पानेकी कोशिश भी की। हिंदुस्तानके बारेमें तो थोड़ा पहले ही लिख चुका हूं। विलायतसे मदद पानेके लिए क्या-क्या किया गया अब इसका उल्लेख आवश्यक है। कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके साथ तो संबंध जोड़ना ही चाहिए था। इसलिए हर हफ्ते हिंदके दादा (दादाभाई नवरोजी) और कमेटीके अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्नको पूरे विवरणकी चिट्ठी लिखी जाती और जब-जब आवेदन-पत्रकी नकलें वगैरह भेजनेकी जरूरत होती तब-तब डाक-खर्च वगैरह और कमेटीके साधारण खर्चमें सहायताके रूपमें कम-से-कम १ पौंड भेज दिए जाते।

यहीं दादाभाईका एक पवित्र संस्मरण लिख दूं। वह इस कमेटीके अध्यक्ष न थे फिर भी हमें यही जान पड़ा कि रुपये उन्हींकी मार्फत भेजना हमें शोभा देगा वह भले ही उन्हें हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करें। पर पहली ही बार जो रकम हमने भेजी दादाभाईने उसे लौटा दिया और लिखा कि रुपये भेजने आदि कमेटीसे संबंध रखनेवाले काम आपको सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत ही करने चाहिएं। मेरी अपनी (दादाभाईकी) मदद तो रहेगी ही। पर कमेटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत काम लेनेमें ही बढ़ेगी। मैंने यह भी देखा कि दादाभाई इतने

बूढ़े होनेपर भी अपने पत्रव्यवहारमें बहुत ही नियमित थे। उन्हें कुछ लिखना न हो तो भी पत्रकी पहुंच तो लौटती डाकसे आ ही जाती और उसमें आश्वासनके दो शब्द तो होते ही। ऐसी चिट्ठियां भी खुद ही लिखते और इन पहुंचवाली चिट्ठियोंकी नकल भी अपनी टिशू पेपर बुकमें छाप लेते।

एक पिछले प्रकरणमें मैं यह भी दिखा चुका हूं कि यद्यपि कांग्रेसका नाम आदि हमने रखा था पर अपने मसलेको एक पक्ष का प्रश्न बना देनेकी बात हमने कभी सोची ही नहीं थी। इससे दादाभाईकी जानकारीमें दूसरे पक्षोंके साथ भी हमारा पत्र व्यवहार चलता रहता। इसमें दो आदमी मुख्य थे एक सर मंचेरजी भावनगरी और दूसरे सर विलियम विल्सन हंटर। सर मंचेरजी भावनगरी उन दिनों पार्लमेंटके सदस्य थे। इनको अच्छी मदद मिलती और वह सदा उपयोगी सूचनाएं भी दिया करते पर दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके महत्त्वको भारतीयोंसे भी पहले समझने और कीमती मदद देनेवाले थे सर विलियम विल्सन हंटर। ये 'टाइम्स'के भारतीय विभागके संपादक थे। उनको जब हमारा पहला पत्र मिला तभीसे वह दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिका सच्चा रूप ब्रिटिश जनताके सामने रखने लगे और जहां-जहां ठीक जान पड़ा वहां-वहां निजी पत्र भी लिखे। जब कोई जरूरी मसला पेश होता तब उनकी डाक लगभग हर हफ्ते आती। अपने पहले ही उत्तरमें उन्होंने लिखा—'आपने जो स्थिति बताई है उसे पढ़कर मुझे दुःख हुआ है। अपना काम आप विनयसे, शांतिसे और अत्युक्तिसे बचते हुए कर रहे हैं। मेरी हमदर्दी इस मामलेमें पूरे तौरपर आपकी तरफ है और आपको न्याय मिले इसके लिए जो-कुछ मुमकिन हो सके वह निजी और सार्वजनिक रूपमें भी करना चाहता हूं। मुझे निश्चय है कि इस मामलेमें हम एक इंच भी पीछे नहीं हट सकते। आपकी मांग ऐसी है कि निष्पक्ष मनुष्य उसमें काटछांट करनेकी बात कह ही नहीं सकता। लगभग यही शब्द टाइम्स'में इस विषयपर उन्होंने

जो पहला लेख लिखा उसमें भी लिखे। यही स्थिति उन्होंने अंततक कायम रखी। लेडी हटरने एक पत्रमें लिखा था कि जीवनके आखिरी दिनोंमें भी वह भारतीय प्रश्नपर एक लेखमाला लिखनेकी बात सोच रहे थे और उसका खाका तैयार कर लिया था।

मनसुखलाल नाजरका नाम पिछले प्रकरणमें दे चुका हूं। अपने प्रश्नको अधिक अच्छी तरह समझानेके लिए वे कौमकी तरफसे विलायत भेजे गए थे। उन्हें दोनों पक्षोंसे मिलकर काम करनेकी हिदायत की गई थी और विलायतमें रहनेके दिनोंमें वह स्व० सर विलियम हटर, सर मंचेरजी भावनगरी और कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके साथ बराबर मिलते रहते थे। वैसेही वे भारतीय सिविल सर्विसके पेंशनर कर्मचारियों भारतीय सचिवके दफ्तर और उपनिवेश विभाग आदिसे भी संपर्क रखते थे। इस प्रकार एक भी दिशा जहां हमारी पहुंच हो सकती थी कोशिशसे बाकी नहीं रखी। इस सबका फल इतना तो पक्के तौरसे हुआ कि प्रवासी भारतीयोंकी स्थिति बड़ी सरकारके लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गई और उसका भला-बुरा असर दूसरे उपनिवेशोंपर भी पड़ा। यानी जहां-जहां हिंदुस्तानी बसते थे वहां-वहां हिंदुस्तानी और गोरे दोनों जाग्रत हो गए।

८
बोअर-युद्ध

जिन पाठकोंने पिछले प्रकरणोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा उन्हें इसकी कल्पना हो गई होगी कि बोअर-युद्धके समय दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी क्या स्थिति थी। तबतक हुए प्रयत्नोंकी चर्चा भी की जा चुकी है।

१८९९ ई० में डाक्टर जेमिसनने खानोंके मालिकोंके साथ हुए गुप्त परामर्शके अनुसार, जोहान्सबर्गपर धावा किया।

दोनोंकी आशा तो यह थी कि जोहान्सबर्गपर कब्जा हो जानेके बाद ही बोअर सरकारको उनके धावेकी खबर होगी पर यह हिसाब लगानेमें डा० जेमिसन और उनके दोस्तोंने भारी भूल की। उनका दूसरा अंदाजा यह था कि उनकी गुप्त योजना प्रकट हो भी गई तो रोडेशियामें सिखाये हुए निशानबाजों-के सामने रण-शिक्षासे कोरे बोअर-किसान क्या कर सकेंगे उन्होंने यह भी सोच रखा था कि जोहान्सबर्गकी आबादीका बहुत बड़ा भाग तो हमारा स्वागत ही करेगा। पर इस मर्तबे डाक्टरका यह हिसाब भी गलत रहा। राष्ट्रपति क्रूगरको सारी योजनाकी खबर वक्तसे मिल गई थी। उन्होंने अतिशय शांति और कुशलताके साथ गुप्त रीतिसे डाक्टर जेमिसनका सामना करनेकी तैयारी कर ली और साथ-साथ जो लोग साजिशमें उनके साथी थे उन्हें गिरफ्तार कर लेनेकी तैयारी भी कर रखी। अतः डाक्टर जेमिसन जोहान्स-बर्गके पास पहुंच पाएं इसके पहले ही बोअर-सेनाने गोलियोंकी बौछारसे उनका स्वागत किया। इस सेनाके सामने डाक्टर जेमिसनका जत्था टिक नहीं सकता था। जोहान्सबर्गमें कोई बगावत न कर सके इसका भी पूरा प्रबंध कर लिया गया था। इससे वहां किसीने सिर उठानेका साहस नहीं किया। राष्ट्रपति क्रूगरकी सतर्कतासे जोहान्सबर्गके करोड़पति अवाक रह गए। इतनी बढ़िया तैयारी कर रखनेका अति सुन्दर फल यह हुआ कि इस संकटका सामना करनेमें सरकारका कम-से-कम पैसा खर्च हुआ और जानका नुकसान भी कम से-कम हुआ।

डा० जेमिसन और उनके दोस्त सोनेकी खानोंके मालिक पकड़े गए। उनपर तुरत मुकदमा चलाया गया। कितनोंको फांसीकी सजा हुई। इनमें अधिकांश तो करोड़पति ही थे। बड़ी सरकार इसमें क्या कर सकती थी? दिन-दहाड़ेका हमला था। राष्ट्रपति क्रूगरका महत्त्व एकबारगी बढ़ गया। उप निवेश-सचिव मि० चेंबरलेनने दीनवचन-युक्त तार भेजा

और राष्ट्रपति क्रूगरके दयाभावको जगाकर उन बड़े आदमियोंके लिए दयाकी भीख मांगी। राष्ट्रपति क्रूगर अपना दाव अच्छी तरह खेलना जानते थे। दक्षिण अफ्रीकामें कोई शक्ति उनकी राजशक्ति छीन सकती है इसका डर उन्हें था ही नहीं। डाक्टर जेमिसन और उनके मित्रोंकी साजिश उनकी गणनाके अनुसार तो सुयोजित वस्तु थी पर राष्ट्रपति क्रूगरके हिसाबसे वह बाल-बुद्धिका कार्य थी। इसलिए उन्होंने मि० चेंबरलेनकी बिनती स्वीकार कर ली और किसीको भी फांसीकी सजा नहीं दी। इतना ही नहीं सभी अपराधियोंको क्षमा देकर छोड़ दिया।

पर उछला हुआ अन्न कबतक पेट में रह सकता है? राष्ट्रपति क्रूगर भी जानते थे कि डा० जेमिसनका हमला तो गंभीर रोगका छोटा-सा चिन्ह-मात्र था। जोहान्सबर्गके करोड़पति अपनी बेइज्जतीको किसी तरह भी धो डालनेका प्रयत्न न करें यह हो नहीं सकता था। फिर जिन सुधारोंके लिए डा० जेमिसनके हमलेकी योजना की गई थी उनमेंसे तो एक भी नहीं हो पाया था। इसलिए करोड़पति मुंह बंद किये बैठे रहें यह मुमकिन नहीं था। उनकी मांगोंके साथ दक्षिण अफ्रीकामें ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान प्रतिनिधि (हाई कमिश्नर) लार्ड मिल्नरकी पूरी हमदर्दी थी। वैसे ही मि० चेंबरलेनने भी ट्रांसवालके विद्रोहियोंके प्रति राष्ट्रपति क्रूगरकी महती उदारताकी सराहना करनेके साथ ही सुधार करनेकी आवश्यकताकी ओर भी उनका ध्यान खींचा था। सभी मानते थे कि बिना तलवार उठाये यह झगड़ा मिटनेवाला नहीं है। सामोक मालिकोंकी मांगें ऐसी थीं कि उनका अंतिम परिणाम ट्रांसवालमें बोअरोंकी प्रधानता का नष्ट हो जाना ही हो सकता था। दोनों पक्ष समझते थे कि आखिरी नतीजा लड़ाई ही है। इसलिए दोनों उसकी तैयारी कर रहे थे। इस समय का शब्द-युद्ध देखने लायक था। राष्ट्रपति क्रूगर बाहरसे अधिक हथियार मंगाते तो ब्रिटिश एजेंट उन्हें चेतावनी

देखा कि आत्मरक्षाकेलिए अंग्रेज सरकारको भी दक्षिण अफ्रीकामें थोड़ी सेना लानी होगी। जब ब्रिटिश सेना दक्षिण अफ्रीकामें दाखिल होती तो राष्ट्रपति क्रूगरकी ओरसे ताना मारा जाता और ज्यादा तैयारी की जाती। यों एक पक्ष दूसरेपर दोष लगाता और दोनों युद्धकी तैयारी करते जाते।

राष्ट्रपति क्रूगर जब पूरी तैयारी कर चुके तब उन्होंने देखा कि अब बैठे रहना तो अपनी गरदन खुद दुश्मनके हाथोंमें दे देना है। ब्रिटिश साम्राज्यके पास धन-जनका अक्षय भंडार है। वह सबेरे शामतक धीरे-धीरे तैयारी करते और राष्ट्रपति क्रूगरको समझाते-बुझाते न्यायकी बिनती करते हुए वक्त गुजार सकता है और यों दुनियाको दिखा सकता है कि जब राष्ट्रपति क्रूगर खान मालिकोंको न्याय दे ही नहीं रहे हैं तब हमें निरुपाय होकर युद्ध करना पड़ रहा है। यों कहकर वह ऐसी जबर्दस्त तैयारीके साथ युद्ध करेगा कि बोअर उसके सामने टिक ही नहीं सकेंगे और उन्हें दीन बनकर उसकी मांगें मंजूर करनी पड़ेंगी। जिस जातिके १८ से लगाकर साठ सालतकके सारे पुरुष कुशल योद्धा हों जिसकी स्त्रियां भी चाहें तो तलवारके हाथ दिखा सकती हों जिस जातिमें स्वतन्त्रता धार्मिक सिद्धांत माना जाता हो वह जाति चक्रवर्ती राजाके बलके सामने भी दैन्य ग्रहण नहीं करेगी। बोअर जनता ऐसी ही वीर थी।

आरेंज फ्री स्टेटके साथ राष्ट्रपति क्रूगरने पहले ही समझौता कर ली थी। इन दोनों बोअर राज्योंकी एक ही पद्धति थी। राष्ट्रपति क्रूगरका यह इरादा बिलकुल ही नहीं था कि ब्रिटिश मांगको पूरा-पूरा या इस हद तक मंजूर कर लें कि खानोंके मालिकोंको सन्तोष हो जाय। अतः दोनों राज्योंने सोचा कि जब युद्ध होना ही है तो जब इसमें जितनी देर की जायगी उतना ही वक्त ब्रिटिश सल्तनतको अपनी तैयारी बढ़ानेके लिए मिलेगा। फलतः राष्ट्रपति क्रूगरने अपना अंतिम विचार और आखिरी मांग लार्ड मिल्नरको लिख भेजी। इसके साथ ही ट्रांसवाल और आरेंज फ्री स्टेटकी सरहदों पर फौज

भी जमायी। इसका नतीजा दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता था। ब्रिटिश साम्राज्य जैसा चक्रवर्ती राज्य धमकीके सामने कब झुक सकता है ? अल्टिमेटम'की अवधि पूरी हुई और बोअर सेना विद्युद्वेगसे आगे बढ़ी। उसने लेडी स्मिथ किंबरली और मेफेकिंगका घेरा डाल दिया। इस प्रकार १८९९में यह महायुद्ध आरंभ हुआ। पाठक जानते ही हैं कि इस युद्धके कारणोंमें यानी ब्रिटिश मांगोंमें बोअर राज्योंमें भारतीयोंकी परिस्थिति और उनके साथ होनेवाला व्यवहार भी शामिल था।

इस अवसरपर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका कर्तव्य क्या है यह महत्वपूर्ण प्रश्न उनके सामने उपस्थित हुआ। बोअर लोगोंमेंसे तो सारा पुरुषवर्ग लड़ाईपर चला गया। वकीलोंने वकालत छोड़ी किसानोंने अपने खेत छोड़े व्यापारियोंने अपनी कोठियों-दुकानोंपर ताले डाल दिए, नौकरी करनेवालोंने नौकरी छोड़ी। अंग्रेजोंकी तरफसे बोअरोंके बराबर तो नहीं फिर भी केप कॉलोनी नेटाल और रोडेशियामें असैनिक वर्गके बहुसंख्यक लोग स्वयंसेवक बने। बहुतसे बड़े अंग्रेज वकीलों और व्यापारियोंने उनमें नाम लिखाया। जिस अदालतमें मैं वकालत करता था उसमें भी अब बहुत ही थोड़े वकील दिखाई दिए। बड़े वकीलोंमेंसे तो अधिकांश लड़ाईके काममें लग गए थे। हिंदुस्तानियों पर जो तुहमतें लगाई जाती हैं उनमेंसे एक यह है, ये लोग दक्षिण अफ्रीकामें केवल पैसा कमाने और जोड़नेके लिए आये हैं। हम (अंग्रेजों) पर ये निरे भार रूप हैं और जैसे कीड़ा काठके भीतर घुसकर उसको कुरेदकर खोखला कर देता है वसे ही ये लोग हमारा कलेजा कुरेदकर खा जानेके लिए ही आये हैं। इस देशपर हमला हो हमारा घरबार लुट जानेका वक्त आजाय तो ये हमारे कुछ भी काम आनेवाले नहीं। हमें लुटेरोंसे अपना ही बचाव नहीं करना होगा इन लोगोंकी रक्षा भी करनी होगी। इस आरोपपर भी हम सभी भारतीयोंने विचार किया। हम सबको जान पड़ा कि यह आरोप मिथ्या निराधार है। इसे

सिद्ध करनेका यह बहुत बढ़िया मौका है। पर दूसरी ओरसे नीचे लिखी बातें भी सामने पड़ीं

"हमें तो अंग्रेज और बोअर दोनों एक-सा सताते हैं। ट्रांसवालमें दुःख हो और नेटाल तथा केप कॉलोनीमें न हो सो बात नहीं है। कोई अंतर है तो केवल मात्राका। फिर हमारी स्थिति तो गुलाम कौमकी-सी कही जाती है। हम जानते हैं कि बोअर जैसी मुट्ठीभर आदमियोंकी कौम अपने अस्तित्वके लिए लड़ रही है। इस दशामें भी हम उसका विनाश होनेमें सहायक क्यों हों? अतमें व्यवहारकी दृष्टिसे देखें तो कोई यह कहनेका साहस नहीं कर सकता कि बोअर इस लड़ाईमें हार जायंगे। वह जीत गए तो हमसे बदला चुकानेमें कब चूकनेवाले हैं?"

इस दलीलको पेश करनेवाला हममेंसे एक सबल पक्ष था। मैं खुद भी इस दलीलको समझता और उसको मुनासिब वजन भी देता था। फिर भी वह मुझे ठीक नहीं लगी और उसके भीतर भरे हुए अर्थका उत्तर मैंने अपने-आपको और कौमको इस प्रकार दिया

"दक्षिण अफ्रीकामें हमारी हस्ती महज ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे ही है। हरएक अर्जीमें हमने ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे ही हक मांगे हैं। ब्रिटिश प्रजा होनेमें हमने गौरव माना है, या अपने ऊपर शासन करनेवालों और दुनियासे यह मनवाया है कि उसमें हमारा गौरव है। राज्याधिकारियोंने भी हमारे हकोंकी रक्षा केवल इसीलिए की है कि हम ब्रिटिश प्रजाजन हैं और जो थोड़े-बहुत हक बचाए जा सके हैं वह भी हमारे ब्रिटिश प्रजा होनेसे ही। अब अंग्रेजोंका और हमारा भी घरबार लुट जानेका खतरा हो तब महज तमाशबीनकी तरह दूरसे तमाशा देखते रहें तो यह हमारे मनुष्यत्वको शोभा नहीं देगा। यही नहीं, यह अपने कष्टको और बढ़ा लेना भी होगा। जिस आरोपको हम मिथ्या मानते हैं उसको झूठा साबित कर देनेका हमें अनायास अवसर मिला है। इस अवसरको जो

देना अपने हाथों ही उस इस्लामकी सचाईका सबूत पेश कर देना होगा। फिर हमारे ऊपर अधिक जुल्म आए और अंग्रेज और ज्यादा ताना मारें तो यह अचरजकी बात न होगी। यह तो हमारा ही अपराध माना जायगा। अंग्रेजोंके सारे आरोप आधार रहित हैं, उनमें दलीलके लायक भी दम नहीं है यह कहना अपने-आपको ठगने जैसा है। यह सही है कि ब्रिटिश साम्राज्यमें हमारी हैसियत गुलामकी-सी है पर अबतक हमारा व्यवहार यही रहा है कि साम्राज्यमें रहते हुए गुलामीसे छूटनेकी कोशिश करते रहें। हिंदुस्तानके सभी नेता इसी नीतिका अनुसरण कर रहे हैं। हम भी यही करते रहे हैं। अगर हम चाहते हों कि ब्रिटिश साम्राज्यके अंग बने रहकर ही अपनी स्वाधीनता प्राप्त करें और उन्नति करें तो इस वक्त लड़ाईमें तन-मन-धनसे अंग्रेजोंकी मदद करके वैसा करनेका यह सुनहला मौका है। बोअरोंका पक्ष न्याय-का पक्ष है यह बात अधिकांशमें स्वीकार की जा सकती है पर किसी राज्यतन्त्रके अंदर रहकर प्रजावर्गका प्रत्येक जन हर मामले-में अपनी निजकी रायपर अमल नहीं कर सकता। राज्याधिकारी जितने काम करें सब ठीक ही हों यही नहीं होता। फिर भी प्रजावर्ग जबतक शासन-विशेषको स्वीकार करता है तबतक उसके कार्योंके अनुकूल होना और उनमें सहायता करना उसका स्पष्ट धर्म है।

'फिर प्रजाका कोई वर्ग धार्मिक दृष्टिसे राज्यके किसी कार्यको अनीतिमय मानता हो तो उसका फर्ज है कि उस कार्यमें विघ्न डालने या सहायता करनके पहले राज्यको उस अनीतिसे बचानेकी कोशिश पूरे तौरसे और जानकी जोखिम उठाकर भी करे। हमने ऐसा कुछ नहीं किया। ऐसा धर्म हमारे सामने उपस्थित भी नहीं है और न हममेंसे किसीने यह कहा या माना है कि ऐसे सार्वजनिक और व्यापक कारणसे हम इस लड़ाईमें शामिल होना नहीं चाहते। अतः प्रजारूपमें हमारा सामान्य धर्म तो यही है कि लड़ाईके गुण-दोषका विचार न करके जब यह हो ही रही है तो उसमें यथाशक्ति सहायता करें। अंतमें यह कहना या

मानना कि बोअर राज्योंकी जीत होनेपर—व न जीतने यह माननेके लिए कोई भी कारण नहीं है—हम फूल्हेसे निकलकर भाड़में गिरेंगे और पीछे वे मनमाना वैर चुकाएंगे और बोअर जाति और खुद अपने साथ भी अन्याय करना है। यह बात तो महज हमारी नामर्दीकी निशानी गिनी जायगी। ऐसा सोचना तक अपनी वफादारीको बट्टा लगाना होगा। कोई अंग्रेज क्या क्षण भरके लिए भी यह सोच सकता है कि अंग्रेज हार गए तो मेरी अपनी क्या दशा होगी? लड़ाईके मैदानमें उतरनेवाला कोई भी आदमी अपनी मनुष्यता गवाए बिना ऐसी दलील कर ही नहीं सकता।

यह दलील मैंने १८९९ में सामने रखी थी और आज भी उसमें कहीं रद्दोबदलकी गुंजाइश नहीं दिखाई देती। अर्थात् ब्रिटिश राज्यतंत्रके प्रति जो मोह उस वक्त मेरे मनमें था उस राज्यतंत्रके अधीन रहकर अपनी आजादी हासिल कर लेनेकी जो आशा उस समय मैंने बांधी थी वह मोह और वह आशा आज भी मेरे मनमें बसी हो तो मैं अक्षरशः यही दलील दक्षिण अफ्रीकामें और वैसी परिस्थितिमें यहां भी पेश करूंगा। इस दलीलका खंडन करनेवाली बहुतेरी दलीलें मैंने दक्षिण अफ्रीकामें सुनी और उसके बाद विलायतमें भी सुनीं। फिर भी अपने विचार बदलनेका कोई भी कारण मैं नहीं देख सका। मैं जानता हूं कि मेरे आजके विचारोंका प्रस्तुत विषयके साथ कुछ भी संबंध नहीं पर ऊपरका भेद बता देनेके लिए दो सबल कारण हैं। एक तो यह कि यह पुस्तक उतावलीसे हाथमें लेनेवाला इसे धीरजके साथ और ध्यानपूर्वक पढ़ेगा यह आशा रखनेका मुझे कोई हक नहीं। ऐसे पाठकको मेरी आजकलकी सरगर्मीके साथ साथ उपर्युक्त विचारोंका मेल बैठाना कठिन होगा। दूसरा कारण यह है कि इस विचार-श्रेणीके अंदर भी सत्यका ही आग्रह है। जैसा अंतरमें है वैसा ही दिखाना और तदनुसार आचरण करना धर्माचरणकी आखिरी नहीं पहली सीढ़ी है। धर्मकी इमारत इस नींवके बिना खड़ी करना असंभव है।

अब हम पिछले इतिहासकी ओर लौटें।

मेरी दलील बहुतोंको पसंद आई। मैं पाठकोंसे यह मन वाना नहीं चाहता कि यह दलील अकेले मेरी ही थी। फिर यह दलील पेश की जानेके पहले भी लड़ाईमें साथ देनेका विचार रखनेवाले बहुतेरे हिंदुस्तानी थे ही पर अब व्यावहारिक प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि युद्धके इस नक्कारखानेमें हिंदुस्तानी तूती की आवाज कौन सुनेगा ? उसकी क्या गिनती होगी ? हथियार तो हममेंसे किसीने कभी हाथमें लिया ही नहीं था। युद्धके बिना हथियारवाले काम करनेके लिए भी तालीम तो मिलनी ही चाहिए। यहां तो एक तालपर कूच करना भी हममेंसे किसीको नहीं आता था। सेनाके साथ लंबी मंजिलें तै करना अपना सामान खुद लादकर चलना यह भी हमसे कैसे होगा? फिर गोरे हम सबको कुली ही समझेंगे। अपमान भी करेंगे तिरस्कारकी दृष्टिसे देखेंगे। यह सब कैसे सहन होगा ? हमने फौजमें भरती होनेकी मांग की तो इस मांगको मंजूर कैसे कराएंगे ? अंतमें हम सब इस निश्चय पर पहुंचे कि इस मांगको मंजूर करानेके लिए जोरदार कोशिश करें। काम कामको सिखाता है। इच्छा होगी तो शक्ति ईश्वर देगा ही। सौंपा हुआ काम कैसे होगा इसकी चिंता छोड़ दें। युद्ध कार्यकी जितनी शिक्षा मिल सके उतनी ले लें और एक बार सेवा धर्म स्वीकार करनेका निश्चय कर लें तो फिर मान-अपमान के विचारको दूर रखें। अपमान हो तो उसे सहकर भी सेवा करते रहें।

अपनी मांगको मंजूर करानेमें हमें बेहद कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। उनका इतिहास रोचक है पर उसे देनेका यह स्थान नहीं। इसलिए इतना ही कह देना काफी होगा कि हम मेंसे मुख्य जमीन धायकों और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेकी शिक्षा प्राप्त की अपनी शारीरिक स्थितिके विषयमें डाक्टरका सार्टिफिकेट हासिल किया और लड़ाईपर जानेकी मांग सरकारके पास भेज दी। इस पत्र और मांगको मंजूर करानेके लिए उसमें जो आग्रह दिखाया गया था उसका बहुत अच्छा असर हुआ। पत्रके उत्तरमें सरकारने हमारा उपकार माना पर उस वक्त

हमारी मांग मंजूर करनेसे इंकार किया। इस बीच बोअरोंका बल बढ़ता गया। उनका धावा जबरदस्त बाढ़की तरह हुआ और नेटालकी राजधानीतक पहुंच जानेका खतरा दिखाई देने लगा। हजारों जख्मी हुए। हमारी कोशिश तो जारी ही थी। अंतमें ऐम्ब्युलेंस कोर (घायलोंको उठाने और उनकी सेवा करनेवाले दस्ते) के रूपमें हमें स्वीकार कर लिया गया। हम तो लिख ही चुके थे कि अस्पतालोंमें पाखाने साफ करने या झाड़ू लगानेका काम भी हमें मंजूर होगा। अब एम्ब्युलेंस कोर बनानेका सरकारका विचार हमें स्वागत करने योग्य जान पड़ा इसमें कोई अचरजकी बात नहीं। हमारा प्रस्ताव स्वतंत्र और गिरमिट-मुक्त भारतीयोंके विषयमें ही था पर हमने सलाह दी थी कि गिरमिटियोंको भी इसमें शामिल कर लेना वांछनीय है। इस वक्त तो सरकारको जितने भी आदमी मिल सकें उतने दरकार थे। इससे सब कोठियोंमें भी निमंत्रण भेज गए। फलतः लगभग ११०० भारतीयोंका शानदार विशाल दस्ता डरबनसे रवाना हुआ। उसके प्रस्थानके समय भी एस्कम्ब जिनके नामसे पाठक परिचित ही हैं और जो गोरे स्वयंसेवकोंके महानायक थे हमें धन्यवाद और आशीर्वाद दिया।

अंग्रेजी अखबारोंको यह सब चमत्कार-सा लगा। हिंदुस्तानी युद्धमें कुछ भी मदद देंगे इसकी उन्हें आशा ही नहीं थी। एक अंग्रेजने अपने एक प्रमुख पत्रमें एक स्तुतिकाव्य लिखा जिसके टेककी पंक्तिका अर्थ यह है, "अंततः हम सभी एक ही साम्राज्यके बच्चे हैं।"

इस दलमें ३०० से ४०० तक गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानी थे जो स्वतंत्र भारतीयोंकी कोशिशसे इकट्ठा हुए थे। इनमेंसे ३७ मुखिया माने जाते थे। इन्हीं लोगोंके हस्ताक्षरसे सरकारके पास प्रस्ताव भेजा गया था और दूसरोंको इकट्ठा करनेवाले भी यही थे। नेताओंमें बरिस्टर, क्लर्क मुनीम आदि थे। बाकीके लोगोंमें कारीगर राज बढ़ई और मामूली मजदूर वगैरह थे। इनमें हिंदू, मुसलमान मद्रासी उत्तर भारत वाले इस प्रकार

सभी वर्गोंके लोग थे। व्यापारी वर्गमेंसे कह सकते हैं कि एक भी आदमी नहीं था पर व्यापारियोंने अपना हिस्सा पैसेके रूपमें दिया और काफी दिया।

इतने बड़े दस्तेको जो फौजी भत्ता मिलता है उसके अतिरिक्त दूसरी जरूरतें भी होती हैं और वे पूरी हो जाय तो इस कठिन जीवनमें कुछ राहत मिल जाती है। ऐसी राहत देनेवाली चीजें जुटानेका भार व्यापारी वर्गने अपने सिर लिया। इसके साथ साथ जिन घायलोंकी हमें सेवा करनी पड़ती थी उनके लिए भी मिठाई बीड़ी सिगरेट आदि देनेमें उन्होंने अच्छी मदद की। हमारा पड़ाव जब किसी नगरके पास होता तो वहां के व्यापारी ऐसी मदद देनेमें पूरा हिस्सा लेते थे।

जो गिरमिटिए हमारे दस्तेमें शामिल हुए थे उनके लिए उनकी अपनी कोठियोंसे अंग्रेज नायक भेजे गए थे पर काम तो सबका एक ही था। सबको साथ ही रहना भी होता था। ये गिरमिटिए हमें देखकर बहुत खुश हुए और एक पूरे दस्तेकी व्यवस्था सहज ही हमारे हाथमें आ गई। इससे यह सारा दस्ता हिंदुस्तानी दस्ता ही कहा गया और उसके कामका यश भी भारतीय जनताको ही मिला। सच पूछिये तो गिरमिटियोंके इसमें शामिल होनेका यश भारतीय जनता नहीं ले सकती थी उसके अधिकारी तो कोठीवाले ही थे। पर इतना सही है कि दस्ते सगठित हो जानेके बाद उसकी सुव्यवस्थाका यश स्वतंत्र भारतीय अर्थात् भारतीय जनता ही ले सकती थी और इसका स्वीकार जनरल बूलरने अपने खरीतोंमें किया है।

हमें घायलों और पीड़ितोंकी सेवा-शुश्रूषाकी शिक्षा देने वाले डाक्टर बूथ भी मेडिकल सुपरिटेंडेंटके रूपमें हमारे दस्तेके साथ थे। ये भले पादरी थे और भारतीय ईसाइयोंमें काम करते हुए भी सबके साथ मिलते-जुलते थे। ऊपर जिन ३७ आदमियोंका मैंने नेताओंमें गिनाया है उनमेंसे अधिकांश इस भक्त पादरीके शिष्य थे।

जैसे हिंदुस्तानियोंका दस्ता बना था वैसे ही यूरोपियनोंका

आया तब हमसे यह कह दिया गया कि आपके साथ की हुई शर्तके अनुसार आप लोग ऐसी जगह नहीं भेजे जा सकते जहां आपको तोपका गोला या बंदूकको गोली लगनेका खतरा हो। इसलिए अगर आप इस खतरेमें न पड़ना चाहते हों तो आपको इसके लिए मजबूर करनेका जनरल बुलरका जरा भी इरादा नहीं। पर आप यह जोखिम उठा लेंगे तो सरकार आपका अह् सान मानेगी। हम तो जोखिम लेना चाहते ही थे। खतरेसे बाहर रहना हमें कभी पसंद नहीं आया था। अतः हम सबने इस अवसरका स्वागत किया पर किसीको न गोली लगी और न कोई और तरहकी चोट पहुंची।

इस दलके रोचक अनुभव तो कितने ही हैं पर उन सबको देनेके लिए यहां स्थान नहीं। फिर भी इतना बता देना चाहिए कि हमारे दलको जिसमें अनगढ़ शिक्षा-संस्कार रहित गिर मिटिए भी शामिल थे यूरापियनोंके स्थायी सेवादल और काली फौजके गोरे सिपाहियोंसे अक्सर मिलने-जुलने और साथ काम करने के मौके आते पर हममेंसे किसीको यह नहीं जान पड़ा कि गोरे हमारे साथ अशिष्ट व्यवहार करते हैं या हमें तुच्छ समझते हैं। गोरोंकि तात्कालिक दलमें तो दक्षिण अफ्रीकामें बसे हुए गोरे ही भरती हुए थे। लड़ाईके पहले वे हिंदुस्तानी विरोधी आंदोलन करनेवालोंमें से थे पर इस संकट-कालमें हिंदुस्तानी अपने निजके दुःख भूलकर हमारी मददके लिए आगे आये हैं इस ज्ञान और इस दृश्यने उनके दिलको भी क्षण भरके लिए पिघला दिया था। जनरल बुलरके खरीतेमें हमारे कामकी तारीफ की गई थी यह लिख चुका हूं। ३७ मुखियोंको लड़ाई में अच्छा काम करनेके लिए तमगे भी दिए गए।

लेडी स्मिथके छुटकारेके लिए जनरल बुलरने जो यह उद्यम किया था उसके पूरा होनेके दो महीनेके अंदर ही हमारे और गोरोंके दलोंको भी घर जानेकी इजाजत दे दी गई। लड़ाई तो इसके बाद बहुत दिनोंतक चलती रही। हम तो फिर शामिल होनेके लिए सदा ही तैयार थे और विघटनके आदेशके साथ

यह कह दिया था कि फिर ऐसी जबर्दस्त जगी कार्रवाई करनी पड़ी तो सरकार आपकी सेवाका उपयोग अवश्य करेगी।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयों द्वारा युद्धमें अर्पित यह सहायता नगण्य गिनी जायगी। उनके कामसें जानका खतरा तो कह सकते हैं कि बिलकुल ही नहीं था। फिर भी शुद्ध इच्छाका असर तो हुए बिना रहता ही नहीं। फिर इस इच्छाका अनुभव ऐसे वक्त हो जब कोई उसकी आशा न रखता हो तब तो उसकी कीमत दूनी आंकी जाती है। जबतक लड़ाई चलती रही भारतीयोंके विषयमें ऐसी सुन्दर भावना बनी रही।

इस प्रकरणको समाप्त करनेके पहले मुझे एक जानने योग्य वृत्तांत सुना देना चाहिए। लेडी स्मिथमें घिरे हुए लोगोंमें अंग्रेजोंके साथ-साथ वहां बसनेवाले इक्के-दुक्के हिन्दुस्तानी भी थे। उनमें कुछ व्यापारी और कुछ गिरमिटिया थे जो रेलवे कर्मचारी और सारे गृहस्थोंके यहां खिदमतगारी करते थे। उनमें एक प्रभुसिंह नामका गिरमिटिया था। घिरे हुए आदमियोंको अक्सर कुछ काम तो सौंपना ही है। एक बड़ा ही जोखिमवाला और उतना ही मूल्यवान काम कुलियोंमें गिने जानेवाले प्रभुसिंहके जिम्मे किया गया था। लेडी स्मिथके पासकी पहाड़ी पर बोअर लोगोंकी एक 'पोम-पोम' तोप थी। इसके गोलेसे बहुत से मकान धराशायी हुए और बहुत-से लोगोंने जानसे भी हाथ धोया। तोपसे गोलेके छूटने और दूरके निशानेतक पहुंचने में एक-दो मिनट तो लग ही जाते हैं। इतनी देरकी चेतावनी भी घिरे हुए लोगोंको मिल जाय तो वे किसी-न-किसी आड़में छिप जायं और अपनी जान बचा सकें। प्रभुसिंहको एक पेड़के बीच बैठनेकी ड्यूटी दी गई थी। जबतक तोप दगने लगीं और जबतक दगती रही तबतक उसे वहां बैठे और तोपवाली पहाड़ी की ओर आंख लगाये रहना पड़ता। ज्योंही उसे आग भड़कती दिखाई दे तुरंत घंटा बजा देना होता। सुनकर जैसे बिल्लीको देखकर चूहे अपने बिलमें घुस जाते हैं बस ही जान बचा गोलेके आनेकी सूचनाका घंटा बजते ही नगरवासी अपनी

अपनी छिपनेकी जगहमें छिप जाते और अपनी जान बचा लेते।

प्रभुसिंहकी इस अमूल्य सेवाकी सराहना करते हुए लेडी स्मिथके फौजी अफसरने लिखा है कि प्रभुसिंहने ऐसी निष्ठासे काम किया कि एक बार भी वह घटा बजानेसे नहीं चूका। यहां यह बतानेकी जरूरत शायद ही हो कि प्रभुसिंहको खुद तो सदा खतरेमें ही रहना पड़ता था। यह बात नेटालमें तो मशहूर हुई हो लार्ड कर्जन (हिंदुस्तानके तात्कालीन वाइसराय) के कान तक भी पहुची। उन्होंने प्रभुसिंहको भेंट करनेके लिए एक काश्मीरी जामा भेजा और नेटालकी सरकारको लिखा कि प्रभुसिंहको यह उपहार समारोह-पूर्वक प्रदान किया जाय और जिस कारगुजारीके लिए उसे यह दिया जा रहा है उसका जितना ढिंढोरा पीटा जा सकता हो पीटा जाय। यह काम डर्बनके मेयरको सौंपा गया और डर्बनके टाउनहालमें सार्वजनिक सभा करके प्रभुसिंहको उक्त उपहार अर्पित किया गया। यह दृष्टांत हमें दो बातें सिखाता है एक तो यह कि हम किसी भी मनुष्यको तुच्छ न समझें। दूसरी यह कि डरपोक-से डरपोक आदमी भी अवसर आनेपर वीर बन सकता है।

१०

लड़ाईके बाद

युद्धका मुख्य भाग १९० में पूरा हो गया। इस बीच लेडी स्मिथ किंबरली और मेफेकिंगका छुटकारा हो गया था। जनरल क्रोंजे हार चुके थे। बोअरोंने ब्रिटिश-उपनिवेशोंका जितना भाग जीत लिया था वह सब ब्रिटिश सल्तनतको वापस मिल चुका था। लार्ड किचनरने ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट को भी जीत लिया था। अब कुछ बाकी था तो फकत 'गोरिल्ला युद्ध' (गोरीला वारफेयर)।

मैंने सोचा कि दक्षिण अफ्रीकामें अब मेरा काम पूरा हो

गया मान लिया जा सकता है। एक महीनेके बदले में छ बरस रह गया। कार्यकी रूप रेखा बन गई थी। फिर भी भारतीय जनताके खुशीसे इजाजत दिये बिना मेरा निकास नहीं हो सकता था। मैंने अपने साथियोंको बताया कि मेरा इरादा हिंदुस्तानमें लोकसेवा करनेका है। स्वार्थके बदले सेवाधर्मका पाठ मैं दक्षिण अफ्रीकामें पढ़ चुका था। उसकी धुन समा चुकी थी। मनसुखलाल नाजर दक्षिण अफ्रीकामें थे ही। खान भी थे। दक्षिण अफ्रीकासे ही गये हुए कितने ही भारतीय युवक बरिस्टर होकर लौट भी चुके थे। अत मेरा देश लौटना किसी तरह अनुचित नहीं माना जा सकता था। यह सब दलीलें देते हुए भी मुझे इस शर्तपर इजाजत मिली कि दक्षिण अफ्रीकामें कोई अन सोची अड़चन आ पड़े और मेरी जरूरत समझी जाय तो कौम मुझे चाहे जब वापस बुला सकती है और मुझे तुरत वापस आना होगा। यात्राका और मेरे रहनेका खर्च कौमको उठाना होगा। यह शर्त मंजूर कर मैं देश लौटा।

मैंने बंबईमें बैरिस्टरी करनेका निश्चय किया और चेंबर ले लिया। इसमें मुख्य हेतु तो था स्वर्गीय गोखलेकी सलाहसे और उनकी देखरेखमें सार्वजनिक कार्य करना पर साथ ही आजीविका कमानेका भी उद्देश्य था। मेरी वकालत भी कुछ चल निकली। दक्षिण अफ्रीकाके साथ जो मेरा इतना गहरा संबंध जुड़ गया था उससे वहांसे लौटे हुए मवक्किलोंसे ही मुझे इतना पैसा मिल जाता था कि मेरा खर्च आसानीसे चल जाता। पर मेरे भाग्यमें स्थिर होकर बैठना लिखा ही न था। मुश्किलसे तीन-चार महीने बंबईमें स्थिर होकर बैठा हूंगा कि दक्षिण अफ्रीकासे तार आया—"स्थिति गंभीर है। मि॰ चेंबरलेन जल्दी ही आ रहे हैं। आपकी उपस्थिति आवश्यक है।"

बंबईका दफ्तर और घर समेटा और पहले ही जहाजसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गया। यह सन् १९०२ के अंतका समय था। १९०१ के आखिरमें मैं हिंदुस्तान लौटा था। १९०२ के मार्च-अप्रैलमें बंबईमें दफ्तर खोला। तारसे मैं पूरी

बात जान नहीं सका। मैंने अटकल लगाई कि संकट कहीं ट्रांसवालमें ही होगा। पर चार-छ महीनेके अंदर लौट सकूंगा यह सोच कर बाल-बच्चोंको साथ लिए बिना ही मैं चल दिया था। मगर ज्योंही डर्बन पहुंचा और सारी हकीकत सुनी मैं विस्मृत हो गया। हममेंसे बहुतोंने सोचा था कि युद्धके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंकी हालत सुधर जायगी। ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें तो कोई कठिनाई ही हो नहीं सकती क्योंकि लार्ड लैंसडाउन लार्ड सेल्बर्न आदि बड़े ब्रिटिश अधिकारियोंने कहा था कि बोअर राज्योंमें भारतीयोंकी विषम स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है। प्रिटोरियामें रहनेवाला ब्रिटिश राजदूत भी अनेक बार मेरे सामने कह चुका था कि ट्रांसवाल ब्रिटिश उपनिवेश हो जाय तो हिंदुस्तानियोंके सारे कष्ट तुरंत मिट जायंगे। यूरोपियन भी मानते थे कि राज्य-व्यवस्था बदल जानेपर ट्रांसवालके पुराने (भारतीय विरोधी) कानून हिंदुस्तानियोंपर लागू नहीं हो सकेंगे। यह बात इतनी सर्वमान्य हो गई थी कि नीलाम करनेवाले जो गोरे जमीनकी बोली बोलते समय लड़ाईके पहले हिंदुस्तानियोंकी बोली मंजूर नहीं करते थे व भव खुले तौरपर उसे स्वीकार करने लगे। कितने ही हिंदुस्तानियोंने इस तरह नीलाममें जमीन खरीद भी ली। पर जब वे तहसीलमें जमीन की रजिस्ट्री कराने गये तो मालके अफसरने १८८५ का कानून सामने रख दिया और दस्तावेजकी रजिस्ट्री करनेसे इंकार कर दिया। डर्बनमें उतरनेपर मैंने इतना तो सुन लिया। नेताओंने मुझसे कहा कि आपको ट्रांसवाल जाना है। मि० चेंबरलेन पहले तो यहीं आयंगे। यहांकी (नेटालकी) स्थितिसे भी उनको वाकिफ करा देना जरूरी है। यहांका काम निबटाकर उन्हींके पीछे-पीछे आपको ट्रांसवाल जाना होगा।

नेटालमें भी चेंबरलेनसे एक शिष्टमंडल मिला। उन्होंने सारी बातें बड़े सौजन्यके साथ सुन भी और नेटालके मंत्रिमंडल-के साथ बातें करनेका वचन दिया। नेटालमें जो कानून युद्धके पहले बन गए थे उनमें तुरंत हेर-फेर होनेकी आशा मैं खुद नहीं

करता था। इन कानूनोंका वर्णन पिछले प्रकरणोंमें किया जा चुका है।

पाठक यह तो जानते ही हैं कि लड़ाईके पहले चाहे जो हिंदुस्तानी चाहे जब ट्रांसवालमें दाखिल हो सकता था। पर मैंने देखा कि अब ऐसी स्थिति नहीं है। फिर भी इस वक्त जो रुकावटें थीं वे गोरे और हिंदुस्तानी दोनोंपर समान रूपसे लागू होती थीं। आज भी देशकी दशा ऐसी थी कि बहुतसे लोग एक साथ उसमें भर जायं तो सबको अन्न-वस्त्र भी पूरा न मिल सके। लड़ाईके कारण बंद हुई बहुतसी दुकानें अब भी बंद थीं। दुकानोंका अधिकांश माल बोअर सरकार साफ कर गई थी। अतः मैंने मनमें सोचा कि अगर यह रुकावट एक थोड़ी मुद्दतके ही हो तो भय करनेका कारण नहीं पर गोरे और हिंदुस्तानी के लिए ट्रांसवाल जानेका परवाना लेनेकी रीतिमें अंतर था और यह भेद ही भयका कारण हो गया। परवाने देनेके दफ्तर दक्षिण अफ्रीकाके जुदा-जुदा बंदरगाहोंमें खोले गए थे। गोरेको तो कह सकते हैं कि मांगते ही परवाना मिल जाता था पर हिंदुस्तानियोंके लिए तो ट्रांसवालमें एक एशियाटिक विभाग स्थापित किया गया था।

यह अलग महकमेकी स्थापना एक नयी घटना थी। हिंदुस्तानियोंको इस महकमेके अफसरके पास अर्जी भेजनी होती। यह मंजूर हो गई तो डर्बन या किसी दूसरे बंदरगाहसे आमतौर से परवाना मिल जाता था। यह अर्जी मुझे भी देनी होती तो मि० चेंबरलेनके ट्रांसवालसे चल देनेके पहले परवाना मिलने की आशा नहीं रखी जा सकती थी। ट्रांसवालके भारतीय मेरा परवाना प्राप्त कर मुझे नहीं भेज सके थे। यह बात उनके बस-के बाहर थी। मेरे परवानेका आधार उन्होंने डर्बनसे मेरे परिचय मेरे संबंधका बनाया था। परवाना देनेवाले अफसरसे मेरी जान-पहचान नहीं थी पर डर्बन पुलिस सुपरिंटेंडेंट थे। इस-लिए उन्हें साथ लेजाकर अपनी पहचान दिला दी। १८९३ में मैं एक सालतक ट्रांसवालमें रह चुका हूं यह अधिकार बताकर

मैंने परवाना हासिल किया और प्रिटोरिया पहुंचा।

यहां मैंने बिल्कुल दूसरा ही वातावरण पाया। मैंने देखा कि एशियाटिक विभाग एक भयानक महकमा है और महज हिंदुस्तानियोंको दबानेके लिए कायम किया गया है। उसके अफसर उन आदमीमेंसे थे जो युद्धकालमें हिंदुस्तानी सेनाके साथ दक्षिण अफ्रीका गये थे और भाग्यपरीक्षाके लिए वहां रह गए थे। उनमेंसे कितने तो घूसखोर थे। दो अफसरोंपर मुकदमा भी चला। जूरीने तो उन्हें छोड़ दिया पर चूंकि उनके घूस खानेके बारेमें कोई संदेह नहीं रह गया था इसलिए वे नौकरी से अलग कर दिये गए। पक्षपातकी तो कोई हद ही न थी जहां इस तौरपर एक खास महकमा कायम किया गया हो और जब वर्ग विशेषके स्वत्वोंपर अंकुश रखनेके लिए ही उसका निर्माण हुआ हो तब अपनी हस्ती कायम रखनेके लिए और वह अपने कर्तव्यका पालन ठीक तौरसे कर रहा है यह दिखानेके लिए उसका झुकाव नए-नए अंकुश ढूंढते रहनेकी ओर ही होता है। हुआ भी यही।

मैंने देखा कि मुझे फिरसे श्रीगणेश करना होगा। एशियाटिक महकमेका तुरंत इसका पता नहीं लग सका कि मैं ट्रांसवालमें कैसे दाखिल हो गया। मुझसे पूछनेकी तो यकायक उसकी हिम्मत हुई नहीं। मैं मानता हूं कि उसके अधिकारियों-ने इतना तो माना होगा कि मैं चोरीसे नहीं दाखिल हुआ हूंगा। इधर उधरसे पूछताछकर उन्होंने यह भी मालूम कर लिया कि मैंने परवाना कैसे हासिल कर लिया। प्रिटोरियाका शिष्ट मंडल भी मि० चेंबरलेनके पास जानेको तैयार हुआ। जो आवेदनपत्र उनके सामने पेश किया जानेवाला था उसका मस विदा मैंने बना लिया। पर एशियाटिक महकमेने मुझे उनके सामने जानेकी मनाही कर दी। भारतीय नेताओंने सोचा कि ऐसी दशामें हमें भी मि चेंबरलेनसे मिलने नहीं जाना चाहिए पर मुझे यह विचार नहीं रुचा। मैंने उन्हें यह सलाह दी कि मेरा जो अपमान हुआ है उसे मुझे तो पी ही जाना चाहिए,

कौमको भी उसकी परवा नहीं करनी चाहिए। अर्जी तो तैयार है ही मि० चेंबरलनको उसे सुना देना बहुत जरूरी है। हिंदुस्तानके एक बैरिस्टर मि० जार्ज गाडफे वहां मौजूद थे। मैंने उन्हें अर्जी पढ़नेके लिए तैयार कर लिया। शिष्ट मण्डल गया। मेरी बात उठी तो मि० चेंबरलनने कहा— मि० गांधीसे तो मैं डरबनमें मिल चुका हूं। इसलिए यह सोचकर कि यहांके लोगोंका बयान यहींके लोगोंसे सुनना ज्यादा अच्छा होगा मैंने उनसे मिलनेसे इन्कार कर दिया। मेरी दृष्टिसे तो इस उत्तरने भारमें घीका काम दिया। एशियाटिक महकमेने जो सिखाया था मि० चेंबरलेन वही बोले। जो हवा हिंदुस्तानमें बहा करती है वही उसने विभागने ट्रांसवालमें बहा दी। गुजराती भाइयोंको यह बात मालूम होनी ही चाहिए कि बम्बईका रहनेवाला चपारनमें अंग्रेज अफसरोंके लिए परदेसी होता है। इस नियमके अनुसार डर्बनमें रहनेवाला मैं ट्रांसवालकी स्थिति कैसे जान सकता हूं यह पाठ एशियाटिक विभागने मि० चेंबरलेनको पढ़ाया। उनको क्या मालूम कि मैं ट्रांसवालमें रह चुका हूं और न रहा होऊं तो भी ट्रांसवालकी पूरी परिस्थितिसे परिचित हूं। सवाल एक ही था— ट्रांसवालकी परिस्थितिसे सर्वाधिक परिचित कौन है? हिंदुस्तानसे मुझे खास तौरसे बुलाकर भारतीय जनताने इस प्रश्नका उत्तर दे दिया था। पर हुकूमत करनेवालोंके सामने न्यायशास्त्रकी दलील नहीं चल सकती। यह कोई नया अनुभव नहीं। मि० चेंबरलेनपर इस वक्त स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियोंका इतना असर था और गोरोंको सन्तुष्ट करनेके लिए वह इतने आतुर थे कि उनसे न्याय होनेकी आशा तनिक भी नहीं थी या बहुत ही कम था। पर न्याय पानेका एक भी उचित उपाय भूलसे या स्वाभिमानवश किये बिना न रह जाय इस खयालसे शिष्ट-मण्डल उनके पास भेजा गया।

पर मेरे सामने १८९४ से भी अधिक विषम प्रश्न उपस्थित हो गया। एक दृष्टिसे मुझे लगा, जैसा दिखाई दिया कि मि० चेंबरलेन यहांसे रवाना हुए कि मैं हिंदुस्तानको वापस लौटकर

हू। दूसरी ओर मैं यह भी साफ देख सकता था कि अगर मैं कौमको भयावह स्थितिमें देखते हुए भी हिंदुस्तानमें सेवा करनेके अभिमानसे वापिस जाऊं तो जिस सेवा-धर्मकी झांकी मुझे हुई है वह दूषित हो जायगी। मैंने सोचा कि मेरी सारी जिन्दगी भले ही दक्षिण अफ्रीकामें बीत जाय पर जबतक घिरे हुए बादल बिखर नहीं जाते या हमारी सारी कोशिशके बावजूद और अधिक उमड़कर कौमपर फट नहीं पड़ते तबतक मुझे ट्रांसवालमें ही रहना चाहिए। मैंने नेताओंके साथ इस प्रकारकी बातचीत की और १८९४ की तरह वकालत की आमदनीमें गुजर करनेका अपना निश्चय भी बता दिया। कौमको तो इतना ही चाहिए था।

मैंने तुरत ट्रांसवालमें वकालत करनेकी इजाजतकी दरख्वास्त दे दी। डर था कि यहां भी वकीलोंका मंडल मेरी अर्जीका विरोध करेगा पर यह निराधार निकला। मुझे सनद मिल गई और मैंने जोहान्सबर्गमें दफ्तर खोला। ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंकी सबसे बड़ी आबादी जोहान्सबर्गमें ही थी। इसलिए मेरी आजीविका और सार्वजनिक काम दोनोंकी दृष्टिसे जोहान्सबर्ग ही मेरे लिए अनुकूल केंद्र था। एशियाटिक विभागकी भ्रष्टताका कटु अनुभव मुझे दिन दिन हो रहा था और वहांके भारतीय मंडल (ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन असोसियेशन) का सारा जोर इस सड़नको दूर करनेकी ही ओर लग रहा था। १८८५के कानूनको रद करना तो अब दूरका लक्ष्य हो गया था। तात्कालिक कार्य एशियाटिक विभागके रूपमें जो बाढ़ हमारी ओर चढ़ी आ रही थी उससे अपना बचाव करना था। लार्ड मिल्नर लार्ड सेल्बोर्न यहां आये थे सर आर्थर लॉली जो ट्रांसवालमें लेफ्टिनेंट गवर्नर थे और पीछे मद्रासके गवर्नर हुए, इन तथा इनसे नीचेकी श्रेणीके अधिकारियोंके पास भी शिष्ट मंडल गये। मैं अकेले भी अक्सर उनसे मिलता। थोड़ी-बहुत राहत भी मिलती। पर यह सभी फटे कपड़ेमें पर्बंद लगाने जैसा था। लटेरे हमारा सारा धन हर लें और पीछे हम गिड़

गिरानें तो उसमेंसे कुछ लौटा दें इसमें हम जिस प्रकारका संतोष मान सकते हैं कुछ वैसा ही संतोष हमें मिलता। जिन मजदूरकारोंके बरखास्त किये जानेकी बात ऊपर लिख चुका हूँ उनपर इस आंदोलनके फलस्वरूप ही मुकदमा चलाया गया। भारतीयोंके प्रवेशके विषयमें जो आशंका होनेकी बात पहले कहा चुका हूँ वह सही निकली। गोरोंको परवाना लेना जरूरी नहीं रहा पर हिंदुस्तानियोंके लिए उसकी पख लगी ही रही। टांसवालकी पुरानी बोअर सरकारने जैसे कड़े कानून बनाये थे वैसे कड़ाईसे उनपर अमल नहीं होता था। यह कुछ उसकी उदारता या भलमनसाहत नहीं थी बल्कि उसका शासन विभाग लापरवाह था और इस विभागके अधिकारी भले हों तो भल-मनसी बरतनेका उन्हें जितना अवकाश पिछली सरकारी अमलदारीमें था उतना ब्रिटिश सरकारकी मातहतीमें नहीं था। ब्रिटिश राज्यतंत्र पुराना होनेसे दृढ़ और व्यवस्थित हो गया है और अफसरों-अहलकारोंको उसमें यंत्रकी तरह काम करना पड़ता है क्योंकि उनके ऊपर एकके बाद एक चढ़ते-उतरते अंकुश लगे हुए हैं। इससे ब्रिटिश विधानमें राज्यपद्धति उदार हो तो प्रजा को उसकी उदारताका अधिक-से-अधिक लाभ मिल सकता है और वह पद्धति जुल्म करनेवाली या कंजूस हो तो इस नियंत्रित शासनतंत्रमें उसका दबाव भी यह पूरा-पूरा अनुभव करती है। इसकी उलटी स्थिति टांसवालकी पुरानी शासन-व्यवस्था जैसे राज्यतंत्रमें होती है। उदार कायदे-कानूनका लाभ मिलना-न मिलना अधिकतामें उस विभागके अधिकारियोंके भले-बुरे होने पर अवलंबित होता है। अतः जब टांसवालमें ब्रिटिश राज्य स्थापित हुआ तो भारतीयोंके सबंध रखनेवाले सभी कानूनोंपर उत्तरोत्तर अधिक कड़ाईसे अमल होने लगा। पहले जो छिद्र रह गये थे वे बंद कर दिये गए। यह तो हम देख ही चुके हैं कि एशियाटिक विभागकी नीति कड़ाईको होनी ही चाहिए थी। अतः पुराने कानून कड़े करवाये जायँ यह सवाल तो अलग रहा पर उनकी कठोरता अमलमें नरम की जाई

जा सकती है, फिलहाल तो इसी दृष्टिसे भारतीय जनताको प्रयत्न करना रहा।

एक सिद्धांतकी चर्चा जल्दी या देरसे हमें करनी ही होगी और इस जगह कर देनेसे आगे पैदा होनेवाली परिस्थिति और भारतीय दृष्टिबिंदुको समझनेमें कुछ आसानी हो सकती है। ज्योंही ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटमें ब्रिटिश-पताका फहराने लगी लार्ड मिल्नरने एक कमेटी नियुक्त की। उसका काम था दोनों राज्योंके पुराने कानूनोंकी जांचकर ऐसे कानूनोंकी सूची तैयार करना जो प्रजाके अधिकारपर प्रतिबंध लगाते हों या ब्रिटिश विधानके तत्वके विरुद्ध हों। भारतीयोंकी स्वतंत्रतापर आघात करनेवाले कानून भी साफतौरसे इस सूचीमें आते थे। पर यह कमेटी नियुक्त करनेमें लार्ड मिल्नरका उद्देश्य हिंदुस्तानियोंके कष्टोंका नहीं बल्कि अंग्रेजोंके कष्टोंका निवारण था। जिन कानूनोंसे अप्रत्यक्ष रीतिसे अंग्रेजोंको बाधा होती थी उन्हें जितनी जल्दी हो सके रद कर देना उनका उद्देश्य था। कमेटीकी रिपोर्ट बहुत ही थोड़े समयमें तैयार हो गई और छोटे-बड़े कितने ही कानून जो अंग्रेजोंके स्वार्थके विरोधी थे कह सकते हैं कि कलम के एक ही फटकेमें रद कर दिये गए।

इसी कमेटीने भारतीय विरोधी कानूनोंको भी छांटकर अलग किया। वे एक पुस्तकके रूपमें छापे गए, जिसका उपयोग या हमारी दृष्टिसे दुरुपयोग एशियाटिक विभाग आसानीसे करने लगा।

अब अगर भारतीय विरोधी कानून बिना हिंदुस्तानियोंका नाम उनमें रखे और इस ढंगपर बनाये गए हों कि वे खास तौरसे उन्हींके खिलाफ न हों बल्कि सबपर लागू होते हों सिर्फ उनपर अमल करना-न-करना अधिकारीकी मर्जीपर छोड़ा गया हो, या उन कानूनोंके अंदर ऐसे प्रतिबंध रखे गए हों जिनका अर्थ तो सार्वजनिक हो पर उनकी अधिक चोट हिंदुस्तानियोंपर ही पड़ती हो तो ऐसे कानूनोंसे भी कानून बनानेवालोंका अर्थ सिद्ध हो सकता था और फिर भी वे सार्वजनिक रूपसे लागू होनेवाले

कहे जाते। उनसे किसीका अपमान न होता और कालक्रमसे जब विरोधका भाव नरम हो जाता तब कानूनमें कोई हेरफेर किये बिना केवल उदार दृष्टिसे उसपर अमल होनेसे जिस जाति-वर्गके विरुद्ध वह कानून बना होता वह बच जाता। जिस प्रकार दूसरी श्रेणीके कानूनोंको मैंने सार्वजनिक कानून कहा है वैसे ही पहले प्रकारके कानूनोंको एकदेशीय या जातीय कानून कह सकते हैं। दक्षिण अफ्रीकामें उन्हें रंग-भेदकारी कानून कहते हैं इसलिए कि उनमें चमड़ेके रंगका भेद करके काले या गेहुआ रंगके चमड़ेवाली जनतापर गोरोंके मुकाबले अधिक अंकुश रखा जाता है।

जो कानून बन चुके थे उनमेंसे ही एक मिसाल लीजिए। पाठकों को याद होगा कि मताधिकार (हरण) का जो पहला कानून नेटालमें पास हुआ और जो पीछे साम्राज्य सरकार द्वारा रद कर दिया गया उसमें इस आशयकी धारा थी कि एशियाई मात्रको आगेसे चुनावमें मत देनेका अधिकार न होगा। अब ऐसे कानूनको बदलना हो तो लोकमतको इतना शिक्षित करना होगा कि अधिकांश जन एशियाइयोंसे द्वेष करनेके बदले उनकी ओर मित्रभाव रखनेवाले हो जायं। जब ऐसा सुअवसर आये तभी नया कानून बनाकर यह रंगका दाग दूर किया जा सकता है। यह हुआ एकदेशीय या रंग-भेद करनेवाले कानूनका दृष्टांत। अब ऊपर बताया हुआ कानून रद होकर उसकी जगहपर जो दूसरा कानून बना उसमें भी मूल उद्देश्यकी लगभग रक्षा कर ली गई थी फिर भी वह सार्वजनिक था और रंग-भेद का डंक उसमेंसे दूरकर दिया गया था। इस कानूनकी एक दफाका भावार्थ यह है "जिस देशकी जनताको 'पार्लमेंटरी फ्रेंचाइज' अर्थात् ब्रिटिश जनताको अपनी साधारण सभा-सदस्यके चुनावमें मत देनेका जैसा अधिकार प्राप्त है वैसा मताधिकार नहीं है उस देशका निवासी नेटालमें मताधिकारी नहीं हो सकता। इसमें कहीं भी हिंदुस्तानी या एशियाईका नाम नहीं आता। हिंदुस्तानमें इंग्लैंडका-सा मताधिकार है या नहीं इस विषयमें विधान-शास्त्री तो भिन्न-भिन्न मत देंगे। पर दलीलकी खातिर मान लीजिए कि हिंदुस्तानमें

उस वक्त यानी १८९४ में मताधिकार नहीं था या आज भी नहीं है फिर भी नेटालमें मताधिकारियों—वोटके अधिकारियोंके नाम दर्ज करनेवाला अधिकारी हिंदुस्तानियोंका नाम वोटर सूचीमें लिख ले तो यकायक कोई यह नहीं कह सकता कि उसने गैरकानूनी काम किया। सामान्य अनुमान सदा प्रजाके अधिकारकी ओर किया जाता है। अगर उस वक्तकी सरकार जबतक विरोध करनेका इरादा न करले तबतक ऊपर लिखे हुए कानूनके मौजूद रहते हुए भी भारतीयों और दूसरोंके नाम वोटर सूचीमें दर्ज किये जा सकते हैं अर्थात् कुछ दिनोंमें नेटालमें हिंदुस्तानीसे नफरत करनेका भाव घट जाय वहांकी सरकार हिंदुस्तानियोंका विरोध न करना चाहे तो कानूनमें कुछ भी फेरफार किये बिना हिंदुस्तानियोंके नाम वोटरोंके रजिस्टरमें दर्ज किये जा सकते हैं। सामान्य या सार्वजनिक कानूनकी यह खूबी होती है। एसी और मिसालें दक्षिण अफ्रीकाके उन कानूनोंसे दी जा सकती है जिनका जिक्र पिछले प्रकरणोंमें किया जा चुका है। इसलिए बुद्धिमानीकी राजनीति यही मानी जाती है कि एकदेशीय—वर्ग या जाति विशेषपर ही लागू होनेवाले—कानून कम-से-कम बनाये जायं। बिलकुल ही न बनाना तो सर्वोत्कृष्ट नीति है। कोई कानून जब एक बार बन गया तो उस बदलनेमें अनेक कठिनाइयां आती हैं। लोकमत जब बहुत शिक्षित—समझदार हो जाय तभी कोई कानून रद किया जा सकता है। जिस लोकतंत्रमें सदा कानूनोंमें रद्दोबदल होती रहती है वह लोकतंत्र सुव्यवस्थित नहीं माना जा सकता।

ट्रांसवालमें एशियाइयोंके खिलाफ जो कानून बने थे उनमें भरे हुए जहरका अंदाजा अब हम अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। ये सारे कानून एकदेशीय थे। इनके अनुसार एशियावासी चुनावमें मत नहीं दे सकता था। सरकार ने जो रखने या मुहल्ले ठहरा दिये थे उनके बाहर न जमीन खरीद सकता था और न रख सकता था। इन कानूनोंके रद हुए बिना अधिकारी-वर्ग हिंदुस्तानियोंकी मदद कर ही नहीं सकता था। ये कानून सार्व

जनिक नहीं थे। इसीसे लार्ड मिल्नरकी कमेटी उन्हें अलग छांट सकी थी। वे सार्वजनिक होते तो दूसरे कानूनोंके साथ वे सब कानून भी रद हो गए होते जिनमें एशियाइयोंका नाम तो खास तौरसे नहीं लिया गया है, पर जिनका अमल उन्हींके खिलाफ होता था। अधिकारीवर्ग यह तो कह ही नहीं सकता था— हम क्या कर सकते हैं? हम लाचार हैं। जबतक नई धारा-सभा इन कानूनोंको रद नहीं कर देती तबतक हमें तो उनको अमलमें लाना ही होगा।

जब ये कानून एशियाटिक महकमेके हाथमें आये तो उसने उनपर पूरे तौरसे अमल करना शुरू किया। इतना ही नहीं शासक-मंडल अगर उन कानूनोंका अमल करने योग्य माने तो उनमें जो त्रुटियां छूट गई हों बचावके रास्ते रह गए हों उन्हें बंद कर देनेके नये अधिकार भी उसे प्राप्त करने ही होंगे। दलील तो सीधी सादी मालूम होती है। कानून अगर बुरे हैं तो उन्हें रद कर देना चाहिए और अच्छे हैं तो उनमें जो त्रुटियां रह गई हों उन्हें दूर कर देना चाहिए। कानूनोंपर अमल कराने की नीति शासक-मंडलने स्वीकार कर ली थी। भारतीय जनता बोअर-युद्धमें अंग्रेजोंके कंधे-से-कंधा सटाकर लड़ी हुई थी और जानकी जोखिम उठाई थी; पर यह तो तीन-चार बरसकी पुरानी बात हो गई थी। ट्रांसवालका ब्रिटिश राजदूत भार तीय जनताका पक्ष लेकर लड़ा था यह भी पुराने राजतंत्रकी बात थी। युद्धके कारणोंमें भारतीयोंके कष्ट भी बताये गए थे पर यह एक अधिकारियोंकी घोषणा थी जो दूरदर्शितास रहित और स्थानीय अनुभवसे कोरे थे। स्थानीय अनुभवने तो स्थानीय अधिकारियोंको साफ बता दिया कि बोअर-राज्यमें हिंदुस्तानि योंके खिलाफ जो कानून बनाये गये थे वे न तो यथेष्ट थे और न व्यवस्थित। हिंदुस्तानी जब जीमें आये ट्रांसवालमें घुस आते थे और जहां जैसे जीमें आये रोजगार करने लगें तब तो अंग्रेज व्यापारियोंकी भारी हानि होगी। इन और ऐसी दूसरी दलीलों ने गोरों और उनके प्रतिनिधि शासक-मंडलके दिमागपर कब्जा कर

कब्जा जमाया। गोरे कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा कर लेना चाहते थे। हिंदुस्तानी इसमें थोड़ा भी हिस्सा बटाए, यह उन्हें कब पसंद आता? राजनीतिमें तत्त्वज्ञानका ढोंग भी घुसा। दक्षिण अफ्रीकाके बुद्धिमान पुरुषोंका संतोष निरी बनियाशाही अपने लाभ स्वार्थकी दलीलसे नहीं हो सकता था। अन्याय करनेके लिए भी मानव-बुद्धि सदा ऐसी दलीलें ढूंढ़ती है जो उसे ठीक लगें। दक्षिण अफ्रीकाकी बुद्धिने भी यही किया। जनरल स्मट्स आदिने जो दलीलें दीं वे इस प्रकार थीं

'दक्षिण अफ्रीका पश्चिमकी सभ्यताका प्रतिनिधि है। हिंदुस्तान पूर्वकी सभ्यताका केंद्र-स्थान है। दोनों सभ्यताओंका सम्मिलन हो सकता है इस बातको इस जमानेके तत्त्वज्ञानी तो स्वीकार नहीं करते। इन दोनों सभ्यताओंकी प्रतिनिधि जातियों-का छोटे समुदायोंमें भी संगम हो तो इसका परिणाम विस्फोटके सिवा और कुछ नहीं हो सकता। पश्चिम सादगीका विरोधी है, पूर्वके लोग सादगीको प्रधान पद देते हैं। इन दोनोंका मेल कैसे हो सकता है? इन दोनोंमें कौन सभ्यता अधिक अच्छी है यह देखना राजकाजी अर्थात् व्यावहारिक पुरुषोंका काम नहीं। पश्चिमकी सभ्यता अच्छी हो या बुरी पर पश्चिमकी जनता उसे ही अपनाये रहना चाहती है। उस सभ्यताके रक्षार्थ पश्चिमकी जनताने अथक प्रयत्न किया है। खूनकी नदियां बहाई हैं। अनेक प्रकारके दूसरे दुःख सहे हैं। अब पश्चिमकी जनता को अब दूसरा रास्ता नहीं सूझनेका। इस दृष्टिसे देखा जाय तो हिंदुस्तानी और गोरोंका सवाल न व्यापारद्वेषका है और न वर्ण-द्वेषका। केवल अपनी सभ्यताके रक्षणका अर्थात् आत्मरक्षाके उच्चतम अधिकारके उपयोग और उससे प्राप्त कर्तव्यके पालन-का सवाल है। लोगोंको भड़कानेके लिए हिंदुस्तानियोंके दोष निकालना भाषणकर्त्ताओंको भले ही रुचता हो पर राजनैतिक दृष्टिसे विचार करनेवाले तो यही मानते और कहते हैं कि भारतीयोंके गुण ही दक्षिण अफ्रीकामें दोषरूप हो रहे हैं। अपनी सादगी अपने लंबे समयतक श्रम करनेके धैर्य अपनी किफायत-

धारी अपनी परलोक-परायणता अपनी सहनशीलता इत्यादि गुणोंके कारण ही हिंदुस्तानी दक्षिण अफ्रीकामें अप्रिय हो रहे हैं। पश्चिमकी जनता साहसिक अधीर दुनियावी आवश्यकताओंको बढ़ाने और उन्हें पूरी करनेमें मग्न खाने-पीनेकी शौकीन शारीरश्रम बचानेको आतुर और उड़ाऊ स्वभावकी है। इससे उसे यह डर रहता है कि पूर्वका सभ्यताके हजारों प्रतिनिधि दक्षिण अफ्रीकामें बस गये तो पश्चिमके लोगोंका पछाड़ा जाना निश्चित ही है। इस आत्मघातके लिए दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाली पश्चिमकी जनता हर्गिज तैयार नहीं हो सकती और इस जनताके हिमायती उसे इस खतरेमें कभी नहीं पड़ने देंगे।

मैं समझता हूं भले-से-भले और चरित्रवान यूरोपियन इस दलीलको जिस शक्लमें पेश करते हैं मैंने उसी रूपमें निष्पक्ष भावसे यहां उसे उपस्थित किया है। मैं ऊपर इस दलीलको तत्त्वज्ञानका ढोंग बता आया हूं पर इससे मैं यह सूचित करना नहीं चाहता कि इस दलीलमें कुछ भी सार नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि अर्थात् तात्कालिक स्वार्थदृष्टिसे तो उसमें बहुत-कुछ सार है पर तात्त्विक दृष्टिसे वह निरा ढोंग है। मेरी छोटीसी अक्लको तो यही दिखाई देता है कि तटस्थ मनुष्यकी बुद्धि ऐसे विषयका स्वीकार नहीं कर सकती। कोई सुधारक अपनी सभ्यताको वैसी असहाय स्थितिमें नहीं डालेगा जैसी स्थितिमें ऊपरकी दलीलें देनेवालोंने अपनी सभ्यताको डाल दिया है। पूर्वके किसी तत्त्वज्ञानीको यह भय होता हो कि पश्चिमकी जनता पूर्वके साथ आजादीसे मिल-जुल-तो पूर्वकी सभ्यता पश्चिमकी धारमें बालूकी तरह बह जायगी। यह मैं नहीं जानता पूर्वके तत्त्वज्ञानका जहांतक मैं मनन पाया हूं मुझे तो यही दिखाई देता है कि पूर्वकी सभ्यता पश्चिमके स्वतन्त्र संपर्कसे निर्भय रहती है। यही नहीं वैसे संपर्कका स्वागत करती है। इसकी उल्टी मिसालें पूर्वमें दिखाई दें तो जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन मैंने किया है उसका इससे बाध नहीं आता। क्योंकि मैं मानता हूं कि इस सिद्धान्तके समर्थनमें अनेक दृष्टान्त दिये जा

सकते हैं। कुछ भी हो पश्चिमके तत्त्वज्ञानियोंका दावा तो यह है कि पश्चिमकी सभ्यताका मूल सिद्धांत यही है कि पशुबल सर्वोपरि है और इसीसे इस सभ्यताके हिमायती पशुबलके रक्षणमें अपने समयका अधिक-से-अधिक भाग लगाते हैं। उनका तो यह भी सिद्धांत है कि जो राष्ट्र अपनी आवश्यकताएं नहीं बढ़ाता उसका अंतमें नाश होना निश्चित है। इसी सिद्धांतका अनुसरण करके तो पश्चिमकी जातियां दक्षिण अफ्रीकामें बसी हैं और अपनी संख्याकी तुलनामें सैकड़ों गुना बड़ी तादादवाले हब्शियोंको अपने बसमें कर लिया है। उन्हें हिंदुस्तानकी रंक जनताका भय हो ही कैसे सकता है? इस सभ्यताकी दृष्टिसे वस्तुतः उन्हें कुछ भी भय नहीं है इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि हिंदुस्तानी अगर सदाके लिए दक्षिण अफ्रीकामें मजदूर बनकर ही रहते तो उनके बसनेके विरुद्ध कोई आंदोलन ही नहीं होता।

अतः जो चीज बाकी रह जाती है, वह है केवल व्यापार और वर्ण। हजारों यूरोपियनोंने लिखा और कबूल किया है कि हिंदुस्तानियोंका व्यापार छोटे अंग्रेज व्यापारियोंके लिए हानि कर है और गेहुए रंगसे नफरत तो फिलहाल गोरे चमड़ेवाली जातियोंकी हड्डी-हड्डीमें व्याप्त हो गई है। उत्तरी अमरीकामें कानूनमें सबका बराबर हक है, पर वहां भी बुकरटी वाशिंगटन जैसा पुरुष जिसने ऊंची-से-ऊंची पाश्चात्य-शिक्षा प्राप्त की थी जो अतिशय चरित्रवान और ईसाई धर्मको माननेवाला था और जिसने पश्चिमकी सभ्यताको पूरे तौरपर अपना लिया था राष्ट्रपति रूजवेल्टके दरबारमें न जा सका और न आजतक जा सकता है। वहांके हब्शियोंने पश्चिमी सभ्यताको स्वीकार कर लिया है। वे ईसाई भी बन गये हैं पर उनका काला चमड़ा उनका अपराध है और उत्तरी अमरीकामें अगर लोकव्यवहारमें उनका तिरस्कार किया जाता है तो दक्षिण अमरीकामें अपराधके संदेहमात्रसे गोरे उन्हें जिंदा जला देते हैं, दक्षिण अमरीकामें इस दंडनीतिका एक खास नाम भी है जो आज अंग्रेजी भाषाका प्रचलित शब्द हो गया है। वह है 'लिंच

था। लिंच-कानून मानो उस दंडनीतिका है जिसके अनुसार पहले सजा दी जाती है पीछे अपराधका विचार किया जाता है। यह प्रथा लिंच नामक व्यक्तिसे चली है। अतः उसीके नाम पर इसका नामकरण हुआ है।

इस विवेचनसे पाठक देख सकते हैं कि ऊपर दी हुई तात्त्विक मानी जानेवाली दलीलमें अधिक तत्त्व या सार नहीं है। पर वे यह अर्थ भी न करें कि यह दलील देनेवाले सभी लोग उसे झूठी जानते हुए भी पेश करते हैं। उनमेंसे बहुतेरे सचाईके साथ मानते हैं कि उनकी दलील तात्त्विक है। हो सकता है कि हम वैसी स्थितिमें हों तो हम भी वैसी ही दलील पेश करें। कुछ ऐसे ही कारणोंसे 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' कहावत निकली होगी। इसका अनुभव किसको नहीं हुआ होगा कि हमारी जैसी वृत्ति बनी हो वैसी ही दलीलें हमें सूझा करती हैं और वे दूसरेके गले न उतरें तो हमें असंतोष, अधीरता और अंततः रोष भी होता है।

इतनी बारीकीमें मैं जानबूझकर गया हूं। मैं चाहता हूं कि पाठक भिन्न-भिन्न दृष्टियोंको समझें और जो अबतक वैसा न करते आये हों वे भिन्न-भिन्न दृष्टियोंका सम्मान और उनका आदर करनेकी आदत डालें। सत्याग्रहका रहस्य समझने और खासकर इस अस्त्रको अजमानेके लिए ऐसी उदारता और ऐसी सहनशक्तिकी अति आवश्यकता है। इसके बिना सत्याग्रह हो नहीं सकता। यह पुस्तक कुछ लिखनेके शौकसे तो लिखी नहीं जा रही है। न इसे सत्याग्रहके इतिहासका एक अंग बनानेका भाव रखना भी उसका उद्देश्य नहीं। मेरा उद्देश तो यह है कि जिस वस्तुके लिए मैं जीता हूं, जीना चाहता हूं और यह मानता हूं कि जिसके लिए मरनेको भी उतना ही तैयार हूं, यह वस्तु कैसे पैदा हुई, उसका पहला सामुदायिक प्रयोग किस तरह किया गया, इसे सारा जगत जाने, समझे और जहांतक पसंद करे और उससे बन सके वहांतक उसे अमलमें ला सके।

अब हम अपनी कहानीको फिर चलायें। हम यह देख चुके

कि ब्रिटिश शासनाधिकारियोंने यह निर्णय किया कि ट्रांसवालमें नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको रोकें और पुराने बाशिंदोंकी स्थिति ऐसी कठिन कर दें कि वे ऊबकर ट्रांसवाल छोड़ दें और न छोड़ें तो लगभग मजदूर बनकर ही रह सकें। दक्षिण अफ्रीका-के महान माने जानेवाले कितने ही राजपुरुष एकाधिक बार कह चुके हैं कि इस देशमें हिंदुस्तानी लकड़हारे और पानी भरने वालेके रूपमें ही खप सकते हैं। ऊपर जिस एशियाटिक विभाग की चर्चा की गई है उनके अधिकारियोंमें मि लायनल कर्टिस भी थे जो हिंदुस्तानमें रह चुके थे और जो असली शासन-पद्धति (डायर्की) की खोज और प्रचार करने वालेके रूपमें प्रसिद्ध हैं। वह एक कुलीन घरानेके नौजवान हैं। कम-से कम उस वक्त १९०६ में तो नौजवान ही थे। लार्ड मिल्नरके विश्वासपात्र थे। हर कामको शास्त्रीय पद्धतिसे ही करनेका दावा करते थे पर उनसे भारी भूलें भी हो सकती थीं। जोहान्सबर्गकी म्यूनि सिपैलिटीको अपनी एक ऐसी ही गलतीसे उन्होंने १४ हजार पौंडके घाटेमें डाल दिया था। उन्होंने इस बातकी खोज की कि नये हिंदुस्तानियोंका आना रोकना हो तो इस बारेमें सरकारका पहला कदम यह होना चाहिए कि हरएक पुराने हिंदुस्तानीका नाम-पता इस तौरपर दर्ज कर लिया जाय कि उसके बदले दूसरा इस देशमें दाखिल न हो सके और हो तो तुरंत पकड़ लिया जाय। ट्रांसवालमें अंग्रेजी राज्य कायम होनेके बाद हिंदु स्तानियोंके लिए जो परवाने निकाले गए थे उनमें उनके हस्ता क्षर और जो हस्ताक्षर न कर सकें तो उनके अगूठेकी निशानी ली जाती थी। पीछे किसी अधिकारीने सुझाया कि उनका फोटो भी ले लिया जाय। यों फोटो अगूठेकी निशानी और दस्तखत तीनों लिये जाने लगे। इसके लिए किसी कानून-कायदेकी जरू-रत तो थी नहीं अतः नेताओंको तुरत इसकी खबर भी नहीं हो सकी। धीरे धीरे उन्हें इन नवीनताओंकी खबर हुई। जनताकी ओरसे अधिकारियोंके पास आवेदनपत्र भेजे गए, शिष्ट-मंडल भी भेजे गए। अधिकारियोंकी दलील यह थी कि चाहे जो आदमी चाहे

जिस रीतिसे इस देशमें दाखिल हो जाय, यह हमसे सहन नहीं हो सकता। अतः सभी हिंदुस्तानियोंके पास एक ही तरहका परवाना होना चाहिए और उसमें इतना ब्योरा होना चाहिए कि परवाना पानेवाला असल आदमी ही उसके जरिए इस देशमें दाखिल हो सके, दूसरा कोई नहीं। मैंने यह सलाह दी कि गोकि कोई कानून तो ऐसा नहीं है जिसकी रूसे हम ऐसे परवाने रखनेको बंधे हों, फिर भी जबतक शांति रक्षाका कानून मौजूद है तबतक ये लोग हमसे परवाना तो मांग ही सकते हैं। जैसे हिंदुस्तानमें भारतरक्षा कानून (डिफेंस ऑव इंडिया एक्ट) था वैसे ही दक्षिण अफ्रीकामें शांति-रक्षा कानून (पीस प्रिजर्वेशन आर्डिनेंस) था और जैसे हिंदुस्तानमें भारत रक्षा कानून महज जनताको तंग करनेके लिए ही लंबी मुद्दततक कायम रखा गया वैसे ही यह शांतिरक्षा-कानून भी महज हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेके लिए रख छोड़ा गया था। गोरोंके ऊपर एक तरहसे उसका अमल बिलकुल ही नहीं होता था। अब अगर परवाना लेना ही हो तो उसमें पहचानकी कोई निशानी तो होनी ही चाहिए। इसलिए जो लोग अपना नाम न लिख सकते हों उनका अंगूठेकी निशानी लगाना ठीक ही था। पुलिसवालोंने यह बात ढूंढ़ निकाली है कि दो आदमियोंकी उंगलियोंकी रेखाएं एकसी होती ही नहीं। उनके रूप और संख्याका उन्होंने वर्गीकरण किया है और इस शास्त्रके जानकार दो अंगूठोंकी छापकी तुलना करके एक-दो मिनटमें ही यह बता सकते हैं कि वे अलग अलग आदमियोंके अंगूठे हैं या एक ही आदमीके अंगूठे। [illegible] देना मुझे तो तनिक भी पसंद नहीं था और मुसलमानोंको तो इसमें धार्मिक आपत्ति भी था।

अंतमें अधिकारियोंके साथ हमारी बातचीतके फलस्वरूप यह तै पाया कि हरएक हिंदुस्तानी अपना पुराना परवाना देकर उसके बदलेमें नये नमूनेके परवाने ले ले और नये आनेवाले हिंदुस्तानी नये नमूनेके परवाने लें। यह करना हिंदुस्तानियोंपर कानूनन फर्ज नहीं था पर इस आशासे [illegible] सभी आर

गीयोंने अपनी खुशीसे फिरसे परवाने लेना मंजूर कर लिया कि कहीं उनपर नई रुकावटें न लगा दी जायं, दूसरे वे दुनियाको यह दिखा देना चाहते थे कि भारतीय जनता धोखा देकर किसी-को इस देशमें नहीं घुसाना चाहती और शांतिरक्षा-कानूनका उपयोग नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेके लिए न किया जायगा। यह कोई ऐसी-वैसी बात न थी। जो काम करना हिंदुस्तानियोंको कानूनसे तनिक भी फर्ज नहीं था उसे उन्होंने पूरे एका और बड़ी ही शीघ्रतासे कर दिखाया। यह उनकी सचाई, व्यवहार-कुशलता, भलमनसी, समझदारी और नम्रताका चिह्न था। इस कामसे भारतीय जनताने यह भी साबित कर दिया कि ट्रांसवालके किसी भी कानूनका किसी भी रीतिसे उल्लंघन करना वह चाहती ही नहीं। हिंदुस्तानी समझते थे कि जिस सरकारके साथ जो जनसमाज इतनी भलमनसीका बरताव करेगा वह उसे अपनायेगी, अपना विशेष प्रेमपात्र समझेगी। ट्रांसवालकी ब्रिटिश सरकारने इस भारी भलमनसीका बदला किस प्रकार दिया इसे हम अगले प्रकरणमें देखेंगे।

११

भलमनसीका बदला—खूनी कानून

परवानोंका रद्दोबदल होनेतक हम १९०६में प्रवेश कर चुके थे। १९०३में मैं ट्रांसवालमें फिर दाखिल हुआ था। उस सालके लगभग मध्यमें मैंने जोहान्सबर्गमें दफ्तर खोला। यानी दो बरस एशियाटिक महकमेके हमलोंका सामना करनेमें ही गये। हम सबने मान लिया था कि परवानोंका मसला तै होते ही सरकारको पूरा संतोष हो जायगा और भारतीय जनताको कुछ शांति मिलेगी। पर उसके भाग्यमें शांति थी ही नहीं। मि० लायनल कर्टिसका परिचय पिछले प्रकरणमें दे चुका हूं। उन्होंने सोचा कि हिंदुस्तानियोंके नये परवाने ले लेनेसे ही गोरोंका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। उनकी दृष्टिसे बड़े कामोंका आपसके समझौतेसे होना

हो काफी नहीं था। ऐसे कामोंके पीछे कानूनका बल होना चाहिए। तभी उनकी शोभा है और उनके मूलभूत सिद्धांतोंकी रक्षा हो सकती है। मि० कर्टिसका विचार था कि हिंदुस्तानियोंको डराने के लिए कोई ऐसा काम किया जाय जिसका असर सारे दक्षिण अफ्रीकापर पड़े और अंतमें दूसरे उपनिवेश भी उसका अनुकरण करें। उनकी रायमें जबतक दक्षिण अफ्रीकाका एक भी दरवाजा हिंदुस्तानियोंके लिए खुला रहेगा तबतक ट्रांसवाल सुरक्षित नहीं माना जा सकता। फिर उनकी दृष्टिसे सरकार और भारतीय जनताके बीच समझौता होनेसे तो भारतीय जनताकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती थी। उनका इरादा इस प्रतिष्ठाको बढ़ानेका नहीं, बल्कि घटानेका था। उनका हिंदुस्तानियोंकी रजामंदीकी जरूरत नहीं थी। वह तो चाहते थे उनपर बाहरी प्रतिबंध लगाकर उन्हें धर्रा देना। अतः उन्होंने एशियाटिक एक्टका मसविदा बनाया और सरकारको सलाह दी कि जबतक इस मसविदेके अनुसार कानून बनकर तैयार नहीं हो जाता तबतक हिंदुस्तानियों का लुक-छिपकर ट्रांसवालमें दाखिल होना रोका नहीं जा सकता और जो इस तरह यहां पहुंच जाय उन्हें निकाल बाहर करनेकी प्रचलित कानूनोंमें कोई व्यवस्था नहीं है। मि० कर्टिसकी दलीलें और मसविदा सरकारको पसंद आया और उसने इस मसविदेके अनुरूप बिल ट्रांसवालकी धारा-सभामें पेश करनेके लिए ट्रांसवालके सरकारी गजटमें प्रकाशित कर दिया।

इस बिलकी तफ्सीलमें जानेके पहले एक महत्त्वकी घटना-की चर्चा थोड़े शब्दोंमें कर देना आवश्यक है। सत्याग्रहकी प्रेरणा करनेवाला मैं ही हूं। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि पाठक मेरी स्थितियोंको पूरी तरह समझलें। यों जब ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंपर प्रतिबंध लगानेके प्रयत्न हो रहे थे नेटालमें वहांके हब्शियों—जुलू लोगोंने बगावत कर दी। इस झगड़ेको बगावत कह सकते हैं या नहीं इस बारेमें मुझे शंका थी और आज भी है। फिर भी नेटालमें इस घटनाका परिचय सदा इसी नामसे दिया गया है। इस मौकेपर भी नेटालमें रहनेवाले बहुतसे गोरे

इस विप्लवको शांत करनेमें सहायता देनेके लिए स्वयंसेवकके रूपमें सेनामें भरती हुए। मैं भी नेटालका ही निवासी माना जाता था। इसलिए मैंने सोचा कि मुझे भी उसमें काम करना चाहिए। भारतीय जनताकी अनुमति प्राप्तकर मैंने सरकारको लिखा कि घायलोंकी सेवा करनेवाली एक छोटी-सी टुकड़ी खड़ी करनेकी इजाजत मुझे दे दी जाय। सरकारने प्रस्ताव स्वीकार किया। अतः मैंने ट्रांसवालका घर तोड़ दिया। बाल-बच्चोंको नेटालमें उस खेतपर भेज दिया जहांसे 'इंडियन ओपीनियन' नामका साप्ताहिक अखबार निकाला जाता था और जहां मेरे सहकारी रहते थे। दफ्तर कायम रखा क्योंकि मैं जानता था कि मुझे इसमें बहुत दिन नहीं लगेंगे।

२ २५ आदमियोंकी छोटीसी टुकड़ी खड़ी करके मैं फौजमें शामिल हो गया। इस छोटी-सी टुकड़ीमें भी लगभग सभी जातियोंके भारतीय थे। इस टुकड़ीको एक महीने सेवा करनी पड़ी। हमें जो काम सौंपा गया उसको मैंने सदा ईश्वरका अनुग्रह माना है। मैंने देखा कि जो हब्शी जख्मी होते थे उन्हें हम ही उठायें तो वे उठें नहीं तो वहीं पड़े सड़ा करें। इन जख्मियोंके जख्मों-की मरहम-पट्टी करनेमें कोई भी गोरा हाथ न बटाता। जिस सम्बंध डा० सैवेजकी मातहतीमें हमें काम करना था वह स्वयं अतिशय दयालु थे। घायलोंको उठाकर अस्पताल पहुंचा देनेके बाद उनकी सेवा-शुश्रूषा हमारे काम-क्षेत्रके बाहरकी बात हो जाती थी। पर हम तो यह सोच कर गये थे कि जो भी सेवा हमें सौंपी जाय वह हमारी कर्तव्य-परिधिके अंदर ही होगी। अतः इस भले डाक्टरने हमसे कहा कि मुझे कोई भी गोरा हब्शियों की सेवा करनेके लिए नहीं मिलता और मुझमें यह ताकत नहीं कि किसी गोरेको इसके लिए मजबूर कर सकूं। आप यह दयाका काम करें तो आपका अहसान मानूंगा। हमने इस कामका स्वागत किया। कितने ही हब्शियोंके जख्म पांच-पांच छ-छः दिन से साफ नहीं किये गये थे इससे उनसे दुर्गंध आ रही थी। इन सबको साफ करना हमारे सिर पड़ा और हमें यह सेवा बहुत

रखी । हम्भी हमारे साथ बात तो कर ही नहीं सकते थे पर उनकी चेष्टाओं और उनकी आंखोंमें हम यह देख सकते थे कि उनका मन कह रहा है कि मानो भगवानने ही हमें उनकी सहायताके लिए भेज दिया हो । इस काममें अकसर हमें चालीस चालीस मीलकी मंजिल करनी होती ।

एक महीनेमें हमारा काम समाप्त हो गया । अधिकारियोंको संतोष हुआ । गवर्नरने कृतज्ञता प्रकाशका पत्र लिखा । हमारी टुकड़ीमें तीन गुजराती थे जिन्हें सार्जेंटका अधिकार दिया गया था । उनके नाम जानकर गुजरातियोंको प्रसन्नता होगी । उनमें एक थे उमियाशंकर दूसरे सुरेंद्रराय मेढ और तीसरे हरिशंकर जोशी । तीनों कस हुए बदनके थे और तीनोंने बड़ी कड़ी मेहनत की । दूसरे भारतीयोंके नाम मुझे इस वक्त याद नहीं आ रहे हैं । पर एक पठान भी उनमें था यह मुझे अच्छी तरह याद है । यह भी याद है कि हम उसके बराबर बोझ उठा लेते थे और कूचमें भी उसके साथ-साथ रहते थे यह देखकर उसे अचरज होता था ।

इस टुकड़ीके कामके सिलसिलेमें मेरे दो विचार, जो अरसेसे मनमें धीरे-धीरे पक रहे थे पूरी तरह पक गए । उनमें एक तो यह है कि सेवाधर्मका प्रधानपद देनेवालेको ब्रह्मचर्यका पालन करना ही चाहिए, दूसरा यह कि सेवाधर्म स्वीकार करनेवालेको गरीबीको सदाके लिए अपना लेना चाहिए । वह किसी ऐसे धंधेमें न लगे जिससे सेवाधर्मके पालनमें उसे कभी संकोच होनेका अवसर आये या उसमें तनिक भी रुकावट हो सके ।

मैं इस टुकड़ीमें काम कर रहा था तभी जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी ट्रांसवाल लौट आनेकी चिट्ठियां और तार आ रहे थे । अतः फिनिक्समें सब लोगोंसे मिलकर मैं तुरंत जोहान्सबर्ग पहुंचा और वहां वह बिल पढ़ा जिसके बारेमें ऊपर लिख चुका हूं । जिसवाला गजट २२ अगस्त १९०६ ई० का मैं दफ्तरसे घर ले गया था । घरके पास एक छोटीसी पहाड़ी थी । वहां अपने साथीको लेकर इस बिलका उलथा इंडियन ओपीनियन

के लिए करने लगा। ज्यों-ज्यों मैं उसकी धाराओंको पढ़ता गया त्यों-त्यों मेरा कलेजा अधिकाधिक कांपने लगा। उसमें मैं भारतीयोंसे द्वेषके सिवा और कुछ भी नहीं देख सका। मुझे दिखाई दिया कि अगर यह बिल पास हो गया और भारतीयोंने उसे मंजूर कर लिया तो दक्षिण अफ्रीकासे उनके पैर जड़मूलसे उखड़ जायंगे। मुझे स्पष्ट दिखाई दिया कि भारतीय जनताके लिए यह जीवन-मरणका प्रश्न है। मुझे यह भी दिखाई दिया कि अर्जी आदि देनेसे सफलता नहीं मिली तो वह चुप नहीं बैठ सकती। इस कानूनके सामने सिर झुकानेसे मर मिटना बेहतर है। पर मरें कैसे? भारतीय जनता किस तरहेमें कूदे या जूझने का साहस करे कि उसके सामने विजय या मृत्यु इन दोके सिवा तीसरा रास्ता रह ही न जाय? मेरे सामने तो ऐसी संगीन दीवार खड़ी हो गई कि मुझे रास्ता सूझा ही नहीं। जिस प्रस्तावित बिलने मेरे अंतरमें इतनी हलचल मचा दी थी उसका ब्यौरा पाठकोंको जान लेना ही चाहिए। उसका सार यह है

"ट्रांसवालमें रहनेका हक रखनेवाला हरएक भारतीय पुरुष स्त्री और आठ बरस या इससे ऊपरका लड़का-लड़की एशियाई दफ्तरमें अपना नाम दर्ज कराके परवाना हासिल करे। यह परवाना लेते समय पुराना परवाना अधिकारी (रजिस्ट्रार) को सौंप दे। नाम दर्ज करानेकी अर्जीमें नाम ठिकाना जाति उम्र आदि लिख दें। रजिस्ट्रार प्रार्थीके शरीरपर जो खास निशान हों उन्हें नोट कर लें और उसकी दसों उंगलियों और अंगूठेका निशान ले लें। जो भारतीय स्त्री-पुरुष नियत अवधिके अंदर ऐसी दरख्वास्त न दे उसका ट्रांसवालमें रहनेका हक रद हो जायगा। दरख्वास्त न देना कानूनन अपराध माना जायगा। उसके लिए जेलकी सजा मिल सकती है, जुर्माना किया जा सकता है और अदालत उचित समझे तो देशनिकालेका दंड भी दे सकती है। बच्चोंकी ओरसे मां-बापको दरख्वास्त देनी होगी और उंगलियोंके निशान आदि लेनेके लिए उन्हें रजिस्ट्रारके सामने हाजिर करनेकी जिम्मेदारी भी मां-बापपर होगी। मां-बापने इस कर्तव्य

का पालन नहीं किया हो तो १६ बरसका होनेपर बालकको खुद यह फर्ज अदा करना चाहिए। उसके अदा न किये जानेपर मां-बाप जिस-जिस दंडके पात्र होते हैं उस दंडके अधिकारी १६ की उम्रको पहुंचते हुए लड़की-लड़के भी माने जायंगे। प्रार्थीको जो परवाना या रजिस्टरीका सार्टिफिकेट दिया जाय उसे हर पुलिस अफसरके सामने जब और जहां यह मांगा जाय पेश करना लाजिम होगा। उसे पेश न करना अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए कैद या जुर्मानेकी सजा दे सकती है। राह चलते व्यक्तिसे भी परवाना पेश करनेको कहा जा सकता है। परवानेकी जांचके लिए पुलिस अफसर घरमें भी घुस सकते हैं। ट्रांसवालके बाहरसे आनेवाले भारतीय स्त्री-पुरुषको जांच करनेवाले अफसरके सामने अपना परवाना पेश करना ही होगा। कोई कामसे अदालतमें जाय या मालके दफ्तरमें व्यापार या बाइसिकिल रखनेका अनुमति-पत्र लेने जाय तो वहां भी अफसर उससे परवाना मांग सकता है। अर्थात् कोई भारतीय किसी भी सरकारी दफ्तरमें उस दफ्तरसे संबद्ध कार्यके लिये जाय तो अफसर उसकी प्रार्थना स्वीकार करनेसे पहले उससे उसका परवाना मांग सकता है। उसे पेश करने या उसे रखनेवाले व्यक्तिसे अधिकारी इस बारेमें जो कुछ पूछे उसे बतानेसे इन्कार करना भी अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए भी कैद या जुर्मानेकी सजा दे सकती है।

दुनियाके किसी भी हिस्सेमें स्वतंत्र मनुष्योंके लिए इस तरहका कानून है इसका पता मुझे नहीं है। मैं जानता हूं कि नेटालके गिरमिटिया हिंदुस्तानियोंके लिए परवानेका कानून सख्त है पर ये बेचारे तो स्वतंत्र लोग माने ही नहीं जा सकते। फिर भी यह सच है कि उनके परवानेका कानून इस कानूनकी तुलनामें नरम है और उस कानूनके तोड़नेकी सजा तो इस कानूनमें निर्दिष्ट दंडके सामने कुछ भी नहीं है। लाखोंका कारबार करनेवाला रोजगारी इस कानूनके अनुसार देश-निकालेकी सजा पा सकता है यानी इस कानूनके भंग होनेसे उसके बिलकुल तबाह

सभापतिके आसन पर विराज रहे थे। वह टोसवालके बहुत ही पुरानेवाले वाशिंदोंमेंसे थे। मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन नामक प्रसिद्ध फर्मके हिस्सेदार और उसकी जोहान्सबर्गकी शाखाके व्यवस्थापक थे। जो प्रस्ताव सभामें उपस्थित किये गए उनमें सच पूछिए तो एक ही महत्वका प्रस्ताव था। उसका आशय यह था कि इस बिलके विरोधमें सब उपाय करते हुए भी अगर वह पास हो जाय तो भारतीय उसके आगे सिर न झुकाएं और सिर न झुकानेसे जो-जो कष्ट सहने पड़ें उन्हें सह लें।

यह प्रस्ताव मैंने सभाको पूरी तरह समझा दिया। सभाने भी शांतिसे उसे सुन लिया। सभाका सारा कामकाज तो हिंदी या गुजरातीमें ही होता था इसलिए यह तो हो ही नहीं सकता था कि कोई भी उसकी कोई बात न समझ पाय। हिंदी न समझनेवाले तामिल और तेलुगु भाइयोंके लिए उन भाषाओंके बोलनेवाले सारी बातोंको पूरे तौरपर समझा देते थे। प्रस्ताव नियम-पूर्वक उपस्थित किया गया। बहुतोंने अनुमोदन-समर्थन भी किया। उनमें एक बोलनेवाले सेठ हाजी हबीब थे। ये भी दक्षिण अफ्रीकाके बहुत पुराने और अनुभवी वाशिंदे थे। उन्होंने बड़ा ही जोशीला भाषण दिया। आवेशमें आकर यहांतक कह गए—'यह प्रस्ताव हमें खुदाको साक्षी करके स्वीकार करना है। हमें चाहिए कि नामर्द बनकर इस कानूनके सामने कभी सिर न झुकाएं। इसलिए मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि हरगिज इस कानूनके ताबे न होऊंगा। और मैं इस सारे जलसे-को सलाह देता हूं कि सब लोग खुदाको साक्षी करके कसम खायं।

प्रस्तावके समर्थनमें और भी तीखे और जोरदार भाषण हुए थे। सेठ हाजी हबीब जब बोल रहे थे और कसमकी बातपर पहुंचे तो मैं तुरंत चौंका और सावधान हो गया। तभी मैं अपनी निजकी और कौमकी जिम्मेवारीको पूरे तौरपर समझ सका। कौमने अबतक कितने ही प्रस्ताव पास किये थे। अधिक विचार या नये अनुभवसे उनमें फेरफार भी किये गए। यह भी हुआ

कि सबने उस निश्चयोंपर अमल नहीं किया। स्वीकृत प्रस्ताव में रद्दोबदल उससे सहमत हुए लोगोंका इकार आदि सारी दुनियामें सार्वजनिक जीवनके सामान्य अनुभव हैं। पर ऐसे प्रस्तावोंमें कोई ईश्वरका नाम बीचमें नहीं लाता। तात्त्विक दृष्टिसे विचार किया जाय तो निश्चय और ईश्वरका नाम लेकर की हुई प्रतिज्ञामें कोई अंतर होना ही नहीं चाहिए। बुद्धिवाली मनुष्य सोच-समझकर कोई निश्चय करे तो उससे वह डिगता नहीं। उसकी निगाहमें उसका वजन ईश्वरको साक्षी करके की हुई प्रतिज्ञाके बराबर ही होता है। पर दुनिया तात्त्विक निर्णयोंसे नहीं चलती। ईश्वरको साक्षी बनाकर की हुई प्रतिज्ञा और सामान्य निश्चयके बीच वह जमीन-आसमानका अंतर मानती है। सामान्य निश्चयको बदलनेमें निश्चय करनेवाला धर्मता नहीं पर प्रतिज्ञा करनेवाला अगर अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ता है तो वह खुद तो धर्मता ही है समाजभी उसको धिक्कारता है और पापी समझता है। इन बातोंकी जड़ इतनी गहरी हो गई है कि कानून भी कसम खाकर कही हुई बात झूठी ठहरे तो कसम खानेवालेको अपराधी मानता है और सख्त सजा मिलती है।

इन विचारोंसे भरा हुआ मैं जो प्रतिज्ञाओंका अनुभवी था और उनके मीठे फल चख चुका था ऊपर किसी प्रतिज्ञाकी बात सुनकर भयसे स्तब्ध हो गया। उसके परिणाम एक क्षण में मेरे मानस-चक्षुके सामने आ गए। इस घबराहटसे जोश पैदा हुआ और यद्यपि मैं इस सभामें प्रतिज्ञा करने या लोगोंसे कराने का इरादा लेकर नहीं गया था फिर भी सेठ हाजी हबीबका सुझाव मुझे बहुत पसंद आया। पर इसके साथ-साथ मैंने यह भी सोचा कि इस प्रतिज्ञाके सारे नतीजोंसे लोगोंको वाकिफ करा देना चाहिए, प्रतिज्ञाका अर्थ स्पष्ट रूपसे समझा देना चाहिए। इसके बाद अगर वे प्रतिज्ञा कर सकें तो उसका स्वागत करना चाहिए और न कर सकें तो मुझे समझ लेना होगा कि अभी वे आखिरी कसौटीपर चढ़नेको तैयार नहीं हुए हैं। अतः मैंने सभा

सभापतिके आसन पर विराज रहे थे। वह ट्रांसवालके बहुत ही पुराने बसनेवालोंमें से थे। मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन नामक प्रसिद्ध फर्मके हिस्सेदार और उसकी जोहान्सबर्गकी शाखाके व्यवस्थापक थे। जो प्रस्ताव सभामें उपस्थित किये गए उनमें सच पूछिए तो एक ही महत्वका प्रस्ताव था। उसका आशय यह था कि इस बिलके विरोधमें सब उपाय करते हुए भी अगर वह पास हो जाय तो भारतीय उसके आगे सिर न झुकाएँ और सिर न झुकानेसे जो-जो कष्ट सहने पड़ें उन्हें सह लें।

यह प्रस्ताव मैंने सभाको पूरी तरह समझा दिया। सभाने भी शांतिसे उसे सुन लिया। सभाका सारा कामकाज तो हिंदी या गुजरातीमें ही होता था इसलिए यह तो हो ही नहीं सकता था कि कोई भी उसकी कोई बात न समझ पाय। हिंदी न समझनेवाले तामिल और तेलुगु भाइयोंके लिए उन भाषाओंके बोलनेवाले सारी बातोंको पूरे तौरपर समझा देते थे। प्रस्ताव नियम-पूर्वक उपस्थित किया गया। बहुतोंने अनुमोदन-समर्थन भी किया। उनमें एक बोलनेवाले सेठ हाजी हबीब थे। ये भी दक्षिण अफ्रीकाके बहुत पुराने और अनुभवी बाशिंदे थे। उन्होंने बड़ा ही जोशीला भाषण दिया। आवेशमें आकर यहांतक कह गए—"यह प्रस्ताव हमें खुदाको साक्षी करके स्वीकार करना है। हमें चाहिए कि नामर्द बनकर इस कानूनके सामने कभी सिर न झुकाएं। इसलिए मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि हरगिज इस कानूनके तावे न होऊंगा। और मैं इस सारे जलसे-को सलाह देता हूं कि सब लोग खुदाको साक्षी करके कसम खायं।

प्रस्तावके समर्थनमें और भी तीखे और जोरदार भाषण हुए थे। सेठ हाजी हबीब जब बोल रहे थे और कसमकी बातपर पहुंचे तो मैं तुरंत चौंका और सावधान हो गया। तभी मैं अपनी निजकी और कौमकी जिम्मेवारीको पूरे तौरपर समझ सका। कौमने अबतक कितने ही प्रस्ताव पास किये थे। अधिक विचार या नव अनुभवसे उनमें फेरफार भी किये गए। यह भी हुआ

उस खोटे सिक्केका मालिक दण्डका पात्र हो जाता है—वैसे ही झूठी कसम खानेवालेकी भी कोई कीमत नहीं होती बल्कि लोक-परलोक दोनोंमें वह दंडका अधिकारी होता है। सेठ हाजी हबीब ऐसी ही गंभीर कसम खानेकी हमें सलाह दे रहे हैं। इस सभामें ऐसा एक भी आदमी नहीं है जो बालक या नासमझ माना जा सके। आप सभी पुख्ता उमरवाले हैं, दुनिया देखे हुए हैं, बहुतेरे तो प्रतिनिधि हैं और कमोबेश जिम्मेदारी भी उठा चुके हैं। अतः इस सभामें एक भी आदमी नहीं है जो 'मैंने बिना समझे प्रतिज्ञा कर दी थी' कहकर कभी उस वचनसे निकल सके।

'मैं जानता हूं कि प्रतिज्ञाएं, व्रत आदि गंभीर अवसरों पर ही लिये जाते हैं। उठते-बैठते प्रतिज्ञा करनेवाला जरूर ठोकर खायगा और गिरेगा। पर इस देशमें अपने सामाजिक-जीवन में मैं प्रतिज्ञा करने योग्य किसी अवसरकी कल्पना कर सकता हूं तो वह अवसर अवश्य उपस्थित है। बहुत सम्हालकर और डर-डरके कदम उठाना बुद्धिमानी है। पर डर और सम्हालकी भी हद होती है। हम उस हदको पहुंच गए हैं। सरकार सभ्यताकी मर्यादा लांघ गई है। हमारे चारों ओर जब उसने दावानल सुलगा दिया है तब भी हम बलिदानकी पुकार न करें और सोच-विचारमें पड़े रहें तो हम नालायक और नामर्द साबित होंगे। अतः यह अवसर शपथ लेनेका है इस विषयमें तनिक भी शंका नहीं। पर इस शपथकी शक्ति अपनेमें है या नहीं यह हरएक को खुद सोच लेना होगा। ऐसे प्रस्ताव बहुमतसे पास नहीं किये जाते। जितने लोग कसम खाए उतने ही उस कसमसे बंधेंगे। ऐसी कसम दिखावेके लिए नहीं खाई जाती। उसका असर यहांकी सरकार, बड़ी (साम्राज्य) सरकार या भारत सरकारपर क्या होगा इसका ख्याल कोई तनिक भी न करे। हरएक अपने हृदय पर हाथ रख उसको ही टटोले। अगर उसकी अंतरात्मा कहे कि तुममें शपथ लेनेकी शक्ति है तभी शपथ ले तभी वह फलवती होगी।

"अब दो शब्द परिणामके विषयमें। बड़ी-से-बड़ी आशा

पतिसे प्रार्थना की कि मुझे सेठ हाजी हबीबके कथनका अर्थ समझानेकी इजाजत दें। मुझे इसकी इजाजत मिल गई। मैं उठा और जो कुछ कहा उसका खुलासा जैसा आज मुझे याद है वैसा नीचे दे रहा हूं :

मैं सभाको यह बात समझा देना चाहता हूं कि आजतक जो प्रस्ताव हमने स्वीकार किये हैं और जिस रीतिसे स्वीकार किये हैं उन प्रस्तावों और उस रीतिसे इस प्रस्ताव और इसकी रीतिमें भारी अंतर है। यह प्रस्ताव अति गंभीर है क्योंकि इसपर पूरा-पूरा अमल होनेपर दक्षिण अफ्रीकामें हमारी हस्तीका रहना-मिटना अवलंबित है। यह प्रस्ताव स्वीकार करनेकी जो रीति हमारे भाईने सुझायी है वह जितनी गंभीर है उतनी ही नवीन है। मैं खुद इस रीतिसे निश्चय करानेका विचार कर के यहां नहीं आया था। इस यशके अधिकारी अकेले सेठ हाजी हबीब हैं और इसकी जवाबदेही भी उन्हींपर है। उन्हें मैं मुबारकबाद देता हूं। इनका सुझाव मुझे बहुत रुचा है पर आप उसे स्वीकार कर लेंगे तो आप भी उनकी जिम्मेवारीमें साझी हो जायंगे। यह जिम्मेवारी क्या है यह आपको समझ लेना चाहिए और कौमके सलाहकार और सेवकके रूपमें उसे पूरे तौरपर समझा देना मेरा फर्ज है।

'हम सभी एक ही सिरजनहारको माननेवाले हैं। उसको मुसलमान भले ही खुदा कहकर पुकारें, हिंदू भले ही उसको ईश्वरके नामसे भजें पर है वह एक ही स्वरूप। उसको साक्षी करके उसको बीचमें रखकर हम कोई प्रतिज्ञा करें या कसम खायें यह कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है। ऐसी कसम खाकर अगर हम उससे फिर जाय तो हम कौमके दुनियाके और खुदा के सामने गुनहगार होंगे। मैं तो मानता हूं कि सावधानीसे शुद्ध बुद्धिसे मनुष्य कोई प्रतिज्ञा करे और पीछे उसको तोड़ दे तो वह अपनी इंसानियत अपनी मनुष्यताको खो बैठता है। और जैसे पारा चढ़ा हुआ तांबेका सिक्का रुपया नहीं है—यह मालूम होते ही उसकी कोई कीमत नहीं रहती इतना ही नहीं, मालिक

उस खोटे सिक्केका मालिक दंडका पात्र हो जाता है—वैसे ही झूठी कसम खानेवालेकी भी कोई कीमत नहीं होती बल्कि लोक-परलोक दोनोंमें वह दंडका अधिकारी होता है। सेठ हाजी हबीब ऐसी ही गंभीर कसम खानेकी हमें सलाह दे रहे हैं। इस सभामें ऐसा एक भी आदमी नहीं है जो बालक या नासमझ माना जा सके। आप सभी पुख्ता उम्रवाले हैं दुनिया देखे हुएहैं बहुतेरे तो प्रतिनिधि हैं और कमोबेश जिम्मेवारी भी उठा चुके हैं। अत इस सभामें एक भी आदमी नहीं है जो 'मैंने बिना समझे प्रतिज्ञा कर दी थी' कहकर कभी उस वचनसे निकल सके।

मैं जानता हूं कि प्रतिज्ञाएं, व्रत आदि गंभीर अवसरों पर ही लिये जाते हैं। उठते-बैठते प्रतिज्ञा करनेवाला जरूर ठोकर खायगा और गिरेगा। पर इस देशमें अपने सामाजिक-जीवन में मैं प्रतिज्ञा करने योग्य किसी अवसरकी कल्पना कर सकता हूं तो वह अवसर अवश्य उपस्थित है। बहुत सम्हालकर और डर-डरके कदम उठाना बुद्धिमानी है। पर डर और सम्हालकी भी हद होती है। हम उस हदको पहुंच गए हैं। सरकार सभ्यताकी मर्यादा लांघ गई है। हमारे चारों ओर जब उसने दावानल सुलगा दिया है तब भी हम बलिदानकी पुकार न करें और सोच-विचारमें पड़े रहें तो हम नालायक और नामर्द साबित होंगे। अत यह अवसर शपथ लेनेका है, इस विषयमें तनिक भी शंका नहीं। पर इस शपथकी शक्ति अपनेमें है या नहीं यह हरएक को खुद सोच लेना होगा। ऐसे प्रस्ताव बहुमतसे पास नहीं किये जाते। जितने लोग कसम खाएं उतने ही उस कसमसे बंधेंगे। ऐसी कसम दिखावेके लिए नहीं खाई जाती। उसका असर यहांकी सरकार, बड़ी (साम्राज्य) सरकार या भारत सरकारपर क्या होगा इसका ख्याल कोई तनिक भी न करे। हरएक अपने हृदय पर हाथ रख उसको ही टटोले। अगर उसकी अंतरात्मा कहे कि तुममें शपथ लेनेकी शक्ति है तभी शपथ ले तभी वह फलवती होगी।

"अब दो शब्द परिणामके विषयमें। बड़ी-से-बड़ी आशा

सोमें तो यह कह सकते हैं कि अगर सब लोग अपनी कसमपर कायम रहें और भारतीय जनताका बड़ा भाग कसम खा सके तो यह कानून (आर्डिनेंस) या तो पास ही न होगा या पास होगा तो तुरंत रद हो जायगा। कौमको अधिक कष्ट न सहना पड़ेगा। हो सकता है कि कुछ भी कष्ट न सहना पड़े। पर कसम खानेवालेका धर्म जैसे एक ओरसे श्रद्धापूर्वक आशा रखना है वैसे ही दूसरी ओरसे निराश आशा रहित होकर कसम खानेको तैयार होना है। इसलिए मैं चाहता हूं कि हमारी लड़ाईमें जो कड़वे-से-कड़वे परिणाम हमारे सामने आ सकते हैं उनकी तसवीर इस सभाके सामने खींचदूं। मान लीजिए कि यहां उपस्थित हम सब लोग शपथ ले लेते हैं। हमारी संख्या अधिक-से-अधिक ३ हजार होगी। यह भी हो सकता है कि बाकीके १ हजार भारतीय कसम न खायं। मुरूमें तो हमारी हंसी होनी ही है। फिर इतनी सारी चेतावनी दे देनेपर भी यह मुमकिन है कि कसम खाने वालोंमें कुछ या बहुत-से पहली ही परीक्षामें कमजोर साबित हो जायं। हमें जेल जाना पड़े जेलमें अपमान सहने पड़ें। भूख-प्यास सर्दी-गरमी भी सहनी पड़े। कड़ी मशक्कत करनी पड़े। उद्धत दरोगाओं (वार्डरों)के कोड़े खाने पड़ें। जुर्माना हो और कुर्कीमें हमारा माल-असबाब भी बिक जाय। लड़नेवाले बहुत थोड़े रह गए तो आज हमारे पास बहुत पैसा होते हुए भी हम कल कंगाल हो जा सकते हैं। हमें देशनिकालेकी सजा भी मिल सकती है। जेलमें भूखे रहते और दूसरे कष्ट सहते हुए हममेंसे कुछ बीमार हो सकते हैं और कोई मर भी सकता है। अर्थात् थोड़ेमें कहा जा सकता है कि यह बात तनिक भी नामुमकिन नहीं कि जितने कष्टोंकी कल्पना हम कर सकते हैं वे सभी हमें सहने पड़ें और समझदारी इसीमें है कि ये सारे कष्ट सहन करने होंगे यह मानकर ही हम कसम खायं। मुझसे कोई पूछे कि इस लड़ाईका अंत क्या होगा और कब होगा तो मैं कह सकता हूं कि अगर सारी कौम परीक्षामें पूरी तरह उत्तीर्ण हो गई तो

लड़ाईका फैसला बहुत जल्दी हो जायगा। पर अगर हममेंसे बहुतसे संकटका सामना होनेपर फिसल गए तो लड़ाई लंबी होगी। पर इतना तो मैं हिम्मतके साथ और निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि जबतक मुट्ठीभर लोग भी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहनेवाले होंगे तबतक इस युद्धका एक ही अंत समझिए—अर्थात् इसमें हमारी जीत ही होगी।

'अब दो शब्द अपनी व्यक्तिगत् जिम्मेवारी के बारेमें भी कह दूं। यद्यपि मैं प्रतिज्ञा करनेकी जोखिमोंको बता रहा हूं पर साथ ही आपको शपथ लेनेकी प्रेरणा भी कर रहा हूं। इसमें मेरी अपनी जिम्मेदारी कितनी है इसे मैं पूरे तौरपर समझता हूं। हो सकता है कि आवेशमें या गुस्सेमें आकर इस सभामें उपस्थित लोगोंका बड़ा भाग प्रतिज्ञा करले पर संकट कालमें कमजोर साबित हो और मुट्ठीभर लोग ही अंतका ताप सहन करनेके लिए रह जाय। फिर भी मुझ जैसे आदमीके लिए तो एक ही रास्ता होगा—'मर मिटना पर इस कानूनके आगे सिर न झुकाना। मैं तो मानता हूं कि मान लीजिये ऐसा होनेकी तनिक भी संभावना नहीं फिर भी फर्ज कर लीजिए कि सब गिर गए और मैं अकेला ही रह गया तो भी मेरा विश्वास है कि प्रतिज्ञाका भंग मुझसे हो ही नहीं सकता। यह कहनेका मतलब आप समझ लें। यह घमंडकी बात नहीं बल्कि खासतौरसे इस मंचपर बैठे हुए नेताओंको सावधान करनेकी बात है। अपनी मिसाल लेकर मैं नेताओंसे विनय पूर्वक कहना चाहता हूं कि अगर आपमें अकेला रह जानेपर भी दृढ़ रहनेका निश्चय या वैसा करनेकी शक्ति न हो तो आप इतना ही न करें कि खुद प्रतिज्ञा न करें, बल्कि लोगोंके सामने यह प्रस्ताव रखकर उनसे प्रतिज्ञा कराई जाय इसके पहले ही आप अपना विरोध लोगोंपर प्रकट कर दें और अपनी सम्मति उसमें न दें। यह प्रतिज्ञा यद्यपि हम सब साथ मिलकर करना चाहते हैं तो भी कोई इसका यह अर्थ कदापि न करे कि एक या अनेक लोग अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ दें तो दूसरे सहज ही

उसके मंथनसे मुक्त हो सकते हैं। हरएक अपनी-अपनी जिम्मेदारीको समझ कर स्वतन्त्र रूपसे प्रतिज्ञा करे और यह समझकर करे कि दूसरे कुछ भी करें, पर मैं खुद तो मरते दम तक उसका पालन करूंगा।

इस आशयका भाषण करके मैं अपनी जगहपर बैठ गया। लोगोंने अतिशय शांतिसे उसका एक-एक शब्द सुना। दूसरे नेता भी बोले। सबने अपनी और श्रोताओंकी जिम्मेदारीका विवेचन किया। सभापति उठे। उन्होंने भी स्थितिको समझाया और अन्तमें सारी सभाने खड़े होकर हाथ उठाकर और ईश्वरको साक्षी करके प्रतिज्ञा की कि यह कानून पास हो गया तो हम उसके आगे सिर न झुकाएंगे। वह दृश्य मुझे तो कभी भूलने का नहीं। लोगोंके उत्साहकी सीमा न थी। अगले ही दिन इस नाटकशालामें कोई दुर्घटना हुई और सारी नाटकशाला जलकर खाक हो गई। तीसरे दिन लोग मेरे पास यह खबर लाये और कौमको यह कहकर मुबारकबाद देने लगे कि नाटकशालाका भस्म हो जाना शुभ शकुन है। जैसे नाटकशाला जल गई वैसे ही यह कानून भी एक दिन आगकी नजर हो जायगा। इन शकुनोंका मुझपर कभी असर न हुआ था। अतः मैंने इस घटनाको कोई महत्त्व न दिया। यहां उसका उल्लेख केवल यह बताने के लिए किया है कि लोगोंमें इस समय कितना शौर्य और श्रद्धा थी। इन दोनों बातोंके दूसरे बहुतसे चिह्न पाठक अगले प्रकरणोंमें देखेंगे।

यह विराट सभा करलेके बाद काम करनेवाले बैठ नहीं रहे। जगह-जगह सभाएं की गईं और सर्वत्र सर्वसम्मतिसे प्रतिज्ञाएं दुहराई गईं। 'इंडियन ओपीनियन' में अब यह खूनी कानून ही चर्चाका मुख्य विषय था। दूसरी ओर स्थानीय (प्रादेशिक) सरकारसे मिलनेके यत्न किये गए। उपनिवेश सचिव मि० डंकनके पास एक शिष्ट-मंडल भेजा गया। प्रतिज्ञाकी बात उन्हें सुनाई गई। इस शिष्ट-मंडलमें सेठ हाजी हबीब भी थे। उन्होंने कहा— 'कोई अफसर मेरी स्त्रीकी उंगलियोंका निशान

इसे आया तो मैं अपने गुस्सेको जरा भी काबूमें न रख सकूंगा। मैं उसको वहीं मार डालूंगा और फिर अपने-आपको खतम कर दूंगा!" मंत्री महाशय क्षण भर सेठ हाजी हबीबके मुंहकी ओर ताकते रह गए। फिर कहा—"यह कानून औरतों पर लागू हो या नहीं इस बारेमें सरकार विचार कर ही रही है। इतना इतमीनान तो मैं आप लोगोंको अभी दिला सकता हूं कि स्त्रियोंसे संबंध रखनेवाली धाराएं वापस ले ली जाएंगी। इस विषयमें आपकी भावनाको सरकार समझ सकती है और उसका लिहाज करना चाहती है। पर दूसरी दफाओंके बारेमें तो मुझे दुःखके साथ बता देना होगा कि सरकार दृढ़ है और रहेगी। जनरल बोथा चाहते हैं कि आप भली भांति सोच विचारकर इस कानूनको मंजूर कर लें। गोरोंकी हस्तीके लिए सरकार इसको जरूरी समझती है। कानूनके मूल उद्देश्यकी रक्षा करते हुए ब्योरेके बारेमें आपको कोई सुझाव पेश करना हो तो सरकार उसपर अवश्य ध्यान देगी। शिष्ट-मंडलको मेरी सलाह है कि अगर आप कानूनको स्वीकार करके तफसीलके बारेमें ही सुझाव पेश करें तो इसमें आपका हित है।" मंत्री महोदयके साथ जो दलीलें की गईं उन्हें मैं यहां नहीं देता, क्योंकि वे सभी दलीलें पीछे दी जा चुकी हैं। उनके सामने रखनेमें भेद केवल भाषाका था। दलीलें तो वही थीं। मंत्रीजीको यह सूचित करके कि आपकी सलाह होते हुए भी कोई इस कानूनको मंजूर नहीं कर सकता और स्त्रियोंको उससे मुक्त रखनेके इरादेके लिए सरकारको धन्यवाद देकर शिष्ट-मंडलने उनसे विदा ली। स्त्रियोंकी मुक्ति भारतीय जनताके आंदोलन की बदौलत हुई या सरकारने ही और विचार करके मि० कर्टिसकी शास्त्रीय पद्धतिको अस्वीकार करके कुछ लोक-व्यवहारका भी लिहाज किया, यह कहना कठिन है। सरकारी पक्षका कहना था कि सरकारने भारतीयोंके आंदोलनके कारण नहीं बल्कि स्वतंत्र रूपसे विचार करके ही यह निश्चय किया है। चाहे जो हो पर भारतीय जनताने तो कार्यकारण-रूपसे यह मान ही लिया

कि यह उसके आंदोलनका ही फल है और इससे सबमेंका उत्साह बढ़ा।

कौमके इस संकल्प या आंदोलनको कौनसा नाम दिया जाय यह हममेंसे कोई नहीं जानता था। उस वक्त मैं इस आंदोलनको 'पैसिव रेजिस्टेंस' कहता था। 'पैसिव रेजिस्टेंस'का अर्थ भी पूरी तरह नहीं समझता था। इतना ही समझा था कि किसी नई वस्तुका जन्म हुआ है। लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों 'पैसिव रेजिस्टेंस' नामसे उलझन पैदा होने लगी और इस महान् युद्धका अंग्रेजी नामसे ही परिचय देना मुझे लज्जाजनक जान पड़ा। फिर कौमकी जबानपर यह शब्द चढ़ भी नहीं सकता था। अतः 'इंडियन ओपीनियन'में सबसे अच्छा नाम ढूंढ़ निकालनेवालेके लिए छोटे-से इनामकी घोषणाकी। कुछ नाम मिले। इस वक्त तक इस युद्धके अर्थ की 'इंडियन ओपीनियन' में भली-भांति चर्चा हो चुकी थी। इससे प्रतियोगिता करनेवालोंके पास खोजके लिए काफी मसाला हो गया था। मगनलाल गांधीने भी इस प्रतियोगितामें भाग लिया। उन्होंने 'सदाग्रह' नाम भेजा। इस शब्दको पसंद करनेका कारण बताते हुए उन्होंने लिखा कि हिंदुस्तानी कौमका यह आंदोलन एक भारी आग्रह है और यह आग्रह 'सद्' अर्थात शुभ है। इसलिए यह नाम पसंद किया। उनकी दलील का सार मैंने थोड़ेमें दिया है। मुझे यह नाम रुचा। फिर भी जिस वस्तुका समावेश मैं करना चाहता था उसका समावेश उसमें नहीं होता था। इसलिए मैंने 'द' को 'त्' करके और उसमें 'य' जोड़कर 'सत्याग्रह' नाम बनाया। सत्यमें शांतिका अंतर्भाव माना और आग्रह किसी भी वस्तुका किया जाय तो उसमेंसे बल उत्पन्न होता है। अतः आग्रहमें बलका भी समावेश किया और भारतीय आंदोलनको 'सत्याग्रह' अर्थात् शांतिसे उत्पन्न होनेवाले बलके नामसे पुकारना शुरू किया। तभीसे इस संग्रामके लिए 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग बंद कर दिया गया यहांतक कि अंग्रेजी लेखोंमें भी 'पैसिव रेजिस्टेंस'का उपयोग त्याग दिया और उसके बदले 'सत्याग्रह' या कोई दूसरा

अंग्रेजी शब्द खिजना आरंभ किया। इस प्रकार जिस वस्तुका परिचय सत्याग्रहके नामसे दिया जाने लगा उस वस्तु और सत्याग्रह नामका जन्म हुआ। अपने इतिहासको आगे बढ़ानेके पहले 'पैसिव रेजिस्टेंस' और 'सत्याग्रह'का भेद हम समझ लें यह जरूरी है। इसलिए अगले प्रकरणमें हम यह भेद समझेंगे।

१३
'सत्याग्रह' बनाम 'पैसिव रेजिस्टेंस'

आंदोलन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों अंग्रेजोंको भी उसमें दिलचस्पी होती गई। मुझे यह बता देना चाहिए कि यद्यपि ट्रांसवालके अंग्रेजी अखबार आमतौरसे खूनी कानूनके पक्षमें ही लिखते थे और गोरोंके विरोधका समर्थन करते थे फिर भी कोई प्रसिद्ध भारतीय उनको कुछ लिख भेजता तो वे खुशीसे उसको छापते थे। भारतीय सरकारके पास जो अर्जियां भेजते उन्हें भी पूरा-पूरा या उनका सार प्रकाशित कर देते। बड़ी सभाओंमें कभी-कभी अपने रिपोर्टर भेजते और जब ऐसा न होता तो जो रिपोर्ट हम लिखकर भेज देते वह छोटी होती तो छाप देते।

यह भलमनसी भारतीय जनताके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई और आंदोलन बढ़नेपर कुछ प्रमुख यूरोपियन भी उसमें रस लेने लगे। इन मुखियोंमें जोहान्सबर्गके लखपती मि० हॉस्किन भी थे। इनमें वर्ण-द्वेष तो आदिसे ही नहीं था। पर आंदोलन आरंभ होनेके बाद हिंदुस्तानियोंके मसलेमें उन्हें गहरी दिलचस्पी हो गई। जर्मिस्टन नामका एक नगर है जो जोहान्सबर्ग का उपनगर-सा है। वहांके गोरोंने मेरा भाषण सुननेकी इच्छा प्रकट की। सभा हुई। मि० हॉस्किनने उसमें हमारे आंदोलन का और मेरा परिचय देते हुए कहा—'ट्रांसवालके भारतीयोंने न्याय प्राप्तिके लिए, दूसरे उपाय निष्फल हो जानेपर 'पैसिव रेजिस्टेंस'का अवलंबन किया है। उन्हें चुनावमें मत देनेका

अधिकार नहीं। उनकी संख्या थोड़ी है। वे निर्बल हैं उनके पास हथियार नहीं। इसलिए उन्होंने 'पैसिव रेजिस्टेंस को जो निर्बलों-का हथियार है ग्रहण किया है। यह सुनकर मैं चौंका और जो भाषण करने मैं गया था उसने दूसरा ही रूप ले लिया। मि हॉस्किनकी दलीलका खंडन करते हुए मैंने 'पैसिव रेजिस्टेंस' को 'सोल-फोर्स' यानी आत्मबल बताया। इस सभामें मैंने देखा कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दके उपयोगसे भयानक भ्रम होने की संभावना है। सभामें दी हुई दलील और 'पैसिव रेजिस्टेंस' और आत्मबलका भेद समझानेके लिए जो कुछ और कहनेकी आव-श्यकता है उसे मिलाकर मैं दोनोंके बीच रहनेवाले विरोधको समझानेकी कोशिश करूंगा।

'पैसिव रेजिस्टेंस' इन दो शब्दोंका उपयोग अंग्रेजी भाषामें पहले-पहल किसने किया और कब किया इसका पता तो मुझे नहीं है। पर ब्रिटिश जनतामें जब-जब किसी छोटे समुदायको कोई कानून पसंद नहीं आया तब-तब उसने उस कानूनके विरुद्ध विद्रोह करनेके बदले उस कानूनके सामने सिर न झुकानेका 'पैसिव' अर्थात् हलका कदम उठाया और उसके फलस्वरूप जो सजा मिले उसे भुगत लेना पसंद किया। कुछ बरस पहले जब ब्रिटिश पार्लमेंटने शिक्षाका कानून (एजूकेशन-ऐक्ट) पास किया तब डाक्टर क्लिफर्डके नेतृत्वमें 'नान-कनफार्मिस्ट' नामक ईसाई संप्रदायने 'पैसिव रेजिस्टेंस'का अवलंबन किया था। इंग्लैंडकी स्त्रियोंने मताधिकार पानेके लिए जो जबर्दस्त आंदोलन किया था उसे भी 'पैसिव रेजिस्टेंस'का नाम दिया गया था। इन दोनों आंदोलनोंको ध्यानमें रखकर ही मि हॉस्किनने कहा कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' निर्बल अथवा मताधिकार-रहितका हथियार है। डाक्टर क्लिफर्डके पक्षको मताधिकार प्राप्त था पर आम सभामें उसकी संख्या इतनी कम थी कि यह वोटके बलसे शिक्षा कानूनका पास होना नहीं रोक सका अर्थात् यह पक्ष संख्या-बलमें कमजोर ठहरा। अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए यह पक्ष शस्त्रका उपयोग कभी करता ही नहीं सो बात नहीं थी। पर

इस काममें उसका उपयोग करके वह सफल नहीं हो पाता। सुव्यवस्थित राज्यतंत्रमें हर वक्त यकायक बगावत करके ही हक हासिल करनेका तरीका चल ही नहीं सकता। फिर डाक्टर क्लिफर्डके पक्षके कुछ ईसाई सामान्य रीतिसे हथियारका इस्तेमाल हो सकता हो तो भी उसका विरोध करते। स्त्रियोंके आंदोलनमें मताधिकार तो था ही नहीं। संख्या और शरीर-बलमें भी वे कमजोर थीं। अतः यह उदाहरण भी मि० हॉस्किनकी दलीलका पोषण ही करता था। स्त्रियोंके आंदोलनमें हथियारके उपयोगका त्याग नहीं किया गया था। उनके एक पक्षने तो मकानोंमें आग लगाई और पुरुषोंपर हमला भी किया। किसीकी हत्या करनेका इरादा उन्होंने कभी किया हो यह तो मैं नहीं जानता पर मौका मिलनेपर लोगोंको मरम्मत करना और इस प्रकार कुछ-न-कुछ उपद्रव खड़ा करते रहना तो अवश्य उनका उद्देश्य था।

पर हिंदुस्तानियोंके आंदोलनमें हथियारके लिए तो कहीं और किसी भी स्थितिमें स्थान ही नहीं था और ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ेंगे पाठक देखेंगे कि बड़े-बड़े कष्ट पड़नेपर भी सत्याग्रहियोंने शरीरबलसे काम नहीं लिया और वह भी ऐसे मौकों-पर जब इस बलका सफलतापूर्वक उपयोग करनेमें वे समर्थ थे। फिर हिंदुस्तानियोंको मताधिकार नहीं था और वे कमजोर थे यह दोनों बातें सही हैं। फिर भी आंदोलनकी योजनाका इनके साथ कोई संबंध नहीं था। यह कहनेमें मेरा आशय यह नहीं है कि भारतीय जनताके पास मताधिकारका या हथियारका बल होता तो भी वह सत्याग्रह ही करती। मताधिकारका बल हो तो सत्याग्रहके लिए बहुत करके अवकाश ही नहीं होता। हथियार का बल हो तो विपक्षी सभय समझकर चलता है। अतः यह भी समझमें आनेवाली बात है कि हथियार-बलवालेके लिए सत्याग्रहके अवसर थोड़े ही आयेंगे। मेरे कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि भारतीय आन्दोलन की कल्पनामें शस्त्रबलकी शक्यता-अशक्यताका सवाल मेरे मन में उठा ही नहीं। सत्याग्रह केवल आत्माका बल है और जहां

और जितने अंशमें हथियार यानी शरीरबल या पशुबलका उपयोग होता हो या सोचा जाता हो वहां उतने अंशमें आत्मबलका कम उपयोग होता है। मैं मानता हू कि ये दोनों सूक्ष्म विरोधी शक्तियां हैं और आंदोलनके जन्मकालमें भी यह विचार मेरे मनमें पूरा-पूरा बैठ गया था।

पर यहां हमें इसका निर्णय नहीं करना है कि ये विचार योग्य हैं या अयोग्य।-हमें तो केवल 'पैसिव रेजिस्टेंस' और सत्याग्रहके बीचके अंतरको ही समझ लेना है। हमने यह देख लिया कि इन दोनों शक्तियोंके बीच मूलमें ही बहुत बड़ा अंतर है। इस भेदको समझे बिना अपने आपको 'पैसिव रेजिस्टर' या सत्याग्रही माननेवाले दोनोंको एक ही चीज मानलें तो यह दोनोंके साथ अन्याय है और इसके बुरे नतीजे भी होंगे। हम खुद दक्षिण अफ्रीकामें 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग किया करते थे। उससे मताधिकारके लिए लड़नेवाली स्त्रियोंकी वीरता और आत्मबलका हमपर आरोप करके हमें यश देनेवाले तो बहुत थोड़े होते पर हम भी उन स्त्रियोंकी तरह लोगोंके जान-मालको नुकसान पहुंचानेवाले मान लिये जाते और मि हॉस्किन जैसे उदार हृदयके सच्चे मित्रने भी हमें कमजोर मान लिया। विचारमें यह बल है कि मनुष्य अपने-आपको जैसा मानता है अंतमें वैसा ही बन जाता है। हम यह मानते रहें कि हम निर्बल हैं इसलिए निरुपाय होकर 'पैसिव रेजिस्टेंस'का उपयोग कर रहे हैं और दूसरोंसे भी यही मनवाया करें तो 'पैसिव रेजिस्टेंस' करते हुए हम कभी बलवान हो ही नहीं सकेंगे और मौका मिलते ही इस निर्बलोंके हथियारको फेंक देंगे। इसके विपरीत अगर हम सत्याग्रही हों और अपने-आपको सबल मानकर इस शक्तिको इस्तेमाल करें तो इसके दो स्पष्ट परिणाम होते हैं। बलके विचारका पोषण करते हुए हम दिन दिन अधिक बलवान होते जाते हैं और ज्यों-ज्यों हमारा बल बढ़ता जाता है त्यों-त्यों सत्याग्रहका तेज बढ़ता जाता है और इस शक्तिका उपयोग छोड़ देनेका मौका हम कभी ढूंढ़ते ही

नहीं । फिर पैसिव रेजिस्टेंस में जहां प्रेम भावका अवकाश नहीं वहां सत्याग्रहमें वैरभावके लिए अवकाश नहीं । इतना ही नहीं बल्कि वह अधर्म माना जायगा । पैसिव रेजिस्टेंस में मौका मिले तो शस्त्र-बलका उपयोग किया जा सकता है, सत्याग्रहमें शस्त्र-बलके उपयोगके लिए अच्छे-से-अच्छे अवसर उपस्थित हों तो भी वह सर्वथा त्याज्य है । पैसिव रेजिस्टेंस' अक्सर शस्त्र-बलके उपयोगकी तैयारी समझा जाता है । सत्याग्रहका उपयोग इस रूपमें किया ही नहीं जा सकता । 'पैसिव रेजिस्टेंस' हथियारकी ताकतके साथ-साथ चल सकता है । सत्याग्रह तो शस्त्र-बलका मिलाल विरोधी है । इसलिए दोनोंका मेल कभी मिल ही नहीं सकता यानी दोनोंका साथ निभ ही नहीं सकता । सत्याग्रहका उपयोग अपने प्रियजनोंके साथ भी हो सकता है और होता है 'पैसिव रेजिस्टेंस'का उपयोग वस्तुतः प्रियजनोंके साथ हो ही नहीं सकता अर्थात् प्यारोंको वैरी मानिये तभी उसके साथ 'पैसिव रेजिस्टेंस' किया जा सकता है । 'पैसिव रेजिस्टेंस'में विपक्षको दुख देने हैरान करनेकी कल्पना सदा विद्यमान रहती है और उसे दुख देते हुए खुद कष्ट सहना पड़े तो उसे सह लेनेको तैयार रहना होता है । पर सत्याग्रहमें विरोधीको दुख देनेका ख्याल तक नहीं होना चाहिए । उसमें तो स्वयं दुखको मोल लेकर—सहकर विरोधीको जीत लेनेकी ही बात सोची जानी चाहिए ।

इस प्रकार इन दो शक्तियोंके बीचके मुख्य भेद मैंने गिना दिये । मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' के जो गुण—या दोष कहिए—मैंने गिनाये हैं वे हर प्रकारके 'पैसिव रेजिस्टेंस'में पाये जाते हैं । पर यह दिखाया जा सकता है कि 'पैसिव रेजिस्टेंस'के बहुतेरे उदाहरणोंमें ये दोष देखनेमें आये हैं । मुझे यह भी पाठकोंको बता देना चाहिए कि ईसा मसीहको बहुत से ईसाई 'पैसिव रेजिस्टेंस'के आदि-नेताके रूपमें मानते हैं पर वहां तो 'पैसिव रेजिस्टेंस'का अर्थ शुद्ध सत्याग्रह ही मानना चाहिए । इस अर्थमें 'पैसिव रेजिस्टेंस'के अधिक उदाहरण इति

हासमें नहीं मिलते। टॉल्स्टॉयने रूसके दूखोबोर लोगोंकी मिसाल दी है। यह ऐसे ही 'पैसिव रेजिस्टेंस' यानी सत्याग्रहकी है। इस तरह ईसाके बाद हजारों ईसाइयोंने जो जुल्म बर्दाश्त किये हैं उस वक्त 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग होता ही नहीं था। अतः उनके समान निर्मल उदाहरण जो मिलते हैं उन्हें मैं तो सत्याग्रह ही कहूंगा और अगर आप उन्हें 'पैसिव रेजिस्टेंस' की मिसाल मानें तो पैसिव रेजिस्टेंस' और सत्याग्रहमें कोई भेद नहीं रहता। इस प्रकरणका उद्देश्य तो यह दिखाना है कि अंग्रेजीमें 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका व्यवहार आमतौरसे जिस अर्थमें होता है, सत्याग्रहकी कल्पना उससे बिल्कुल जुदी है।

जैसे 'पैसिव रेजिस्टेंस' के लक्षण गिनाते हुए, इस शक्तिका उपयोग करनेवालेके साथ किसी भी रीतिसे अन्याय न हो इस खयालसे मुझे ऊपर लिखी चेतावनी देनी पड़ी है, वैसे ही सत्याग्रहके गुण गिनाते हुए मुझे यह बता देना भी जरूरी है कि जो लोग अपने-आपको सत्याग्रही कहते हैं उनकी ओर से मैं उन सारे गुणोंका दावा नहीं करता। मैं इस बातसे अनभिज्ञ नहीं हूं कि सत्याग्रहके जो गुण मैंने ऊपर बताये हैं उनसे कितने ही सत्याग्रही निरे अनजान हैं। बहुतेरे यह मानते हैं कि सत्याग्रह निर्बलोंका हथियार है। कितनोंकि मुहसे मैंने यह भी सुना है कि सत्याग्रह शस्त्र-अस्त्रसे काम लेनेकी तैयारी है। पर मुझे फिरसे कह देना चाहिए कि सत्याग्रही जिन गुणोंसे युक्त देखनेमें आते हैं यह मैंने नहीं बताया है, बल्कि यह दिखानेका यत्न किया है कि सत्याग्रहकी कल्पनामें कौन-कौनसी बातें हैं और उसके अनुसार सत्याग्रहीको कैसा होना चाहिए। जिस शक्तिसे काम लेना ट्रांसवालमें भारतीयोंने आरम्भ किया पाठक उस शक्तिको स्पष्ट रूपसे समझ लें और वह शक्ति 'पैसिव रेजिस्टेंस' के नामसे परिचित शक्तिके साथ मिला न दी जाय इस विचारसे इस शक्तिके अर्थका सूचक शब्द ढूंढना पड़ा और उस वक्त उसमें भिन्न-भिन्न वस्तुओंका समावेश माना गया था यही बता देना थोड़ेमें इस प्रकरणके लिखनेका उद्देश्य है।

१४

विलायतको शिष्ट-मंडल

ट्रांसवालमें खूनी कानूनके खिलाफ अर्जियां आदि भेजनेके जो-जो काम करने थे सब कर दिये गए। धारा-सभाने स्त्रियोंसे संबंध रखनेवाली दफा निकाल दी। बाकीका बिल लगभग उसी रूपमें पास हुआ जिस रूपमें प्रकाशित हुआ था। कौममें इस वक्त भरपूर हिम्मत थी और उतना ही एका और एकमतता थी। अतः कोई निराश नहीं हुआ। फिर भी कोई वैध उपाय उठा न रखनेका निश्चय भी कायम रहा। ट्रांसवाल इस वक्त 'क्राउन कॉलोनी' था। क्राउन कॉलोनी का शब्दार्थ है बादशाही उपनिवेश अर्थात् ऐसा उपनिवेश जिसके कानून, शासन-प्रबंध आदिके लिए बड़ी सरकार जवाबदेह समझी जाती है। अतः जो कानून शाही उपनिवेशकी धारा-सभा पास करे उनपर बादशाहकी मंजूरी महज रस्म और सौजन्यकी रक्षाके लिए नहीं ली जाती बल्कि जो कानून ब्रिटिश-विधानके सिद्धांतके विरुद्ध हो उस कानूनको बादशाह अपने मंत्रिमंडलकी सलाहसे स्वीकृति देनेसे इंकार कर सकता है, और ऐसा करनेके मौके भी काफी आते हैं। इसके विपरीत उत्तरदायी शासन-व्यवस्था (रेस्पांसिबल गवर्नमेंट) वाले उपनिवेशकी धारा-सभा जो कानून बनाये उसके लिए बादशाहकी मंजूरी मुख्यतः सौजन्यकी खातिर ही ली जाती है।

शिष्ट-मंडल इंग्लैंड जाय तो कौमको अपनी जिम्मेदारी और अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। इसे बतानेका भार मेरे ही सिर रहा। इसलिए मैंने अपने मंडलके सामने तीन सुझाव रखे। एक तो यह कि यद्यपि यहूदी नाटकशाला (इंपायर थियेटर) वाली सभामें हम प्रतिज्ञाएं कर चुके हैं फिर भी प्रमुख भारतीयोंसे फिरसे व्यक्तिगत प्रतिज्ञा करा लेनी चाहिए जिससे किसीके मनमें कोई शंका या कमजोरी आ गई हो तो मालूम हो जाय। यह सुझाव पेश करनेमें मेरी एक दलील यह थी कि

शिष्ट-मंडल सत्याग्रहके बलसे जाय तो निर्भय होकर वाम और कौमका निश्चय विलायतमें उपनिवेश-सचिव और भारत-सचिव के सामने निर्भयताके साथ रख सके। दूसरा यह कि शिष्ट मंडलके खर्चका पूरा बदोबस्त पहलेसे ही हो जाना चाहिए। तीसरा यह कि शिष्ट-मंडलमें कम-से-कम आदमी जाय। अक्सर लोगोंका यह खयाल देखनेमें आता है कि ज्यादा आदमी जाय तो ज्यादा काम हो सकता है। इसीसे यह सूचना की गई। शिष्ट-मंडलमें जानेवाले अपने सम्मानके लिए नहीं बल्कि शुद्ध सेवाके उद्देश्यसे जायं इस विचारको सामने लाने और खर्च बचानेकी व्यावहारिक दृष्टि इस सुझावमें थी। तीनों सुझाव मंजूर हुए। प्रतिज्ञापत्रपर लोगोंसे हस्ताक्षर कराये गए। बहुतों ने हस्ताक्षर किये। पर मैंने देखा कि जो लोग सभामें प्रतिज्ञा कर चुके थे उनमें भी कुछ ऐसे थे जो दस्तखत करते हिचकते थे। एक बार कोई प्रतिज्ञा कर चुकनेके बाद उसे फिर पचास बार दुहराना पड़े तो इसमें हिचक होनी ही नहीं चाहिए। फिर भी किसे यह अनुभव नहीं हुआ है कि लोगोंने जो प्रतिज्ञा सोचसमझ कर की हो उसमें भी पीछे ढीले पड़ जाते हैं या मुंहसे की हुई प्रतिज्ञाको लिखते हुए घबराते हैं। पैसा भी हमारे अंदाज के अनुसार इकट्ठा हो गया। सबसे अधिक कठिनाई प्रतिनिधियोंके चुनावमें पड़ी। मेरा नाम तो था ही। पर मेरे साथ कौन जाय? इस विचारमें कमेटीने बहुत वक्त गुजारा कितनी ही रातें बीत गई और सभा-समितियोंमें जो बुरी आदतें देखनेमें आती हैं उनका अनुभव पूरे तौरपर हुआ। कोई कहता कि अकेले गांधी ही जायं इससे सबका संतोष हो जायगा। पर मैंने ऐसा करनेसे साफ इकार कर दिया। मोटे हिसाबसे यह कह सकते हैं कि दक्षिण अफ्रीकामें हिंदू-मुसलमानका सवाल नहीं था पूर यह दावा नहीं किया जा सकता कि दोनों कौमोंके बीच जरा भी अंतर नहीं था। और इस भेदने कभी जहरीली शक्ल नहीं अख्तियार की तो इसका कारण वहांकी विचित्र परिस्थिति किसी हदतक भले ही हो पर इसका और पक्का कारण तो यही है

भी खूब मदद की। इनकी और दादाभाईकी भी सलाह थी कि लार्ड एम्पिथलके पास जो शिष्ट-मंडल जाय उसका नेता कोई तटस्थ और प्रसिद्ध एंग्लो इंडियन बनाया जा सके तो उत्तम है। सर मंचेरजीने कुछ नाम भी सुझाए। उनमें सर लेपल ग्रिफिनका भी नाम था। पाठकोंको जान लेना चाहिए कि सर विलियम विल्सन हंटर इस वक्त जीवित नहीं थे। वह होते तो दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिसे उनका गहरा परिचय होनेके कारण वही शिष्ट-मंडलके नेता हुए होते या उन्हींने उमराव (लार्ड) वर्गके किसी बड़े नेताको इस कामके लिए ढूंढ़ दिया होता।

हम सर लेपल ग्रिफिनसे मिले। उनकी राजनीति तो हिंदुस्तानमें चलते हुए सार्वजनिक आंदोलनोंकी विरोधी ही थी पर इस मसलेमें उनको गहरी दिलचस्पी हो गई और सौजन्यकेलिए नहीं बल्कि न्यायकी दृष्टिसे उन्होंने हमारा अगुआ बनना मंजूर कर लिया। उन्होंने सारे कागज-पत्र पढ़ डाले और हमारे मसलेसे पूरी जानकारी करली। हम दूसरे एंग्लो इंडियन सज्जनोंसे भी मिले। आम सभाके बहुतसे सदस्योंसे और जिनका कुछ भी प्रभाव था ऐसे जितने आदमियों तक हमारी पहुंच हो सकती थी उन सबसे मिले। लार्ड एम्पिथलके पास शिष्ट-मंडल गया। उन्होंने सारी बातें ध्यानपूर्वक सुनलीं। अपनी हमदर्दी जाहिर की और साथ-ही-साथ अपनी कठिनाइयां भी बताईं। फिर भी जितना हो सके उतना करनेका वचन दिया। यही शिष्ट-मंडल लार्ड मार्लेसे भी मिला। उन्होंने भी सहानुभूति प्रकट की। उनके उत्तरका सार पीछे दे चुका हूं। सर विलियम वेडरबर्नकी कोशिशसे आम सभाके हिंदुस्तानके राजकाजसे लगाव रखनेवाले सदस्योंकी सभा उसी भवनके एक दीवानखानेमें हुई और हमने उसके सामने भी अपना पक्ष जितना हमसे हो सका रक्खा। इस वक्त आइरिश पक्षके नेता मि० रेडमंड थे इसलिए हम उनसे भी खास तौरसे मिलने गये। खुलासा यह कि आम सभाके सब पक्षोंके जिन-जिन सदस्योंसे हम मिल

सकते थे उन सबसे मिले । इंगलैंडमें हमें कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीकी भरपूर मदद तो थी ही । पर यहांके रीति-रिवाजके मुताबिक उसमें तो पक्ष-विशेष और मत-विशेषके आदमी ही आ सकते थे । ऐसे बहुतेरे थे जो उक्त कमेटीमें तो नहीं आते थे पर हमारे काममें पूरी मदद देते थे । हमने सोचा कि इन सबको इकट्ठा करके हम इस काममें लगा सकें तो अधिक अच्छा काम हो सकता है और इस विचारसे एक स्थायी कमेटी बनानेका निश्चय किया । सब पक्षोंके लोगोंको यह विचार पसंद आया ।

हरएक संस्थाका आधार मुख्यतः उसका मंत्री होता है । मंत्री ऐसा होना चाहिए जिसे संस्थाके उद्देश्यपर पूरा-पूरा विश्वास हो, साथ-ही-साथ उसमें इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए अपना अधिकांश समय देनेकी शक्ति और काम करनेकी योग्यता भी हो । मि० एल० डब्ल्यू० रिचमें ये सभी गुण थे । वह दक्षिण अफीकाके ही थे । वहां मेरे दफ्तरमें गुमाश्तेका काम करते थे और इन दिनों लंदनमें बैरिस्टरी पढ़ रहे थे । वह इंगलैंडमें मौजूद थे और यह काम करनेके इच्छुक भी थे । इससे कमेटी (साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमेटी) बनानेकी हिम्मत हम कर सके।

विलायतमें बल्कि सारे पश्चिममें मेरी दृष्टिसे एक असभ्य रिवाज यह है कि अच्छे-से-अच्छे काम का मुहूर्त भोजनके समय रखा जाता है । ब्रिटिश प्रधान मंत्री हर साल ९ नवंबरको लंदन के लार्ड मेयरके सरकारी वासस्थान मैंशन हाउसमें जो भाषण दिया करते हैं उसमें वह अगले बरसके अपने कार्यक्रमका संकेत करते हैं और भविष्यके विषयमें अपना निजका अनुमान बताते हैं और इस कारण यह भाषण सारी दुनियाका ध्यान अपनी ओर खींचता है । लदनके लार्ड मेयरकी ओरसे मंत्रिमंडलके सदस्यों आदिको उसमें भोजनका निमंत्रण दिया जाता है और वहां भी भोजनके बाद शराबकी बोतलें खुलती हैं और मजबान तथा मेहमानकी स्वास्थ्य-कामनाके लिए सुरापान किया जाता है । जब इस शुभ या अशुभ (सब अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार विशेषण

चुनाव) कार्यका और पक्ष रहा हो उस वक्त भाषण भी दिये जाते हैं। इसमें बादशाह के मंत्रिमंडलका 'टोस्ट' (स्वास्थ्य-कामना) भी शामिल होता है। इसी (टोस्ट) के जवाबमें प्रधान मंत्रीका उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण भाषण होता है। और जैसे सार्वजनिक रूप से वैसे ही निजी तौरपर किसीके साथ खास मशविरा या बात-चीत करनी हो तो उसे भोजनका न्यौता देनेका रिवाज है। कभी खाते-खाते तो कभी खाना खतम होनेपर वह विषय छिड़ता है। हमें भी एक नहीं अनेक बार इस रिवाजके सामने नत मस्तक होना पड़ा था। पर कोई पाठक इसका अर्थ यह न करे कि हममेंसे किसीने कभी अभक्ष्यका भक्षण या अपेयका पान किया। इस प्रकार हमने एक दिन दोपहरके भोजनके निमंत्रण भेजे और उसमें अपने सभी मुख्य सहायकोंको आमंत्रित किया। लगभग सौ निमंत्रण भेजे गए थे। इस भोजका प्रयोजन सहायकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और उनसे विदा लेना और साथ ही स्थायी समितिकी स्थापना भी था। उसमें भी प्रथाके अनुसार भोजनके उपरांत भाषण हुए और कमेटीकी स्थापना भी हुई। इस आयोजनसे हमारे आंदोलनकी और अधिक प्रसिद्धि हुई।

इस प्रकार कोई ६ हफ्ते बिताकर हम दक्षिण अफ्रीकाको वापस हुए। मदीरा पहुंचनेपर हमें मि० रिचका तार मिला कि लार्ड एल्गिनने घोषणा की है कि मंत्रिमंडलने बादशाहसे ट्रांसवालके एशियाटिक एक्टको नामंजूर करनेकी सिफारिश की है। अब हमारे हर्षका क्या पूछना ! मदीरासे केप टाउन पहुंचनेमें १४ १५ दिन लगते हैं। यह वक्त तो हमने बड़े चैनसे गुजारा और दूसरे कष्टोंके निवारणकेलिए शेखचिल्लीकेसे हवाई महल बनाते रहे। पर दैवगति विचित्र है। हमारे ये महल कैसे धरा शायी हो गए, इसे हम अगले प्रकरणमें देखेंगे।

पर इस प्रकरणको पूरा करनेके पहले एक-दो पवित्र संस्मरणोंको दिये बिना नहीं रहा जा सकता। मुझे यह तो कह ही देना होगा कि विलायतमें हमने एक क्षण भी बेकार नहीं जाने दिया। बहुतसे सरक्यूलर (गश्ती चिट्ठियां) आदि भेजनेका

सारा काम एक आदमीके किये नहीं हो सकता था। उसमें मददकी बड़ी जरूरत थी। पैसा खर्च करनेसे बहुत-कुछ मदद मिल सकती है पर अपने ४० सालके अनुभवसे कह सकता हूं कि यह मदद शुद्ध स्वयंसेवककी सहायता जैसी फलदायिनी नहीं होती। सौभाग्यवश ऐसी मदद हमें मिल गई। बहुतसे भारतीय युवक जो वहां पढ़ते थे हमारे आसपास बने रहते और उनमेंसे अनेक सुबह-शाम इनाम या नामकी आशा रखे बिना हमारी मदद करते। पते लिखना नकलें करना टिकट चिपकाना डाक-घर जाकर चिट्ठियां आदि छोड़ना—किसी भी कामको उनमेंसे किसीने अपनी शानके खिलाफ कहकर करनेसे इंकार किया हो यह मुझे याद नहीं आता। पर इन सबको एक ओर रखदे ऐसी मदद देनेवाला दक्षिण अफ्रीकामें मिला हुआ एक अंग्रेज मित्र था। वह हिंदुस्तानमें रह चुका था। उसका नाम था सिमंड्स। अंग्रेजीमें कहावत है कि देवता जिसे प्यार करते हैं उसे जल्दी अपने पास ले जाते हैं। इस 'पर-दुःख-भंजन' मनुजको भी यमदूत भरी जवानीमें उठा ले गए। 'परदुःख-भंजन' विशेषणके व्यवहारका विशेष कारण है। यह भला भाई जब बंबईमें था तब यानी १८९७ में प्लेग-पीड़ित भारतीयोंके बीच निर्भय होकर विचरता और उनकी मदद करता था। छूतके रोगियोंकी सेवा करते हुए मौतसे तनिक भी नहीं डरना तो उसके खूनमें भर गया था। जाति या रंगका द्वेष उसे छू तक नहीं गया था। उसका स्वभाव अतिशय स्वतंत्र था। उसका एक सिद्धांत यह था कि सत्य सदा अल्प संख्यक पक्ष यानी माइनारिटीके साथ ही रहता है। इसी सिद्धांतसे प्रेरित होकर वह जोहान्सबर्गमें मेरी ओर आकृष्ट हुआ और अनेक बार विनोदमें मुझे सुना देता था कि आपका पक्ष बड़ा हो जाय तो आप पक्का जानिए कि मैं हरगिज आपका साथ नहीं दूंगा क्योंकि मैं मानता हूं कि 'मेजारिटी' (बड़े पक्ष) के हाथमें सत्य भी असत्यका रूप ले लेता है। उसका अध्ययन विस्तृत था। जोहान्सबर्गके एक करोड़पति सर जार्ज फेररका

यह विश्वास भाजन प्राइवेट सेक्रेटरी था। शार्ट हैंड (लघुलेखन) लिखनेमें तो निष्णात था। जब हम विलायत पहुंचे तो वह अनायास हमसे आ मिला। मुझे उसका पता-ठिकाना भी मालूम नहीं था। पर हम तो सार्वजनिक लोग थे इसलिए अखबारकी चर्चाके विषय ठहरे। इससे इस भले अंग्रेजने हमें ढूंढ निकाला और कहा— 'मुझसे जो कुछ सहायता हो सके वह करनेको तैयार हूं। मुझे चपरासी का काम सौंपिये तो वह भी करूंगा और शार्ट हैंडकी आवश्यकता हो तो आप जानते ही हैं कि मुझसा कुशल स्टेनोग्राफर आपको दूसरा नहीं मिलनेका।" हमें तो दोनों सहायताएं दरकार थीं और यह कहनेमें मैं तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं कि यह अंग्रेज रातदिन बिना पैसा लिये हमारी बेगार करता था। रातके बारह-बारह और एक-एक बजेतक वह सदा टाइपराइटर पर ही बैठा होता। संदेश ले जाना डाकखाने जाना ये काम भी सिमंड्स करता और हंसते चेहरेसे। मुझे मालूम था कि उसकी माहवारी आमदनी लगभग ४५ पौंडके थी पर यह सारी आय मित्रों आदिकी मदद करनेमें खर्च कर डालता। उसकी उम्र उस वक्त कोई तीस बरसकी रही होगी। पर वह अविवाहित था और योंही जिंदगी बिता देनेका विचार था। मैंने उससे कुछ स्वीकार करनेके लिए बहुत आग्रह किया पर उसने ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया। उसका उत्तर था— मैं इस सेवाके बदलेमें कुछ लू तो मैं धर्म भ्रष्ट हो जाऊंगा। मुझे याद है कि आखिरी रातको सामान वगैरह बांधते हमें तीन बज गए। तबतक वह भी जागता रहा। अगले दिन हमें जहाजपर सवार कराके ही वह हमसे जुदा हुआ। यह वियोग हमारे लिए अति दुःखद था। मुझे अनेक अवसरों पर इसका अनुभव हो चुका है कि परोपकार कुछ गेहुएं रंगवालों की बपौती नहीं है।

सार्वजनिक काम करनेवाले युवकोंकी जानकारीके लिए मैं यह भी बता दूं कि डिप्युटेशनके खर्चका हिसाब रखनेका काम हमने इतनी सावधानीसे किया कि फुटकर सोडावाटर

पीना हो तो उसकी भी रसीद मिलती वह भी उसने पैसेके खर्चके सबूतके तौरपर रख ली जाती। तारोंकी रसीदें भी इसी तरह रखी जातीं। ब्योरेवार हिसाबमें फुटकर खर्चके नामसे एक भी रकम लिखी जानेकी बात मुझे बात याद नहीं है। यह मद तो हमारे हिसाबमें थी ही नहीं। 'याद नहीं' शब्द बढ़ानेका कारण यही है कि कभी शामको हिसाब लिखते वक्त दो चार पेनी या दो-चार शिलिंगका खर्च याद न रहा हो और फुटकरके नामसे लिख दिया गया हो तो नहीं कह सकता। इसीलिए अपवाद रूपमें 'याद नहीं' शब्दका व्यवहार किया है।

इस जीवनमें एक बात मुझे साफ तौरपर दिखाई दी है। वह यह कि जबसे हम होश सम्हालते हैं तभीसे ट्रस्टी या जवाबदेह बन जाते हैं। जबतक मां-बापके साथ होते हैं तबतक जो कोई काम या जो पैसा वे सौंपते हैं उसका हिसाब हमें उनको देना ही चाहिए। हमारा विश्वास करके वे हमसे हिसाब न मांगें तो इससे हम अपनी जवाबदेहीसे मुक्त नहीं होते। जब हम स्वतंत्र होते हैं तब स्त्री-पुत्र आदिके प्रति जवाबदेह हो जाते हैं। अपनी कमाईके मालिक अकेले हम ही नहीं हैं। वे भी उसमें हिस्सेदार हैं। उनकी खातिर हमें पाई-पाईका हिसाब रखना चाहिए। फिर जब हम सार्वजनिक जीवनमें आते हैं तब तो कहना ही क्या! मैंने देखा है कि स्वयंसेवकोंमें यह मानमेकी आदत पड़ जाती है कि मानो अपने हाथमें रहनेवाले काम या पैसेका हिसाब देना उनका फर्ज नहीं है क्योंकि वे अविश्वासके पात्र तो हो ही नहीं सकते। यह घोर अज्ञान ही माना जा सकता है। हिसाब रखनेका विश्वास या अविश्वासके साथ कुछ भी संबंध नहीं। हिसाब रखना ही स्वतंत्र धर्म है। उसके बिना हमें अपने कामकी खुद ही मैला मानना होगा। और जिस संस्थामें हम स्वयंसेवक हों उसका नेता अगर झूठी मनमनसीके डरसे हमसे हिसाब न मांगे तो वह भी दोषभागी है। काम और पैसेका हिसाब रखना जितना तनख्वाह देनेवालेका फर्ज है, स्वयंसेवकका उससे दूना फर्ज है। इसलिए कि उसने अपना

कामको ही अपना वेतन मान लिया है। यह बात अति महत्वकी है और मैं मानता हूं कि आमतौरसे बहुतेरी संस्थाओंमें इसपर जितना चाहिए उतना ध्यान नहीं दिया जाता। इसीसे उसके लिए मैंने इस प्रकरणमें इतना स्थान देनेका साहस किया है।

१५

वक्र राजनीति अथवा क्षणिक हर्ष

केप टाउनमें उतरते ही और खास तौरसे जोहान्सबर्ग पहुंचनेपर मैंने देखा कि मदीरामें मिले हुए तारकी जो कीमत हमने आंकी थी वह कीमत उसकी नहीं थी। इसमें भेजनेवाले मि॰ रिचका दोष नहीं था। उन्होंने कानूनके नामंजूर होनेके बारेमें जैसा सुना वैसा तार कर दिया। हम ऊपर देख चुके हैं कि इस वक्त यानी १९ ६में ट्रांसवाल शाही-उपनिवेश था। ऐसे उपनिवेशोंके राजदूत अपने उपनिवेशसे सबद्ध विषयोंमें उपनिवेश-सचिवको आवश्यक सलाह देनेकेलिए इंगलैंड (लंदन) में रहा करते हैं। ट्रांसवालके दूत दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वकील सर रिचर्ड सॉलोमन थे। खूनी कानूनको नामंजूर करनेका निश्चय लार्ड एल्गिनने सर रिचर्डके साथ मशविरा करके किया था। १९ ७की पहली जनवरीसे ट्रांसवालको उत्तरदायी शासन का अधिकार मिलनेवाला था। अत: लार्ड एल्गिनने सर रिचर्डको यह आश्वासन दिया—'यही कानून ट्रांसवालको उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद वहांकी धारा-सभा पास करे तो बड़ी सरकार उसे नामंजूर नहीं करेगी। पर जबतक ट्रांसवाल शाही-उपनिवेश माना जाता है तबतक ऐसे भेदभाववाले कानूनके लिए बड़ी सरकार सीधी जिम्मेदार समझी जायगी और चूंकि साम्राज्य सरकारके विधानमें भेदभाववाली राजनीतिको स्थान नहीं दिया जाता इसलिए इस सिद्धांतका सम्मान करनेके लिए फिलहाल तो मुझे बादशाहको यह कानून नामंजूर करनेकी

समाह देनी ही होगी।

इस प्रकार महज नामके लिए कानून रद हो जाय और साथ ही ट्रांसवालके गोरोंका काम भी बन जाय तो सर रिचर्डको इसमें कोई एतराज न था। होता क्यों? इस राजनीतिको मैंने वक्र विशेषण लगाया है पर मैं मानता हू कि इससे अधिक तीखे विशेषणका व्यवहार किया जाय तो भी इस नीतिका संचालन करनेवालोंके साथ वस्तुत: कोई अन्याय नहीं होगा। शाही उपनिवेशके कानूनोंके लिए बड़ी सरकार प्रत्यक्षत: जिम्मेवार होती है। उसके विधानमें रंगभेद और जातिभेदके लिए स्थान नहीं। ये दोनों बातें बहुत सुंदर हैं। यह बात भी समझमें आ सकती है कि बड़ी सरकार उत्तरदायी शासन प्राप्त उपनिवेशोंके बनाये हुए कानूनोंको एकबारगी रद नहीं कर सकती पर उपनिवेशके राजदूतोंके साथ गुप्त मंत्रणा करना उन्हें पहलेसे साम्राज्यके विधानके विरुद्ध कानूनको नामंजूर न करनेका वचन दे देना इसमें क्या उन लोगोंके साथ दगा और अन्याय नहीं है जिनके हक छीने जा रहे हों? सच पूछिये तो लार्ड एल्गिनने पहलेसे वचन देकर ट्रांसवालके गोरोंको भारतीयोंके विरुद्ध अपना आंदोलन जारी रखनेका बढ़ावा दिया। उन्हें ऐसा करना था तो भारतीय प्रतिनिधियोंको इसे साफ बता देना था। सच तो यह है कि उत्तरदायी शासन भोगनेवाले उपनिवेशोंके कानूनोंके लिए भी बड़ी सरकार जिम्मेवार होती ही है। ब्रिटिश विधानके मूल सिद्धांत स्वराज्य-भागी उपनिवेशोंको भी मानने ही होते हैं। जैसे कोई भी उत्तरदायित्व प्राप्त उपनिवेश कानूनन् जायज गुलामीकी प्रथाका पुनरुद्धार नहीं कर सकता। लार्ड एल्गिनने अगर खूनी कानूनको अनुचित मानकर नामंजूर किया हो—और ऐसा मानकर ही वह नामंजूर किया जा सकता था—तो उनका स्पष्ट कर्तव्य था कि सर रिचर्ड सॉलोमनको अकेलेमें बुलाकर कह देते कि उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद ट्रांसवालकी सरकार ऐसा अन्यायकारी कानून न बनाये और उसका इरादा उसे बनानेका ही हो तो उसे जिम्मेदारी सौंपी

जाय या नहीं इसपर बड़ी सरकारको फिरसे विचार करना होगा। या हिंदुस्तानियोंके हकोंकी पूरी रक्षाकी शर्तपर ही ट्रांसवालको जवाबदेह हुकूमत सौंपनी चाहिए थी। यह करनेके बदले लार्ड एल्गिनने ऊपरसे तो हिंदुस्तानियोंकी हिमायत करनेका ढोंग किया पर भीतरसे उसी वक्त ट्रांसवालकी सरकारकी सच्ची हिमायत की और जिस कानूनको खुद रद किया उसीको फिरसे पास करनेका बढ़ावा दिया। ऐसी वक्र राजनीतिका यह एक ही या पहला उदाहरण नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्यके इतिहासका साधारण विद्यार्थी भी ऐसी दूसरी मिसालें याद कर सकता है।

इसलिए जोहान्सबर्गमें हमने एक ही बात सुनी कि लार्ड एल्गिन और बड़ी सरकारने हमें धोखा दिया। हमें तो मदीरा में जितनी खुशी हुई थी दक्षिण अफ्रीकामें उतनी ही नाखुशी हुई। फिर भी इस कुटिलताका तात्कालिक परिणाम तो यही हुआ कि कौममें और जोश फैला और सब कहने लगे—अब हमें चिंता क्या है? हमें क्या बड़ी सरकारकी सहायताके भरोसे लड़ना है? हमें तो अपने बलपर और जिसका नाम लेकर हमने प्रतिज्ञा की है उस भगवानके भरोसे लड़ना है। और हम सच्चे रहे तो टेढ़ी राजनीति भी सीधी हो ही जायगी।

ट्रांसवालमें उत्तरदायी शासनकी स्थापना हुई। नई उत्तरदायी धारा-सभामें जो पहला कानून पास किया वह था बजट और दूसरा कानून यही खूनी कानून (एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट) था। यह कानून ज्यों-का-त्यों उसी रूपमें पास हुआ जिस रूपमें पहले बना और पास हुआ था। उसकी एक धारामें तारीख दी हुई थी। उस बवतमा तो अधिक दिन बीत जानेसे जरूरी ही हो गया था। अतः यह तारीख उसमें बदली गई। २१ मार्च १९०७की एक ही बैठक में इस कानूनकी सारी विधियां पूरी करके यह पास कर दिया गया। इस शाब्दिक परिवर्तनका कानूनकी सख्तीके साथ कोई संबंध नहीं था। यह तो जैसी थी वैसी ही बनी रही। अतः यह

कानून रद हुआ था इस बातको लोग सपनेकी तरह भूल गए। भारतीय जनताने अपनी रीतिके अनुसार आवेदन-पत्र आदि तो भेजे ही पर इस तूतीकी आवाज उस नक्कारखानेमें कौन सुनता? इस कानूनके १ जुलाई १९०७से जारी होनेकी घोषणा की गई थी और भारतीयोंको ३१ जुलाईके पहले परवानेके लिए दर्खास्त देनेका हुक्म दिया गया था। इतनी मुद्दत रखनेका कारण हिंदुस्तानियोंपर कोई मेहरबानी करना नहीं था। पद्धतिके अनुसार इस कानूनको बड़ी सरकारकी मंजूरी मिलनी चाहिए थी। इसमें कुछ वक्त लगना ही था। फिर उसके परिशिष्टके अनुसार फार्म परवाने वगैरह तैयार कराने और भिन्न-भिन्न स्थानोंमें परवानेके दफ्तर (परमिट आफिस) खोलनेमें भी कुछ वक्त लगता। इससे यह पांच-छः महीनेकी मुद्दत ट्रांसवाल सरकारने अपने ही सुभीतेके लिए दी थी।

१६

अहमद मुहम्मद काछलिया

शिष्ट-मंडल जब विलायत जा रहा था तब एक अंग्रेज मुसाफिरने जो दक्षिण अफ्रीकामें रह चुका था ट्रांसवालके कानून और हमारे विलायत जानेका कारण भी हमारे मुंहसे सुना। वह तुरत बोल उठा— 'आप कुत्तेका पट्टा (डॉग्स कॉलर) पहननेसे इनकार करना चाहते हैं।' इस अंग्रेजने ट्रांसवालके परवानेको यह नाम दिया। उसने यह बात पट्टेपर अपना हर्ष और भारतीयोंके प्रति तिरस्कार प्रकट करने या अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए कही थी इसे मैं उस वक्त नहीं समझ सका था और आज इस प्रकरणको लिखते समय भी इस बारेमें कोई निश्चय नहीं कर सकता। किसी भी मनुष्यके कथनका ऐसा अर्थ हमें नहीं करना चाहिए जिससे उसके साथ अन्याय हो।

इस सुनीतिका अनुसरण करते हुए मैं यह मान लेता हूं कि इस अंग्रेजने अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए ऊपरके जैसे भावनाकी तसवीर खींच देनेवाले शब्द कहे। एक ओर ट्रांसवाल सरकार हमें यह पट्टा पहनानेकी तैयारी कर रही थी दूसरी ओर भारतीय जनता इसकी तैयारी कर रही थी कि यह पट्टा न पहननेके अपने निश्चयपर वह किस तरह कायम रहे और ट्रांसवालकी सरकारकी कुनीतिके विरोधमें किस तरह युद्ध किया जाय। विलायत और हिंदुस्तानके अपने सहायकोंको पत्र लिखने और वहां परिस्थितिसे उनको परिचित कराते रहनेका काम तो चल ही रहा था पर सत्याग्रहकी लड़ाई बाह्योपचारपर बहुत कम अवलंबित होती है। भीतरी उपचार ही सत्याग्रहमें असली उपचार होता है। अतः कौमके सभी अंग ताजे और चुस्त रहें, इसके यत्नमें ही नेताओंका समय जा रहा था।

कौमके सामने एक महत्त्वका प्रश्न उपस्थित हुआ सत्याग्रहका काम किस मंडलकी मारफत लिया जाय? ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनमें तो बहुतसे सभासद थे। उसकी स्थापनाके समय सत्याग्रहका जन्म भी नहीं हुआ था। उस संस्थाको अनेक कानूनोंका विरोध करना पड़ा था और आज भी करना था। कानूनोंका विरोध करनेके अतिरिक्त उसे दूसरे राजनैतिक सामाजिक आदि काम भी करने होते थे। फिर इस संस्थाके सभी सदस्यों ने प्रतिज्ञा की थी यह भी नहीं कहा जा सकता था। इसके साथ-साथ सत्याग्रहमें सम्मिलित होनेसे उस संस्थाको जो बाहरकी जोखिमें उठानी पड़तीं उनका विचार करना भी जरूरी था। सत्याग्रहकी लड़ाईको ट्रांसवालकी सरकार राजद्रोह मान ले और ऐसा मानकर यह युद्ध चलानेवाली संस्थाओंको गैरकानूनी घोषित कर दे तो? इस संस्थाके जो सदस्य सत्याग्रही नहीं होंगे उनकी स्थिति क्या होगी? सत्याग्रहके पूर्व जिसने पैसा दिया हो उसके पैसे का क्या होगा? ये बातें भी सोचनेकी थीं। अंतमें सत्याग्रहियोंका यह दृढ़ निश्चय था कि जो लोग अश्रद्धा अशक्ति या दूसरे किसी भी कारणसे

सत्याग्रहमें शामिल न हों उनके प्रति द्वेष न रखा जाय इतना ही नहीं उनके साथ बर्ताव करनेमें आजके स्नेह भावमें कोई अंतर न आने दिया जाय और सत्याग्रहको छोड़कर और आंदोलनोंमें उनके साथ-साथ काम किया जाय।

इन विचारोंसे अंतमें सारी कौमने यही निश्चय किया कि सत्याग्रहकी लड़ाई किसी वर्तमान संस्थाके जरिये न चलाई जाय। दूसरी संस्थाएं जितनी सहायता दे सकती हों दें और सत्याग्रहको छोड़कर और जो उपाय कानूनके विरोधमें कर सकती हों करें। अत 'पैसिव रेजिस्टेंस एसोसियेशन' अथवा 'सत्याग्रह-मंडल' नामकी नई संस्था सत्याग्रहियोंने स्थापित की। अंग्रेजी नामसे पाठक यह समझ लेंगे कि जिस वक्त इस नये मंडलकी स्थापना हुई उस वक्ततक सत्याग्रह नामकी खोज नहीं हो सकी थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों हमें यह मालूम होता गया कि अलग संस्था स्थापित करनेसे जनताका हर तरह लाभ ही हुआ और अगर वैसा न हुआ होता तो सत्याग्रहके आंदोलनको शायद हानि ही हुई होती। बहुतसे लोग इस नई संस्थाके सदस्य हुए और जनताने पैसा भी खुले हाथों दिया।

मेरे अनुभवने मुझे यह बताया है कि कोई भी आंदोलन पैसेकी कमीसे टूटता अटकता या निस्तेज नहीं होता। इसके मानी यह नहीं है कि कोई भी लौकिक आंदोलन बिना पैसेके चल सकता है। पर इसका यह अर्थ अवश्य है कि जहां सच्चे संचालक हैं वहां पैसा अपने-आप चला आता है। इसके विपरीत मुझे यह भी अनुभव हुआ है कि जिस आंदोलनका पैसेका अतिरेक हो जाता है उसकी उसी समयसे अवनति आरंभ हो जाती है। इससे कोई सार्वजनिक संस्था पूंजी इकट्ठी करके उसके ब्याजसे अपना कारबार चलाये इसे पाप कहनेकी हिम्मत तो नहीं होती इससे इतना ही कहता हूं कि यह अयोग्य है। सार्वजनिक संस्थाकी पूंजी तो जन-समुदाय ही है। जबतक वह चाहता है तभीतक उसे जीवित रहना चाहिए। पूंजी इकट्ठी

करके ब्याजसे काम चलानेवाली संस्था सार्वजनिक नहीं रहती, बल्कि स्वतंत्र और स्वच्छंद हो जाती है। सार्वजनिक टीकाके अंकुशके वश नहीं रहती। ब्याजपर चलनेवाली अनेक धार्मिक और लौकिक संस्थाओंमें कितनी बुराइयां घुस गई हैं, इसे बताने का यह स्थान नहीं। यह लगभग स्वयंसिद्ध बात है।

अब हम फिर अपने मूल विषयपर आएं। बालकी खाल निकालना और नुक्ताचीनी करना कुछ वकीलों और अंग्रेजी पढ़े हुए लोगोंका ही ठेका नहीं है। मैंने देखा कि दक्षिण अफ्रीकाके अपढ़ हिंदुस्तानी भी बहुत ही बारीक दलीलें कर सकते हैं। कितनोंने यह दलील निकाली कि पहला खूनी कानून रद हो गया है, इसलिए नाटकशालामें की हुई प्रतिज्ञा पूरी हो गई। जो लोग ढीले पड़ रहे थे उन्होंने इस दलीलकी छायामें आश्रय लिया। इस दलीलमें कुछ दम न था यह तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी जिन लोगोंने उस कानूनका विरोध कानूनकी हैसियतसे नहीं बल्कि उसके भीतर निहित तत्त्वके कारण किया था उनपर तो इस नुक्ताचीनीका कोई असर नहीं हो सकता था। पर यह होते हुए भी सलामती की खातिर, जन-जागरण बढ़ानेके लिए और लोगोंके भीतर जो कमजोरी आ गई है उसकी गहराई कितनी है यह देख लेनेके लिए लोगोंसे फिरसे प्रतिज्ञा कराना जरूरी समझा गया। इसलिए जगह जगह सभाएं करके लोगोंको परिस्थिति समझाई गई और उनसे फिरसे प्रतिज्ञाएं भी कराई गईं। लोगोंका जोश कुछ ठंडा हो गया हो, यह नहीं दिखाई दिया।

इसी बीच जुलाईके महीनेका अंत निकट आता जा रहा था। उसकी आखिरी तारीखको हमने ट्रांसवालकी राजधानी प्रिटोरियामें विराट् सभा करनेका निश्चय किया था। दूसरे शहरोंसे भी प्रतिनिधि बुलाये गए थे। सभा प्रिटोरियाकी मस्जिदके मैदानमें हुई। सत्याग्रह आरंभ होनेके बादसे लोग सभाओंमें इतनी बड़ी तादादमें आने लगे थे कि किसी मकानमें सभा करना नामुमकिन हो गया था। सारे ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंकी

आबादी १३ हजारसे अधिक नहीं मानी जाती थी जिसमेंसे १० हजारसे कुछ ऊपर जोहान्सबर्ग और प्रिटोरियामें ही बसते थे। इस तादादमेंसे पांच-छः हजार लोग सभामें उपस्थित हों यह संख्या दुनियाके किसी भी भागमें बहुत बड़ी और अति संतोषजनक मानी जा सकती है। सार्वजनिक सत्याग्रहकी लड़ाई और किसी शर्तपर खड़ी भी नहीं की जा सकती। जहां युद्धका आधार केवल अपना बल हो वहां उस विषयकी सार्वजनिक शिक्षा नहीं दी गई हो तो लड़ाई चल ही नहीं सकती। इससे यह उपस्थिति हम कार्यकर्ताओंके लिए कोई अचंभेकी चीज नहीं थी। हमने शुरूसे ही निश्चय कर लिया था कि अपने आम जल्से खुले मैदानमें ही करेंगे। इससे हमारा खर्च कुछ नहीं होता था और जगहकी कमीके कारण एक भी आदमीको वापस नहीं जाना पड़ता था। यहीं यह बात भी लिख देना चाहिए कि ये सारी सभाएं अधिकांशमें बहुत शांत होतीं। आनेवाले सारी बातोंको बड़े ध्यानसे सुनते। कोई बहुत दूरपर खड़ा होनेके कारण सुन न सकता तो वक्तासे ऊंची आवाजमें बोलनेका अनुरोध करता। पाठकोंको यह बतानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए कि इन सभाओंमें कुर्सियों वगैरहका इंतजाम बिलकुल ही न होता। मंच इतना ही बड़ा बनाया जाता कि केवल सभापति वक्ता और सभापतिके अगल-बगल दो-चार आदमी और बैठ सकें। उसके ऊपर एक छोटीसी मेज और दो-चार कुर्सियां-तिपाइयां रख दी जातीं।

प्रिटोरियाकी इस सभाके सभापति ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके कामकारी अध्यक्ष यूसुफ इस्माइल मियां थे। खूनी कानूनके अनुसार परवाने निकालनेका वक्त नजदीक आता जा रहा था। इससे जहां हिंदुस्तानियोंमें गहरा जोश होते हुए भी वे चिन्तातुर थे वैसे ही जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी उनको सरकारके पास अमोघ बल होते हुए भी चिन्तातुर थे। एक सारी कौमको ताकतसे काम लेकर झुकाना किसीको रुच तो सकता ही नहीं। अतः जनरल बोथाने मि०

हॉस्किनको इस सभामें हमें समझानेके लिए भेजा। मि॰ हॉस्किनका परिचय में ७वें प्रकरणमें करा चुका हूं। सभाने उनका स्वागत किया। अपने भाषणमें उन्होंने कहा—"आप जानते हैं कि मैं आप लोगोंका मित्र हूं। मेरी सहानुभूति आपके साथ है यह कहनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। मेरे वसकी बात हो तो मैं आपकी मांग जरूर मंजूर करा दूं पर यहांके सामान्य गोरों के विरोधके विषयमें मुझे आपको कुछ बताना तो है ही नहीं। आज मैं आपके पास जनरल बोथाका भेजा हुआ आया हूं। उन्होंने इस सभामें आकर आपको उनका संदेसा सुना देनेको कहा है। भारतीय जनताके लिए उनके दिलमें इज्जत है। उसकी भावनाओंको वह समझते हैं। पर वह कहते हैं—मैं लाचार हूं। ट्रांसवालके सारे यूरोपियन ऐसा कानून मांगते हैं। मैं खुद भी इस कानूनकी जरूरत देखता हूं। ट्रांसवाल सरकारकी शक्तिको भारतीय जनता जानती है। इस कानूनको बड़ी सरकारकी सम्मति प्राप्त है। भारतीय जनता को जितना करना चाहिए था उतना उसने किया और अपने सम्मानकी रक्षा कर ली। पर अब उसका विरोध सफल नहीं हुआ और कानून पास हो गया तब उसको चाहिए कि इस कानूनको शिरोधार्य कर अपनी वफादारी और शांति-प्रियताका सबूत दे। इस कानूनके अनुसार जो नियम बने हैं उनमें कोई छोटा-मोटा हेर फेर कराना हो तो इस विषयमें आपका कहना जनरल स्मट्स ध्यानपूर्वक सुनेंगे। यह संदेसा सुनाकर मि॰ हॉस्किनने कहा—"मैं खुद भी आपको यह सलाह देता हूं कि जनरल बोथाके संदेसेको आप मान लें। मैं जानता हूं कि ट्रांसवालकी सरकार इस कानूनके बारेमें दृढ़ है। उसका विरोध करना दीवारसे सिर टकराना जैसा है। मैं चाहता हूं कि आपकी कौम विरोध करके बरबाद न हो या बेकार कष्ट न भोगे। मैंने इस भाषणके शब्द-शब्दका उल्था जनताको सुना दिया। खुद अपनी ओरसे भी चेतावनी दी। मि॰ हॉस्किन तालियोंकी आवाजके बीच विदा हुए।

अब भारतीयकि भाषण शुरू हुए। इस प्रकरणको और सब

पूछिये तो इस इतिहासके नायकका परिचय मुझे अभी कराना बाकी है। जो लोग बोलनेको खड़े हुए उनमें स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। मैं तो उन्हें एक मवक्किल और दुभाषियेके रूपमें ही जानता था। वह अबतक सार्वजनिक कामोंमें आगे बढ़कर हिस्सा नहीं लेते थे। उनका अंग्रेजीका ज्ञान काम चलाऊ था। पर अनुभवसे उसको इतना बढ़ा लिया था कि अपने दोस्तोंको अंगरेज वकीलोंके पास ले जाते तो खुद ही दुभाषियेका काम करते। दुभाषियेका काम कुछ उनका पेशा नहीं था। यह काम तो वह मित्ररूपमें ही करते थे। धंधा पहले कपड़की फेरीका करते थे फिर अपने भाईके साझेमें छोटे पैमाने पर व्यापार करने लगे। वह सूरती मेमन थे। उनका जन्म सूरत जिलेमें हुआ था और सूरती मुसलमानोंमें उनकी अच्छी इज्जत थी। उनका गुजरातीका ज्ञान भी साधारण ही था और अनुभवसे उसे भी काफी बढ़ा लिया था। पर उनकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि चाहे जो विषय हो उसे बहुत आसानीसे समझ लेते थे। मुकदमोंकी गुत्थियां इस तरह सुलझा लेते थे कि अकसर मैं देखकर दंग रह जाता। वकीलोंके साथ कानूनकी बहस करते भी नहीं हिचकते थे और अकसर उनकी दलीलें वकीलोंके लिए भी विचारणीय होतीं।

बहादुरी और एकनिष्ठामें उनसे बढ़ जानेवाला आदमी न मुझे दक्षिण अफ्रीकामें दिखाई दिया और न हिंदुस्तानमें। कौम-के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व होम दिया था। जितनी बार उनसे मेरा संपर्क हुआ मैंने उन्हें एक वातवाला पाया। खुद पक्के मुसलमान थे। *सूरतकी मेमन मस्जिदके मुतवल्लियोंमेंसे* भी थे। पर इसके साथ-साथ हिंदू-मुसलमान दोनोंको एक निगाह से देखते थे। मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं जब उन्होंने धर्मांधताके भावसे और अनुचित रीतिसे हिंदूके मुकाबिले मुसल-मानकी तरफदारी की हो। वह नितांत निर्भय और पक्षपात-रहित थे। इसलिए जब जरूरी मालूम होता तब हिंदू-मुसलमान दोनोंको उनके दोष बतानेमें तनिक भी संकोच न करते। उनकी

सरलता और निरभिमानता अनुकरण करने योग्य थी। उनके साथ बरसोंके गाढ़ परिचयके बाद बनी हुई मेरी यह पक्की राय है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया जैसा मनुष्य कौम को मिलना मुश्किल है।

प्रिटोरियाकी सभामें बोलनेवालोंमें यह नर-रत्न भी था। उन्होंने बहुत ही छोटा भाषण दिया। वह बोले—"इस खूनी कानूनको हर हिंदुस्तानी जानता है। उसका अर्थ हम सभीको मालूम है। मि० हॉस्किनका भाषण मैंने ध्यान-पूर्वक सुना है। आपने भी सुना है। मुझपर तो उसका एक ही असर हुआ है कि अपनी प्रतिज्ञापर मैं और पक्का हो गया हूं। ट्रांसवालकी सरकारका बल हम जानते हैं। पर इस खूनी कानूनके डरसे बड़ा डर वह हमें कौन-सा दिखा सकती है? वह हमें जेल भेजेगी हमारा माल नीलाम कर देगी हमें देशसे निकाल देगी फांसी-पर चढ़ा देगी। ये सारी बातें सहन हो सकती हैं, पर यह कानून तो सहन नहीं होगा। मैं देख रहा था कि ये वाक्य बोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया बड़े उत्तेजित होते जा रहे थे। उनका चेहरा सुर्ख हो गया था गर्दन और माथेकी रगें खूनके जोर-से दौरा करनेके कारण उभर आई थीं। शरीर कांप रहा था। अपने दाहिने हाथकी उंगलियां गर्दनपर फेरते हुए वह गरज उठे—"मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि मैं कत्ल हो जाऊंगा पर इस कानूनके सामने सिर न झुकाऊंगा। और चाहता हूं कि यह सभा भी यही निश्चय करे। यह कहकर वह बैठ गए। उन्होंने जब गर्दनपर उंगलियां फेरीं तो मंचपर बैठे हुए कुछ लोगोंके चेहरोंपर मुस्कराहट आ गई। जहांतक मुझे याद है, मैंने भी उनका साथ दिया। सेठ काछलियाने अपने शब्दोंमें जितना बल भरा था उतना वह अपने कामोंमें दिखा सकेंगे इस विषयमें मेरे मनमें थोड़ी शंका थी। जब-जब मैं इस शंकाकी बात सोचता हूं तब-तब और यहां इस बातका उल्लेख करते हुए भी मैं लज्जित हो रहा हूं। इस महान संग्राममें जिन बहुतोंने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन किया उनमें सेठ

काछलिया सदा आगे रहे। उनका रंग बदलता हुआ मैंने कभी देखा ही नहीं।

सभाने तो इस भाषणका तालियोंकी गड़गड़ाहटसे स्वागत किया। उस वक्त मैं उनको जितना जानता था उसकी बनिस्बत और सभासद कहीं ज्यादा जानते थे क्योंकि उनमेंसे अधिकांशको तो इस गुदड़ीके लालका निजी परिचय था। वे जानते थे कि काछलियाको जो करना होता है वही कहते हैं और जो कहते हैं, वही करते हैं। जोशीले भाषण और भी कई हुए। पर काछलिया सेठके भाषणको उल्लेख के लिए इस कारण चुना है कि यह भाषण उनकी भावी कार्यावलीकी भविष्यवाणी सिद्ध हुआ। जोशीले भाषण करनेवाले सभी नहीं टिक सके। इस पुरुषसिंहकी मृत्यु अपने देश-भाइयोंकी सेवा करते हुए ही १९१८में अर्थात् युद्ध-समाप्तिके चार साल बाद हुई।

इनके एक संस्मरणको और कहीं स्थान मिलना संभव नहीं। इसलिए उसे भी यहीं दिये देता हूं। पाठक टाल्स्टाय फार्मकी बात आगे चलकर पढ़ेंगे। उसमें सत्याग्रहियोंके कुटुंब बसते थे। सेठ काछलियाने अपने बेटेको भी शिक्षा प्राप्तिके लिए इस फार्ममें भेजा था केवल इस दृष्टिसे कि दूसरोंकेलिए उदाहरण उपस्थित करें और अपने बेटेको भी सरल जीवनका अभ्यासी और जनताका सेवक बनाएं। और कह सकता हूं कि इसको देखकर ही दूसरे मुसलमान लड़कोंको भी उनके मां-बापने इस फार्ममें भेजा। बालक काछलियाका नाम अली था। उसकी उम्र उस वक्त १०-१२ सालकी होगी। वह नम्र, चपल सरल और सत्यवादी बालक था। काछलिया सेठके पहले पर लड़ाईके बाद फरिश्ते उसे भी खुदाके दरबारमें उठा लाये। मैं मानता हूं कि वह जिंदा रहता तो पिताकी कीर्तिको अवश्य चार चांद लगाता।

१७

पहली फूट

१९ ०७की पहली जुलाई आई। परवाना जारी करनेके दफ्तर (परमिट आफिस) खुले। कौमका हुक्म था कि हरएक दफ्तरकी खुलेतौरपर पिकेटिंग की जाय यानी दफ्तरोंको जानेवाले रास्तोंपर स्वयंसेवक रखे जायं और वे दफ्तरमें जानेवालों को सावधान करें। हरएक स्वयंसेवकको एक खास बिल्ला दिया गया था और हरएकको खासतौरसे यह समझा दिया गया था कि परवाना लेनेवाले किसी भी हिंदुस्तानीके साथ विनय-विरुद्ध व्यवहार न करें। उनका नाम पूछें पर वह न बताएं तो बलात्कार या अविनय न करें। कानूनको मान लेनेसे होनेवाली हानियोंकी जो सूची छपा रखी गई थी उसे एशियाई दफ्तरमें जानेवाले हर हिंदुस्तानीको दे दें और उसमें क्या लिखा है यह समझा दें। पुलिसके साथ भी विनयका व्यवहार करें। वह गाली दे मारे तो धीरसे सह लें। मार बर्दाश्त न हो तो वहां से हट जाय। पुलिस पकड़े तो खुशीसे गिरफ्तार हो जायं। जोहान्सबर्गमें ऐसी कोई बात हो तो मुझको ही खबर दें। और कहीं हो तो उन स्थानोंमें नियुक्त मंत्रियोंको खबर दें और उनकी सलाहके अनुसार काम करें। स्वयंसेवकोंकी हरएक टुकड़ीका एक मुखिया या नायक था। उसकी आज्ञाका पालन करना दूसरे स्वयंसेवकों (पहरेदारों) का फर्ज था।

भारतीय जनताके लिए इस प्रकारका यह पहला ही अनुभव था। १२ बरससे ऊपरकी उमरवाले सब लोग पिकेट या पहरेदारका काम करनेकेलिए चुन लिये गए थे। इससे १२से १८ बरस तकके नवयुवक भी बड़ी संख्यामें स्वयंसेवक बना लिये गए थे पर स्थानीय कार्यकर्ता जिसे न जानते हों ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वीकार नहीं किया जाता था। इतनी सावधानीके अतिरिक्त हर सभामें दूसरे तौरपर लोगोंको जता दिया गया

था कि नुकसानके डरसे या और किसी कारणसे जो कोई नया परवाना निकलवाना चाहे नेता उसके साथ एक स्वयंसेवक कर देगा जो साथ जाकर उसे एशियाटिक दफ्तरमें पहुंचा देगा और काम हो जानेपर उसे फिर स्वयंसेवकोंके घरके बाहर पहुंचा आयगा। बहुतोंने इस सुरक्षाके प्रबंधका लाभ भी उठाया। स्वयंसेवकोंने हर जगह बड़े उत्साहसे काम किया। वे सदा अपने काममें मुस्तैद और चौकन्ने रहते। मोटे हिसाबसे यह कह सकते हैं कि पुलिसने उन्हें बहुत तंग नहीं किया। कभी-कभी करती तो स्वयंसेवक उसे सह लेते।

स्वयंसेवकोंने इस काममें हास्य-रसका भी मिश्रण किया था जिसमें कभी-कभी पुलिस भी शामिल होती। अपना वक्त आनंदमें बितानेके लिए वे अनेक चुटकुले ढूंढ़ निकालते। एक बार रास्ता रोकनेके इलजामपर वे राहदारीके कानूनके अंदर गिरफ्तार कर लिये गए। यहां सत्याग्रहमें असहयोग न था। इस लिए अदालतमें बचाव न करनेका नियम नहीं था यद्यपि यह सामान्य नियम था कि जनताका पैसा खर्च करके वकील रखकर बचाव नहीं कराया जायगा। इन स्वयंसेवकोंको अदालतने निर पराध कहकर छोड़ दिया। इससे उनका उत्साह और बढ़ा।

इस प्रकार जो हिंदुस्तानी परवाना लेना चाहते थे यद्यपि उनपर प्रकटमें स्वयंसेवकोंकी ओरसे कोई असभ्य व्यवहार या जोर-जबर्दस्ती नहीं होती थी फिर भी मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि लड़ाईके सिलसिलेमें एक ऐसा भी दल खड़ा हो गया था जिसका काम बिना स्वयंसेवक बने छिपे तौरपर परवाना लेनेवालोंको मारपीटकी धमकी देना या दूसरे तौरपर नुकसान पहुंचाना था। यह दुःखद बात थी। ज्योंही इसकी खबर मिली इसे रोकनेके लिए खूब कड़े उपाय किये गए। इस के फलस्वरूप धमकियां देना बंद-सा हो गया पर उसका जड़ मूलसे नाश नहीं हुआ। धमकियोंका असर रह ही गया और मैं यह भी देख सका कि उतने अंशमें लड़ाईको नुकसान पहुंचा। जिन्हें डर लग रहा था उन्होंने तुरत सरकारी संरक्षण ढूंढ़ा

और वह उन्हें मिला। यों कौममें विषका प्रवेश हुआ और जो कमजोर थे वे और भी कमजोर हो गए। इससे विषको पोषण मिला क्योंकि दुर्बलताका स्वभाव बदला लेनेका होता ही है।

इन धमकियोंका असर बहुत ही थोड़ा हुआ पर लोकमत और स्वयंसेवकोंकी उपस्थितिसे परवाना लेनेवालोंके नाम जनता-पर प्रकट होंगे इन दोनों बातोंका असर बहुत गहरा हुआ। मैं एक भी हिंदुस्तानीको नहीं जानता जो यह मानता हो कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना अच्छा है। जो परवाने लेने गये वे महज इसलिए गये कि कष्ट सहने या हानि उठानेका दम उन में नहीं था। इसीसे वे जाते हुए शरमाये भी।

एक ओर लोकलाज और दूसरी ओर अपने व्यापारको नुकसान पहुंचनेका डर इस दुहरी कठिनाईसे निकलनेका रास्ता कुछ मुखिया हिंदुस्तानियोंने ढूंढ़ निकाला। एशियाटिक दफ्तरके साथ बातचीत कर उन्होंने यह प्रबंध किया कि दफ्तरका कोई अहलकार किसी निजी मकानमें और वह भी रातमें नौ-दस बजे के बाद जाकर उन्हें परवाना दे दे। उन्होंने सोचा कि इस प्रबंध से कुछ वक्ततक तो उनके खूनी कानूनके सामने घुटने टेक देने की किसीको खबर ही नहीं होगी और चूंकि वे नेता थे इस-लिए उनको देखकर दूसरे भी उस कानूनको मान लेंगे। इससे और कुछ न हो तो लज्जाका बोझ तो कुछ हलका हो ही जायगा। पीछे बात लोगोंपर प्रकट हो गई तो उसकी चिंता नहीं।

पर स्वयंसेवकोंकी चौकसी इतनी कड़ी थी कि कौमको पल-पलकी खबर मिला करती थी। एशियाटिक दफ्तरमें भी ऐसा कोई होगा ही जो सत्याग्रहियोंको इस तरहकी सूचनाएं देता रहा हो। फिर कुछ ऐसे लोग भी थे जो खुदतो कमजोर थे पर नेताओंका खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बर्दाश्त नहीं कर सकते थे और जो इस सद्भावसे सत्याग्रहियोंको खबर दे दिया करते थे कि वे दृढ़ रहें तो हम भी रह सकेंगे। यों एकबार इस चोरचोरपनकी बदौलत कौमको खबर मिली

कि अमुक रातको अमुक दुकानमें फलां-फलां आदमी पर वाना लेनेवाले हैं। इससे कौमने पहले तो यह इरादा रखने वालोंको समझानेका यत्न किया फिर उस दुकानपर पहरा भी बैठवा दिया। पर मनुष्य अपनी कमजोरीको कबतक दबा सकता है? रातके दस-ग्यारह बजे कुछ मुखियोंने इस तरह परवाने लिये और एक सुरमें बजनेवाली बांसुरीमें विसवादी स्वर बज उठा। दूसरे ही दिन इनके नाम भी कौमने प्रकाशित कर दिये। पर शर्मकी भी एक हद होती है। स्वार्थ जब सामने आकर खड़ा होता है तब लाज-संकोच काम नहीं देता और मनुष्य सत्यपथसे भ्रष्ट हो ही जाता है। इस पहली फूटके फलस्वरूप धीरे-धीरे कोई पांच सौ आदमियोंने परवाने ले लिये। कुछ दिनोंतक परवाने देनेका काम निजी मकानोंमें ही होता रहा पर ज्यों-ज्यों लाजका बल घटता गया त्यों-त्यों इन पांच सौ आदमियोंमें कितने ही खुलेआम भी अपने नाम दर्ज कराने-के लिए एशियाटिक दफ्तरमें जाने लगे।

१८

पहला सत्याग्रही कैदी

अथक प्रयत्न करनेपर भी जब एशियाटिक दफ्तरको ५० से अधिक आदमी नाम दर्ज करानेवाले नहीं मिल सके तब उस महकमेके अफसरोंने निश्चय किया कि अब हमें किसी-न किसीको गिरफ्तार करना चाहिए। पाठक जर्मिस्टन नगरका नाम जानते हैं। वहां बहुतसे हिंदुस्तानी बसते थे। उनमें पंडित रामसुंदर नामका एक आदमी था। यह देखनेमें बहादुर आदमी सा लगता था और वाचाल था। थोड़े-बहुत श्लोक भी याद थे। उत्तर भारतका रहनेवाला था इसलिए रामायण के कुछ दोहे चौपाइयां तो उसे याद होनी ही चाहिए। वह पंडित कहलाता था इससे लोगोंमें उसकी प्रतिष्ठा भी थी। उसने जगह जगह

भाषण दिये। अपने भाषणोंमें यह खूब जोश उड़ेल सकता था। ऐसा कहते हैं कि कुछ विघ्नसंतोषी भारतीयोंने एशियाटिक दफ्तरको सुझाया कि रामसुंदर पंडितको गिरफ्तार करेंगे तो जर्मिस्टनके भारतीय हिंदुस्तानी परवाना ले लेंगे। उस विभागके अधिकारी रामसुंदर पंडितको पकड़नेके लिए इस लोभके वश हुए बिना नहीं रह सके। रामसुंदर पंडित गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरहका यह पहला ही मुकदमा था। इसलिए सरकार और भारतीय जनतामें भी इससे गहरी हलचल मची। जिस रामसुंदर पंडितको अबतक केवल जर्मिस्टन ही जानता था उसको क्षणभरमें सारा दक्षिण अफ्रीका जानने लगा। जैसे किसी महान् पुरुषपर मुकदमा चल रहा हो और वह सबकी निगाह अपनी ओर खींच ले वैसे ही सबकी आंखें रामसुंदर पंडितपर लग गईं। शांति रक्षाके लिए किसी प्रकारके प्रबंधकी आवश्यकता सरकारको नहीं थी फिर भी उसने वैसा बंदोबस्त भी कर लिया। अदालतमें भी यह मानकर रामसुंदरकी इज्जत की गई कि वह सामान्य अपराधी नहीं बल्कि हिंदुस्तानी कौमका एक प्रतिनिधि है। अदालतका कमरा उत्सुक भारतीय दर्शकोंसे भर गया था। रामसुंदरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा मिली। वह जोहान्सबर्गकी जेलमें रखा गया। उसके लिए यूरोपियन वार्डमें अलग कोठरी दी गई। उससे मिलने-जुलनेमें तनिक भी कठिनाई नहीं होती थी। बाहरसे खाना मेजनेकी इजाजत थी और भारतीय जनता नित्य उसके लिए सुंदर पकवान बनाकर भेजा करती। वह जिस चीजकी इच्छा करता वह हाजिर कर दी जाती। जनताने उसका जेल-दिवस बड़ी धूम-धामसे मनाया। कोई उदास नहीं हुआ बल्कि लोगोंका उत्साह [illegible] ा। जेल जानेमें [illegible] तैयार थे। एशियाटिक वि[illegible] आशा प[illegible] हुई। जर्मिस्टनके भारतीय [illegible] लेने नहीं [illegible] स्वामी [illegible] गई। [illegible] हुआ [illegible] छूटा वं [illegible] साथ [illegible] नियम [illegible] ५६ [illegible]

लोगोंने फूल-मालाओंसे रामसुंदरको ढक दिया । स्वयंसेवकोंने उसके सम्मानमें दावत दी और सैकड़ों भारतीय यह सोचकर रामसुंदर पंडितसे मीठी ईर्ष्या करने लगे कि हम भी जेल गये होते तो कैसा अच्छा होता !

पर रामसुंदर खोटा सिक्का निकला । उसका बल झूठी दवीका-सा था । एक महीनेके पहले तो जेलसे निकला ही नहीं जा सकता था क्योंकि उसकी गिरफ्तारी अचानक हुई थी । जेलमें तो उसने वह अमीरी की जो बाहर कभी मुयस्सर नहीं हुई थी । फिर भी स्वच्छंद विचरनेवाला और व्यसनी मनुष्य जलके एकांत वास और अनेक प्रकारके भोजन मिलते रहनेपर भी वहां रखे जानेवाले संयमको सहन नहीं कर सकता । यही बात रामसुंदर पंडितकी हुई । भारतीय जनता और जेलके अमले उसकी इतनी खुशामद बजा रहे थे फिर भी जेल उसको कड़वी लगी और उसने ट्रांसवाल और युद्ध दानोंसे आखिरी सलामकर अपना रास्ता लिया । हर कौममें कुछ चतुर दाव-पेच जाननेवाले लोग तो होते ही हैं । यही बात हरएक संग्रामके विषयमें भी कही जा सकती है । लोग रामसुंदरके रग रेशेसे वाकिफ थे । पर उससे भी कौमका कोई अर्थ सध सकता है यह सोचकर उन्होंने उसका गुप्त इतिहास उसकी पोल खुलनेके पहले मुझपर प्रकट नहीं होने दिया । पीछे मुझे मालूम हुआ कि रामसुंदर गिरमिटिया था जो अपना गिरमिट पूरा किये बिना भाग आया था । उसके गिरमिटिया होनेकी बात मैं यहां घृणासे नहीं लिख रहा हूं । गिरमिटिया होना कोई ऐब नहीं । पाठक अंतमें देखेंगे कि जिन से इस युद्धको अतिशय शोभा मिली वे गिरमिटिए ही थे । लड़ाई जीतनेमें भी उनका हिस्सा बड़े-से-बड़ा था । हां गिर मिटसे भाग निकलना अवश्य दोष था ।

पर रामसुंदरका सारा इतिहास मैंने उसके दोष दिखानेके लिए नहीं लिखा है बल्कि उसमें जो तत्त्व छिपा है उसे प्रकट करनेके लिए ही उसका समावेश किया है । हरएक शुद्ध संग्राम-के नायकोंका फर्ज होता है कि केवल शुद्ध जनोंको ही लड़ाईमें

में पर कितनी ही सावधानी क्यों न रखी जाय अशुद्ध मनुष्यों-का प्रवेश रोका नहीं जा सकता। फिर भी नेता निडर और सच्चे हों तो अशुद्ध जनोंके अनजानमें घुस आनेसे अतमें लड़ाईको नुकसान नहीं पहुंचता। रामसुंदर पंडितका सच्चा रूप प्रकट हो गया तो उसकी कोई कीमत नहीं रही। वह बेचारा पंडित न रहकर केवल रामसुंदर रह गया। कौम उसको भूल गई, पर युद्धको तो उससे बल ही मिला। युद्धके निमित्त भोगी हुई कैद बट्टेखाते नहीं गई। उसके जेल जानेसे जो शक्ति अंगी वह कायम रही और उसके उदाहरणसे दूसरे कमजोर दिलवाले अपने-आप लड़ाईके मैदानसे खिसक गये। ऐसी कमजोरीकी कुछ और मिसालें भी सामने आईं पर उनका इतिहास में नाम-धाम-सहित नहीं देना चाहता। उसे देनेसे कोई अर्थ नहीं सध सकता। पर हां कौमकी सबलता-निर्बलता पाठकोंकी निगाहसे बाहर न रहे इस दृष्टिसे इतना कह देना जरूरी है कि रामसुंदर अकेला ही रामसुंदर नहीं था पर मैंने देखा कि सभी रामसुंदरोंने संग्रामकी सेवा ही की।

पाठक रामसुंदरके दोष न देखें। इस जगतमें मनुष्यमात्र अपूर्ण है। किसीकी अपूर्णता अधिक देखनेमें आती है तो हम उसकी ओर उंगली उठाते हैं। वस्तुतः यह भूल है। रामसुंदर कुछ जान-बूझकर निर्बल नहीं बना। मनुष्य अपने स्वभावको बदल सकता है उसपर अंकुश रख सकता है पर उसे जड़-मूल से कौन मेट सकता है? जगत्कर्ता ने इतनी स्वतंत्रता उसको दी ही नहीं। बाघ अपनी खालकी विचित्रताको बदल सकता है तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रताको बदल सकता है। भाग जानेपर भी रामसुंदरको अपनी कमजोरी पर कितना पश्चात्ताप हुआ होगा यह हम कैसे जान सकते हैं? अथवा उसका भाग जाना ही क्या उसके पश्चात्तापका एक सबल प्रमाण नहीं माना जा सकता? वह बेशर्म होता तो उसे भागनेकी क्या जरूरत थी? परवाना निकलवाकर खूनी कानूनके अनुसार वह सदा जेल-मुक्त रह सकता था।

यही नहीं वह चाहता तो एशियाटिक दफ्तरका दलाल बनकर दूसरोंको बहका सकता था और सरकारका प्रिय भी बन सकता था। हम यह उदार अर्थ क्यों न करें कि यह करनेके बदले अपनी कमजोरी कौमको दिखानेमें उसको शर्म लगी और उसने मुंह छिपा लिया और यह करके भी उसने कौमकी सेवा ही की?

१६

'इंडियन ओपीनियन'

सत्याग्रहकी लड़ाईमें बाहरके और भीतरके जितने भी साधन अपने पास थे उन सबको मुझे पाठकोंके सामने रखना है। इसलिए 'इंडियन ओपीनियन' नामका जो साप्ताहिक पत्र दक्षिण अफ्रीकामें आज भी निकल रहा है उसका परिचय भी उन्हें करा देना जरूरी है। दक्षिण अफ्रीकामें पहला हिंदुस्तानी छापाखाना खोलनेका यश मदनजीत व्यावहारिक नामके गुजराती सज्जनको है। यह छापाखाना कुछ वर्षोंतक कठिनाइयोंके बीच चलाते रहनेके बाद उन्होंने अखबार निकालनेका भी इरादा किया। इसमें उन्होंने स्व० मनसुखलाल नाजरकी और मेरी सलाह ली। अखबार डर्बनसे निकला मनसुखलाल नाजर उसके अवैतनिक संपादक हुए। अखबारमें शुरूसे ही घाटा रहने लगा। अंतमें यह निश्चय हुआ कि उसमें काम करनेवालोंको हिस्सेदार या हिस्सेदार सरीखा बना लें एक खेत खरीदकर उसमें उन लोगोंको आबाद करें और वहींसे अखबार निकालें। यह खेत डर्बनसे १३ मीलके फासलेपर एक सुंदर पहाड़ीपर अवस्थित है। उसके पासका रास्ता स्टेशन खेतसे ३ मील दूर है। उसका नाम फिनिक्स है। अखबारका नाम शुरूसे ही 'इंडियन ओपीनियन' है। एक समय यह अंग्रेजी गुजराती तामिल और हिंदी इन चार भाषाओंमें निकलता था। तामिल और हिंदीका बोझ हद दरजे

भारी लगता था। ऐसे तामिल और हिंदी लेखक नहीं मिलते थे जो लेखपर रहनेको तैयार हों और उनके लेखोंपर नियंत्रण भी नहीं रखा जा सकता था। इससे ये विभाग बंद कर दिये गए और अंग्रेजी तथा गुजराती-विभाग चालू रखे गए। सत्याग्रहकी लड़ाई जब शुरू हुई उस वक्त वह इसी रूपमें निकल रहा था। इस संस्थामें बसनेवालोंमें गुजराती हिंदुस्तानी तामिल अंग्रेज सभी थे। मनसुखलाल नाजरकी अकाल मृत्युके बाद एक अंग्रेज मित्र हर्बर्ट किचन संपादक हुए। अनंतर हेनरी एस० एल० पोलक संपादक हुए और अनेक वर्षोतक यह भार उठाये रहे। मेरे और उनके कारावास कालमें भले पादरी स्वर्गीय जोसफ डोकने भी कुछ दिनोंतक संपादकका काम सम्हाला। इस अखबारके जरिये हर हफ्ते कौमको हफ्तेकी सारी खबरें देनेका काम भलीभांति हो सकता था। अंग्रेजी विभागके द्वारा गुजराती न जाननेवाले हिंदुस्तानियोंको लड़ाईकी थोड़ी-बहुत जानकारी होती रहती और हिंदुस्तान इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेजोंके लिए तो 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक समाचारपत्रका काम देता। मैं मानता हूं कि जिस युद्धका मुख्य आधार आंतरिक बल हो वह अखबारके बिना लड़ा जा सकता है। पर इसके साथ-साथ मेरा यह भी अनुभव है कि 'इंडियन ओपीनियन'के कारण हमें जो सुभीते मिले थे जो शिक्षा कौमको सहज ही मिल सकती थी जो खबरें दुनियामें जहां-जहां हिंदुस्तानी बसते थे वहां-वहां फैलाई जा सकती थीं वह शायद दूसरी तरहसे नहीं हो सकता था। इसलिए इतना तो पक्के तौरपर कहा जा सकता है कि लड़ाई लड़नेके साधनोंमें 'इंडियन ओपीनियन' भी एक बड़ा उपयोगी और प्रबल साधन था।

युद्धकी प्रगतिके साथ-साथ और अनुभव प्राप्त करते-करते जैसे-जैसे कौममें क्रमशः परिवर्तन हुए, वैसेही 'इंडियन ओपीनियन में भी हुए। इस अखबारमें पहले विज्ञापन और बाहरकी फुटकर छपाईके काम भी लिये जाते थे। मैंने देखा कि इन

दोनों कामोंमें अपने अच्छे-से-अच्छे आदमियोंको लगाना पड़ता था। विज्ञापन लेने ही हों तो कौन-से लिये जाय और कौन-से न लिये जाय इसको तै करनेमें सदा धर्म-संकट उपस्थित होता था। फिर कोई विशेष विज्ञापन न लेनेका विचार हो फिर भी उसे भेजनवाला जातिका कोई मुखिया हो तो उसका दिल दुखानेके डरसे भी न लेने योग्य विज्ञापन लेनेके लोभमें फंसना पड़ता। विज्ञापन प्राप्त करने और उसके पैसे वसूल करनमें हमारे अच्छे-से-अच्छे आदमियोंका वक्त जाता खुशामद करनी होती वह अलग। इसके साथ-साथ यह बात भी सोची गई कि अगर यह अखबार पैसा कमानेकी गरजसे नहीं बल्कि कौमको सेवाके उद्देश्यसे ही चलाया जा रहा हो तो यह सेवा जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए। कौम चाहे तभी होनी चाहिए। और कौम की इच्छाका पक्का प्रमाण तो यही माना जा सकता था कि वह आवश्यक संख्यामें ग्राहक होकर उसका खर्च उठा ले। फिर हमने यह भी सोचा कि अखबार चलानेके लिए महीनेका खर्च निकालनेमें थोड़ेसे व्यापारियोंको सेवाभावके नामपर अपने विज्ञापन देनेको समझानेसे कौमके आम लोगोंको अखबार खरीदनेका कर्तव्य समझाना सुझानेवाले और सुनने वालेको दोनोंकेलिए कैसी सुंदर शिक्षा होगी। यह निश्चय हुआ और तुरंत काममें लाया गया। फल यह हुआ कि जो लोग अबतक विज्ञापन आदि के झमेलेमें उलझे हुए थे वे अब अखबारको सुंदर बनानेकी कोशिशमें लगे। कौम तुरंत समझ गई कि 'इंडियन ओपीनियन का मालिकी और उसे चलानेकी जिम्मेदारी दोनों उसीकी है। हम सब काम करनेवाले निश्चिन्त हो गए। हमें बस इतनी चिंता करनी रही कि कौम अखबार मांग तो पूरी पूरी मेहनत करदें और छुट्टी पायें। और अब हर हिंदुस्तानी को बांह पकड़कर उससे 'इंडियन ओपीनियन' लेनेका कहनेमें शर्म नहीं रही बल्कि यह कहना हम अपना धर्म समझने लगे। इंडियन ओपीनियन का आंतरिक बल और स्वरूप भी बदला और वह एक महाशक्ति बन गया। उसकी साधारण ग्राहक-

संख्या १२०० १५०० तक थी। यह दिन-दिन बढ़ने लगी। उसका चंदा बढ़ाना पड़ा था फिर भी जब युद्धने उग्र रूप ग्रहण किया तब ग्राहक इतने बढ़ गए कि ३५०० प्रतियांतक छापनी पड़तीं। 'इंडियन ओपीनियन'का पाठक-वर्ग अधिक-से-अधिक २० हजार माना जा सकता है। उनमें ३ हजारसे अधिक प्रतियोंका खपना आश्चर्यजनक विस्तार कहा जा सकता है। कौमने इस अखबारको इतना अपना लिया था कि बंधे वक्तपर उसकी प्रतियां जोहान्सबर्ग न पहुंच जातीं तो मुझपर शिकायतों-की झड़ी लग जाती। आमतौरसे यह इतवारको सबेरे जोहान्सबर्ग पहुंच जाता। मैं जानता हूं कि अखबार आनेपर बहुतसे लोगों-का पहला काम उसका गुजराती भाग आदिसे अंततक बांच जाना होता था। एक आदमी पढ़ता और उसके इर्द गिर्द बैठे हुए दस-बीस लोग सुनते। हम लोग गरीब ठहरे ! इसलिए कितने ही लोग साझेमें भी अखबार मंगाते।

छापेखानेमें बाहरका काम न लेनेके बारेमें भी मैं लिख आया हूं। उसे बंद करनेके कारण भी प्रायः वही थे जो विज्ञापन बंद कर देनेके थे। और उसे बंद कर देनेसे कंपोज करनेवालोंका जो वक्त बचा उसका उपयोग हमने छापखानेसे पुस्तकें प्रकाशित करनेमें किया। कौमको मालूम था कि इस काममें भी हमारा उद्देश्य पैसा कमाना नहीं था और पुस्तकें चूंकि संग्राममें सहायता देनेके उद्देश्यसे ही छापी जाती थीं इसलिए उनकी खपत भी अच्छी होने लगी। इस प्रकार अखबार और छापाखाना दोनोंने युद्धमें अपना भाग अर्पण किया और सत्याग्रहकी जड़ ज्यों-ज्यों कौम-में गहरी होती गई त्यों-त्यों अखबार और छापेखानेकी सत्याग्रह की दृष्टिसे नैतिक प्रगति भी होती गई, यह बात साफ तौरसे दिखाई दे सकती थी।

२०

पकड़ धकड़

हम यह देख चुके कि रामसुंदरकी गिरफ्तारी सरकारके लिए मददगार नहीं साबित हुई। दूसरी ओर अधिकारियोंने यह भी देखा कि कौम बड़े जोशके साथ एकचित्त होकर आगे बढ़ रही है। 'इंडियन ओपीनियन'के लेख तो एशियाटिक महकमेके अधिकारी ध्यानपूर्वक पढ़ते ही थे। लड़ाईसे संबंध रखनेवाली कोई भी बात छिपाई तो जाती ही नहीं थी। कौमकी निर्बलता सबलता सभी शत्रु-मित्र-उदासीन जो कोई भी देखना चाहे इस अखबारमें देख सकता था। काम करनेवाले शुरूसे ही यह सीख गए थे कि जिस लड़ाईमें बुरा करनेको कुछ है ही नहीं जिसमें फरेब और चालाकीके लिए जगह ही नहीं और जिसमें बल हो तभी विजय हो सकती है उसमें छिपा रखनेको कुछ हो ही नहीं सकेगा। कौमके स्वार्थका ही यह आदेश था कि निर्बलता रूपी रोगको निर्मूल करना हो तो निर्बलताकी परीक्षा करके उसे समुचित रूपमें प्रकट करना चाहिए। अधिकारियोंने जब देखा कि 'इंडियन ओपीनियन' इसी नीतिसे चल रहा है तब उनके लिए वह हिंदुस्तानी कौमके वर्तमान इतिहासका दर्पण रूप हो गया और इससे उन्होंने सोचा कि जबतक हम कुछ खास नेताओं-को न पकड़ें लड़ाईका बल टूटनेका नहीं। अतः १९०७ के दिसंबर, बड़े दिनके हफ्तेमें कुछ नेताओंको अदालतमें हाजिर होनेका नोटिस मिला। मुझे यह स्वीकार करना होगा कि यह नोटिस तामील करानेमें अधिकारियोंने सभ्यताका व्यवहार किया। वे चाहते तो नेताओंको वारंटसे गिरफ्तार कर सकते थे। इसके बदले उन्होंने हाजिर होनेका नोटिस देकर सभ्यताके साथ-साथ अपना यह विश्वास भी प्रकट किया कि नेता अपने-आपको गिरफ्तार करानेको तैयार हैं। जिन लोगोंको नोटिस मिला था वे नियत तिथि अर्थात् शनिवार २२ दिसंबरको अदालतमें

हाजिर हुए। नोटिसमें लिखा था कि कानूनके अनुसार तुम्हें परवाना लेना चाहिए था वह तुमने नहीं लिया। अतः कारण बताओ कि तुम्हें एक विशेष अवधिके अंदर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म क्यों न दिया जाय?

इन लोगोंमें क्विन नामका चीनी भी था जो जोहान्सबर्गमें बसनेवाले चीनियोंका मुखिया था। जोहान्सबर्गमें उनकी आबादी ३ ४ सौ व्यक्तियोंकी होगी। वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका धंधा करते थे। हिंदुस्तान खेतीके लिए मशहूर मुल्क है। पर मैं मानता हूं कि चीनके लोग इस धंधेमें जितना आगे बढ़ गए हैं वहांतक हम नहीं पहुंच पाये हैं। अमरीका आदि देशोंमें खेतीकी जो आधुनिक प्रगति हुई है उसका वर्णन यहीं हो सकता। पर पश्चिमकी खेतीको मैं अभी प्रयोग रूप ही मानता हूं। परंतु चीन तो हमारे देश जैसा ही प्राचीन देश है और वहां पुराने जमानेसे ही इस कलाका विकास किया गया है। इससे चीन और हिंदुस्तानकी तुलना करके हम कुछ सीख सकते हैं। जोहान्सबर्गके चीनियोंकी खेती देखकर और उनकी बातें सुनकर मुझे तो यही जान पड़ा कि चीनियोंका ज्ञान और उद्यम हमसे बहुत बढ़ा-चढ़ा है। जिस जमीनको हम परती मानकर उसका कोई उपयोग नहीं करते चीनी उसमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी जमीनके अपने सूक्ष्म ज्ञानकी बदौलत अच्छी फसल उपजा सकते हैं।

यह उद्योगी और चतुर जाति भी खूनी कानूनकी श्रेणीमें आती थी। इससे उसने सत्याग्रहकी लड़ाईमें भारतीयोंका साथ देना मुनासिब समझा। पर यह होते हुए भी दोनोंके सारे काम काज आदिसे अंततक बिलकुल अलग रहे। दोनों अपनी-अपनी संस्थाओंके जरिये लड़ रहे थे। इसका शुभ फल यह होता है कि जबतक दोनों कौमें अपने निश्चयपर अटल रहती हैं तब तक दोनोंका लाभ होता है पर अगर एक गिर भी जाय तो दूसरेको कोई नुकसान पहुंचनेका कारण नहीं रहता। गिरनेका तो रहता ही नहीं। अंतमें बहुत-से चीनी फिसल गए, क्योंकि

उनके नेताने उन्हें दबा दिया। उसने खूनी कानूनके सामने घुटने तो नहीं टेके पर एक दिन किसीने मुझे खबर दी कि वह बिना हिसाब-किताब दिये भाग गया। सरदारके भग देनेपर अनुयायियोंका टिका रहना सदा ही कठिन होता है। फिर उसमें कोई मलिनता देखनेमें आये तब तो दूना नैराश्य उत्पन्न होता है। पर जब पकड़-धकड़ शुरू हुई उस वक्त तो चीनियोंका जोश खूब बढ़ा हुआ था। उनमेंसे शायद ही किसीने परवाना लिया हो। इससे जैसे भारतीय नेता गिरफ्तार किये गए वैसे ही चीनियोंके कर्ता-धर्ता भी क्विन भी पकड़े गए। कुछ दिनों तक तो कह सकते हैं कि उन्होंने बहुत अच्छा काम किया।

गिरफ्तार किये गए लोगोंमें जिस दूसरे नेताका परिचय यहां देना चाहता हूं वह है थम्बी नायडू। थम्बी नायडू तामिल थे। उनका जन्म मोरीशसमें हुआ था। पर मां-बाप मद्रास इलाकेसे आजीविकाके लिए वहां गये थे। थम्बी नायडू सामान्य व्यापारी थे। स्कूलकी पढ़ाई एक तरहसे कुछ भी न थी पर अनुभव ज्ञान ऊंचे प्रकारका था। अंग्रेजी बहुत अच्छी बोल-लिख सकते थे यद्यपि भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे उसमें दोष दिखाई देते थे। तामिलका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह समझ और बोल लेते थे। तेलगू भी काफी जानते थे पर हिंदी या तेलगू लिपि बिलकुल नहीं जानते थे। मोरीशसकी भाषाका भी जिसे क्रीओल कहते हैं, और जो फ्रेंचका अपभ्रंश कही जा सकती है, थम्बी नायडूको बहुत अच्छा ज्ञान था। दक्षिणके भारतीयोंमें इतनी भाषाओंका कामचलाऊ ज्ञान होना अपवादरूप नहीं था। दक्षिण अफ्रीकामें सैकड़ों हिंदुस्तानी मिलेंगे जिन्हें इन सभी भाषाओंका सामान्य ज्ञान है। इसके साथ हब्शी भाषाका ज्ञान तो उन्हें होता ही है। इन सारी भाषाओंका ज्ञान उन्हें अनायास हो जाता है और हो सकता है। इसका कारण मुझे तो यही दिखाई दिया कि पर भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करके उनका दिमाग थक नहीं गया था। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है और उन भाषाओंके

बोलनेवालोंके साथ बात-चीत और अवलोकन करके ही वे विविध भाषाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इसमें उनके दिमाग-को बहुत श्रम नहीं करना पड़ता पर दिमागकी इस हलकी कसरतसे उनकी बुद्धि स्वाभाविक रीतिसे खिल उठती है। यही बात थंबी नायडूकी भी थी। उनकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी। नये-नये मसलोंको झट समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवाबी देखकर तो लोग दंग रह जाते थे। हिंदुस्तानके उन्होंने दर्शन नहीं किये थे फिर भी उसपर उनका अगाध प्रेम था। स्वदेशा-भिमान उनकी नस-नसमें भर रहा था। उनकी दृढ़ता उनके चेहरे पर चित्रित थी। उनके शरीरकी गठन बड़ी मजबूत और कसी हुई थी। मेहनत करते थकना जानते ही नहीं थे। कुरसी पर बैठकर ही नेतृत्व करना हो तो इस पदको भी सुशोभित कर सकते थे और इतनी ही स्वाभाविक रीतिसे मोटियेका काम भी कर सकते थे। सरेआम बोझ उठाकर चलते वह तनिक भी नहीं शरमाते थे। मेहनत करनी हो तो रात-दिनका भेद नहीं जानते थे और कौमके लिए सर्वस्व होमनेमें हरएकके साथ प्रतिस्पर्द्धा कर सकते थे। अगर थंबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो आज यह वीर पुरुष काछलियाकी अनुपस्थितिमें ट्रांसवालमें कौमके नेताकी जगह सहज ही ले सकता था। जबतक ट्रांसवालकी लड़ाई चलती रही उनके क्रोधका विपरीत परिणाम नहीं हो सका और उनमें जो अमूल्य गुण थे वे रत्नकी भांति चमक रहे थे। पर पीछे मुझे मालूम हुआ कि उनका क्रोध और साहसिकता (rashness) उनके प्रबल शत्रु सिद्ध हुए और उन्होंने उनके गुणोंको ढक दिया। कुछ भी हो दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्राममें थंबी नायडूका नाम सदा प्रथम वर्गमें रहेगा।

हम सबको अदालतमें साथ ही हाजिर होना था पर सबके मुकदमे अलग-अलग चलाये गए। मजिस्ट्रेटने कुछ अभियुक्तों-को ७ या १४ दिनके अदर और बाकी सबको ४८ घंटेके अदर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया। म्यादकी अवधि १९ ०८की

१ वीं जनवरीको पूरी होती थी। उसी दिन सजा सुनानेके-लिए हमें अदालतमें हाजिर होनेका हुक्म मिला। हममेंसे किसी-को कोई बचाव तो करना नहीं था। सबको यह स्वीकार करना था कि हमने कानूनके अनुसार परवाने नहीं लिये हैं और इस कारण मजिस्ट्रेटने जो हमें निर्दिष्ट अवधिके भीतर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया है उसका सविनय अनादर करनेका अपराध हमने किया है।

मैंने अदालतसे छोटा-सा बयान देनेकी इजाजत मांगी और वह मिल गई। मैंने इस आशयका बयान दिया—"मेरे और मेरे बाद सुने जानेवाले मुकदमोंमें भेद किया जाना चाहिए। मुझे अभी-अभी प्रिटोरियासे खबर मिली है कि वहां मेरे देश-बन्धुओं-को तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली है और भारी जुर्माना भी किया गया है जो अदा न किया गया तो तीन महीनेकी कड़ी कैद और भुगतनी होगी। इन लोगोंने अगर अपराध किया है तो मैंने और बड़ा अपराध किया है। अतः मजिस्ट्रेटसे मेरी प्रार्थना है कि वह मुझे बड़ी-से-बड़ी सजा दें।" पर मजिस्ट्रेटने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और मुझे दो महीनेकी सादी कैदकी सजा दी। जिस अदालतमें मैं सैकड़ों बार वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ वकील-मंडलीके साथ बैठता था उसमें आज मुलजिमके कठघरेमें खड़ा हूं यह विचार कुछ विचित्र अवश्य लगा पर इतना तो मुझे अच्छी तरह याद है कि वकील-मंडलकी बैठकमें बैठनेमें जो कुछ सम्मान मैंने माना होगा अभियुक्तके पींजड़ेमें खड़े होनेमें उससे कहीं अधिक सम्मान समझा। उसमें प्रवेश करनेमें लेशमात्र भी क्षोभ मेरे मन-में हुआ यह मुझे याद नहीं आता। अदालतमें तो सैकड़ों हिंदु-स्तानी भाइयों वकीलों मित्रों आदिके सामने मैं खड़ा था। ज्योंही सजा सुनाई गई, सिपाही मुझे कैदियोंको बाहर ले जाने के दरवाजेसे उस जगह ले गया जहां कैदी पहलेसे रखे जाते हैं।

उस वक्त मुझे अपने आस-पास सब कुछ शून्य निस्तब्ध दिखाई दिया। कैदियोंके बैठनेके लिए एक बेंच पड़ी थी। उसपर

बैठनेको कहकर और दरवाजा बंद करके पुलिस कर्मचारी चलता बना। यहां मुझे क्षोभ अवश्य हुआ। मैं गहरे विचारमें डूब गया। कहां है घर-बार! कहां है वकालत! कहां हैं सभाएं! यह सब क्या स्वप्नवत् था और आज मैं कैदी हूं! दो महीनेमें क्या होगा? दो महीने पूरे काटनेही होंगे? लोग अपने वचनके अनुसार जेल चले आएं तो दो महीने क्यों बिताने पड़ेंगे? पर वे न आएं तो दो महीने कैसे पहाड़से हो जायगे? इन विचारोंको लिखनेमें जितना समय लग रहा है उसका सौवां हिस्सा भी दिमागमें इन और ऐसे अन्य विचारोंके आनेमें नहीं लगा। ये विचार ज्योंही मनमें आये मैं लज्जित हुआ। यह कितना बड़ा मिथ्याभिमान है! मैं तो जेलको महल समझनेवाला हूं! खूनी कानूनका सामना करते हुए जो कुछ सहन करना पड़े उसे दुःख नहीं बल्कि सुख मानना चाहिए। उसका सामना करते हुए जान-माल सब अर्पण कर देना पड़े तो इसे तो सत्याग्रहमें बड़ा आनंद मानना चाहिए। यह सारा ज्ञान आज कहां चला गया? ये विचार मनमें आते ही मैं फिर होशमें आया और अपनी मूर्खता पर हंसने लगा। दूसरे भाइयोंको कैसी कैद मिलेगी? क्या उन्हें भी मेरे साथ ही रखेंगे? इन व्यावहारिक विचारोंमें अब मैं उलझ गया। मैं इस उधेड़बुनमें पड़ा था कि इतनेमें दरवाजा खुला और एक पुलिस कर्मचारीने मुझे अपने पीछे आनेका हुक्म दिया। मैं चला तो उसने मुझे आगे कर दिया और खुद पीछे हो लिया। वह मुझे जेलकी जंगलेदार गाड़ीके सामने ले गया और उसमें बैठ जानेको कहा। मुझे जोहान्सबर्गके जेलखानेकी ओर ले गये।

जेलमें ले जानेके बाद मेरे कपड़े उतरवाये गए। मुझे मालूम था कि जेलमें कैदियोंको नंगा कर दिया जाता है। हम सबने निश्चय कर लिया था कि जेलके कायदे जहांतक व्यक्तिगत अपमान करनेवाले या धर्म-विरुद्ध न हों वहांतक उनका इच्छा-पूर्वक पालन करेंगे। इसे हमने सत्याग्रहका धर्म माना था। जो कपड़े मुझे पहननेको मिले वे बहुत मैले थे। उन्हें पहनना

तनिक भी नहीं रुचा। उन्हें पहनते और मनको इसके लिए झुकाते दुःख हुआ। पर यह सोचकर मनको दबाया कि थोड़ा मैल बर्दाश्त करना ही होगा। नाम-धाम लिखकर मुझे एक बड़े कमरेमें ले गये। वहां कुछ ही देर रहा हूंगा कि मेरे साथी भी हंसते-बोलते आ पहुंचे और उनका मुकदमा कैसे चला और क्या हुआ यह सब कह सुनाया। मैं इतना जान सका कि मेरा मुकदमा हो जानेके बाद लोगोंने काले झंडे हाथमें लेकर जुलूस निकाला। कुछ लोग उत्तेजित भी हो गए। पुलिसने दखल दिया और कुछ लोगोंपर मार भी पड़ी। हम सब एक ही जेलमें और एक ही बड़ी कोठरीमें रखे गए, इससे हम बहुत प्रसन्न हुए।

कोई छः बजे हमारा दरवाजा बंद कर दिया गया। यहांकी जेलोंकी कोठरियोंके दरवाजोंमें छड़ें वगैरह नहीं होती। बहुत ऊंचाईपर दीवारमें एक छोटा झरोखा हवाके लिए रखा जाता है। अतः हमें जान पड़ा जैसे हम संदूकमें बंद कर दिये गए हों। पाठक देखेंगे कि जो आदर-सत्कार जेल-अधिकारियोंने राम सुंदरका किया था वैसा कुछ हमारा नहीं किया। इसमें कोई अचरजकी बात नहीं। रामसुंदर पहला सत्याग्रही कैदी था। इसलिए उसके साथ किस तरहका बर्ताव किया जाय अधिकारी इसे पूरी तरह समझ भी नहीं पाये थे। हमारी तादाद तो शुरू-से ही खासी थी और दूसरोंको भी गिरफ्तार करनेका इरादा तो था ही। इसलिए हम हब्शी वार्डमें रखे गये। दक्षिण अफ्रीका में कैदियोंके दो ही विभाग होते हैं—गोरे और काले। और हम हिंदुस्तानी कैदियोंकी गिनती भी हब्शी विभागमें ही होती है। मेरे साथियोंको भी मेरी जितनी ही और सादी कैदकी सजा हुई थी।

सवेरा होनेपर हमें मालूम हुआ कि सादी कैदवालोंको अपने निजके कपड़े पहननेका अधिकार होता है और वे उसे न पहनना चाहें तो सादी कैद वालोंकेलिए जो खास पोशाक होती है वह दी जाती है। हमने तै कर लिया था कि घरके कपड़े पहनना अयोग्य है और जेलके ही कपड़े पहनना हमें मुनासिब

होगा। हमने अधिकारियोंको यह बता दिया। इससे हमें सादी कैदवाले हब्शी कैदियोंका पहनावा दिया गया। पर सादी कैद वाले सैकड़ों हब्शी कैदी दक्षिण अफ्रीकाकी जेलमें होते ही नहीं। अतः जब दूसरे सादी कैदवाले हिंदुस्तानी पहुंचने लगे तो सादी कैदवाले कपड़े जेलमें चुक गए। हमें इस बारेमें तो कोई तकरार करनी थी ही नहीं इसलिए हमने मशक्कतवाले कैदियोंके कपड़े पहननेमें आनाकानी नहीं की। कुछ लोग जो पीछे आये उन्होंने ये कपड़े पहननेके बदले अपने ही कपड़े पहने रहना पसंद किया। यह मुझे ठीक तो नहीं लगा पर इस विषयमें आग्रह करना मुना-सिब नहीं मालूम हुआ।

दूसरे या तीसरे दिनसे ही सत्याग्रही कैदी जेलमें भरने लगे। वे जानबूझकर गिरफ्तार होते थे। उनमें अधिकांश फेरी करने वाले ही थे। दक्षिण अफ्रीकामें हरएक फेरी करनेवालेको चाहे गोरा हो या काला फेरी करनेका परवाना लेना पड़ता है। उसे हर वक्त अपने पास रखना होता है और पुलिस जब मांगे तब दिखाना होता है। बहुत करके रोज ही कोई-न-कोई पुलिस कर्मचारी परवाना मांगा ही करता है और जो न दिखावे उसे गिरफ्तार कर लेता है। हमारी गिरफ्तारीके बाद कौमने जेलको भर देनेका निश्चय किया था। फेरीवाले इसमें आगे बढ़े। उनके लिए गिरफ्तार होना आसान भी था। फेरीका परवाना नहीं दिखाया और गिरफ्तार हुए। यों गिरफ्तार होकर एक हफ्तेके अंदर सौसे ऊपर सत्याग्रही कैदी हो गए। और थोड़े-बहुत तो आते ही रहते इस-लिए हमें तो एक तरहसे बिना अखबारके ही अखबार मिल जाता। रोजकी खबरें ये भाई लाया करते। जब सत्याग्रही बड़ी तादाद में गिरफ्तार होने लग तब मजिस्ट्रेट या तो थक गया या जैसा कि हम मानते थे सरकारसे उसे आदेश मिला कि सत्याग्रहियों को आगेसे सादी कद दी ही न जाय। कारण कुछ भी हो पर अब सत्याग्रहियोंको कड़ी कैदकी सजा मिलने लगी। मुझे तो आज भी जान पड़ता है कि कौमका अनुमान सही था क्योंकि शुरूके मुकदमोंमें जो सादी कैदकी सजाएं दी गई उसके बाद इसी प्रका

को लड़ाईमें और पीछे समय-समयपर जो और लड़ाइयां लड़ी गईं उनमें कभी पुरुष क्या स्त्रियोंको भी सादी कैदकी सजा ट्रांसवाल या मेटाल्सकी एक भी अदालतमें नहीं सुनाई गई। जबतक सबको एक ही तरहकी हिदायत या हुक्म न मिला हो तबतक हरएक मजिस्ट्रेटका हर बार हर पुरुष और स्त्रीको मशक्कतवाली ही सजा देना अगर आकस्मिक संयोग मात्र हो तो यह चमत्कार-सा माना जायगा।

इस जेलमें सादी कैदवाले कैदियोंको भोजनमें सबेरे मकई-की लपसी मिलती थी। उसमें नमक नहीं होता था पर हर कैदीको अलगसे थोड़ा नमक दिया जाता था। दोपहरको बारह बजे पाव भर भात थोड़ा नमक और आधी छटांक घी और पाव भर डबल रोटी दी जाती थी। शामको फिर मकईके आटे की लपसी और उसके साथ थोड़ी तरकारी मुख्यतः आलू दिया जाता था। आलू छोटे हों तो दो और बड़े हों तो एक दिया जाता था। इस खुराकसे किसीका पेट नहीं भरता। चावल गीला पकाया जाता था। वहांके डाक्टरसे हमने कुछ मसाला मांगा। उन्हें बताया कि हिंदुस्तानकी जेलोंमें भी मसाला मिलता है। "यह हिंदुस्तान नहीं है और कैदीके लिए स्वाद होता ही नहीं। इसलिए मसाला भी नहीं हो सकता। यह दो टूक जवाब मिला। हमने दालकी मांगकी क्योंकि उपयुक्त आहारमें मांस पेशी या पट्ठे बनानेका गुण नहीं था। डाक्टरने जवाब दिया— कैदियोंको डाक्टरी दलील नहीं देनी चाहिए। पट्ठे बनाने वाली खुराक आप लोगोंको दी जाती है क्योंकि हफ्तेमें दो बार मकईके बदलेमें उबली हुई मटर दी जाती है। मनुष्यका जठर यों हफ्तेमें या पखवाड़ेमें भिन्न भिन्न गुणोंवाला आहार भिन्न भिन्न समयपर लेकर उसके सत्वको खींच न सके तो डाक्टरकी दलील सही थी। बात यह थी कि डाक्टरका इरादा किसी तरह हमारे अनुकूल होनेका था ही नहीं। सुपरिंटेंडेंट हमारी यह मांग मंजूर कर ली कि अपना खाना हम खुद पका लिया करें। थम्बी नायडूको हमने अपना पाकशास्त्री चुना। रसोईमें उसको

बहुत झगड़ा करना पड़ता। साक-भाजी तौलमें कम मिले तो वह पूरी मांगता। यही बात दूसरी चीजोंके बारेमें भी थी। केवल दोपहरका खाना पकाना ही हमारे जिम्मे किया गया था। वह हमारे हाथमें आनेके बाद हम अपना भोजन कुछ सतोष-पूर्वक करने लगे।

पर ये सुभीते मिलें या न मिलें हर हालमें प्रसन्नतापूर्वक जेलकी सजा भोगनी है, इस निश्चयसे इस मंडलीमेंसे कोई भी नहीं डिगा। सत्याग्रही कैदियोंकी सख्या बढ़ते-बढ़ते १५ से ऊपर हो गई थी। हम सब सादी कैदवाले थे इसलिए अपनी कोठरी वगैरह साफ करनेके सिवा हमारे लिए और कोई काम नहीं था। हमने काम मांगा। सुपरिंटेंडेंटने जवाब दिया—"मैं आप लोगोंको काम दूं तो माना जायगा कि मैंने अपराध किया। इससे मैं लाचार हूं। सफाई आदि करनेमें आप जितना पसद करें उतना वक्त लगा सकते हैं। हमने ड्रिल (कवायद) आदि किसी तरहकी कसरतकी मांग की क्योंकि मशक्कतवाले हब्शी कैदियोंसे भी ड्रिल कराई जाती थी। जवाब मिला— 'आपके रखवाले (वार्डर) के पास वक्त हो और वह आपको कसरत कराये तो मैं एतराज नहीं करूंगा। पर उसे कराना मैं उसका फर्ज नहीं बना सकता। रखवाला बड़ा भलामानस था। उसे तो इतनी इजाजत भरकी दरकार थी। उसने बड़ी दिल-चस्पीके साथ हमें रोज सवेरेको ड्रिल कराना शुरू किया। यह हम अपनी कोठरीके छोटे-से आंगनमें ही कर सकते थे। इसलिए हमें तो चक्कर-सा काटना होता था। यह भला रखवाला जिस तरह सिखा जाता उसी तरह नवाबखां नामके एक पठान भाई उसे जारी रखते और कवायदके अंग्रेजी शब्दोंका उर्दू उच्चारण करके हमें हंसा देते। 'स्टेंड एट ईज'को वह 'संडलीज' कहते। कुछ दिनोंतक तो हम समझ ही न सके कि यह कौनसा हिंदु-स्तानी शब्द है। बादमें सूझा कि यह तो नवाबखानी अंग्रेजी है।

२१

पहला समझौता

इस तरह जेलमें एक पखवाड़ा बीता होगा कि नये आने वाले यह खबर लाने लगे कि सरकारके साथ समझौतेकी कुछ बातचीत चल रही है। दो-तीन दिन बाद जोहान्सबर्गके 'ट्रांसवाल लीडर' नामक अंग्रेजी दैनिकके संपादक अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये। जोहान्सबर्गसे उन दिनों जितने दैनिक निकलते थे सबका स्वामित्व सोनेकी खानवाले किसी-न-किसी गोरेके हाथमें था पर जो उनके विशेष स्वार्थके विषय न हों उन सभी प्रश्नोंपर संपादक अपने स्वतंत्र-विचार प्रकट कर सकता था। इन अखबारोंके संपादक विद्वान् और विख्यात पुरुष ही चुने जाते थे। जैसे 'स्टार' नामके दैनिकके संपादक किसी वक्त लार्ड मिल्नरके प्राइवेट सेक्रेटरी थे और 'स्टार'से 'टाइम्स'के संपादक मि० बकलकी जगह क्रेम विलायत गये। मि० अलबर्ट कार्टराइट बुद्धिमान होनेके साथ-साथ अतिशय उदार हृदयके थे। आम तौरसे वह सदा अपने अग्रलेखोंमें भी भारतीयोंके पक्षका समर्थन करते थे। उनके और मेरे बीच गहरा स्नेह हो गया था। मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे मिल आये थे। जनरल स्मट्सने उन्हें मध्यस्थ मंजूर कर लिया था। भारतीय नेताओंसे भी वह मिले। नेताओंने उन्हें एक ही जवाब दिया— "कानूनी नुक्तोंको हम नहीं समझ पाते। गांधी जेलमें हैं और हम समझौते की बातचीत करें, यह नहीं हो सकता। हम समझौता चाहते हैं पर सरकार चाहती हो कि हमारे आदमी जेलमें बंद रहें और समझौता हो जाय तो आपको गांधीसे मिलना चाहिए। वह जो करेंगे वह हमें मंजूर होगा।"

इसपर अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये और अपने साथ जनरल स्मट्सका बनाया हुआ या पसंद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी ले आये। उसकी भाषा गोलमटोल थी।

यह मुझे नहीं रुचि। फिर भी एक परिवर्तनके साथ उस मसविदे पर दस्तखत करनेको मैं खुद तैयार था। पर मैंने उन्हें बताया कि बाहरवालोंकी इजाजत होनेपर भी जेलके अपने साथियोंकी राय लिये बिना मैं हस्ताक्षर नहीं कर सकता। इस मसविदेका मतलब यह था कि हिंदुस्तानी अपने परवाने स्वेच्छासे बदलवा लें। उनपर किसी कानूनका प्रयोग नहीं हो सके नये परवानेका रूप सरकार भारतीयोंके साथ मशविरा करके तै करे और भारतीय जनताका बड़ा भाग स्वेच्छासे परवाना ले ले तो सरकार खूनी कानूनको रद कर देगी और अपनी खुशीसे लिये हुए परवानेको बाकायदा मान लेनेके लिए एक नया कानून पास करेगी। खूनी कानून रद करनेकी बात इस मसविदेमें स्पष्ट नहीं थी। मेरी दृष्टिसे उसे स्पष्ट करलेके लिए जो सुधार आवश्यक था वह मैंने सुझाया। पर अल्बर्ट कार्टराइटको इतना परिवर्तन भी पसंद नहीं आया। उन्होंने कहा—"जनरल स्मट्स इस मसविदेको अंतिम मानते हैं। मैंने खुद भी इसे पसंद किया है और इस बात का तो मैं आपको इतमीनान दिलाता हूं कि अगर आप सबने परवाने ले लिये तो खूनी कानूनको रद हुआ ही समझिये।" मैंने जवाब दिया—'समझौता हो या न हो पर आपकी सहानुभूति और सहायताके लिए हम सदा आपके अहसानमंद रहेंगे। मैं एक भी गैरजरूरी फेरफार नहीं कराना चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो मैं उसका विरोध नहीं करूंगा। पर जहां मुझे खुद ही अर्थके विषयमें शंका हो वहां तो मुझे हेर-फेर सुझाना ही होगा और अंतको अगर समझौता होना ही है तो दोनों पक्षोंको मसविदेमें अदल-बदल करनेका अधिकार होना ही चाहिए। यह अंतिम है, कहकर जनरल स्मट्सको पिस्तौल हमारे सामने नहीं कर देना चाहिए। खूनी कानून रूपी पिस्तौल तो हमारे सामने धरा ही है अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमारे ऊपर क्या हो सकता है? मि० कार्टराइट इस दलीलके खिलाफ कुछ कह नहीं सके और सुझाया हुआ परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने रखना

स्वीकार किया। मैंने साथियोंसे मशविरा किया। उन्हें भी भाषा नहीं भाई, पर जनरल स्मट्स इस सुझाये सुधारके साथ मसविदेको मंजूर कर लें तो समझौता कर लेना चाहिए, यह उन्हें भी पसंद आया। जो लोग बाहरसे आये थे उन्होंने मुझे नेताओं-का यह संदेसा दिया था कि मुनासिब समझौता होता हो तो उनकी मंजूरीकी राह न देखकर मैं उसे कर लूं। इस मसविदे पर मैंने मि० क्विन और थबी नायडूकी सही ली और तीनोंके हस्ताक्षरके साथ मसविदा कार्टराइटके हवाले किया।

दूसरे या तीसरे दिन १९०८की ३०वीं जनवरीको जोहान्सबर्गके पुलिस सुपरिंटेंडेंट मुझे जनरल स्मट्सके पास प्रिटोरिया ले गये। हममें बहुतसी बातें हुईं। मि० कार्टराइटके साथ उनकी जो बातचीत हुई थी वह उन्होंने मुझे बताई। हिंदुस्तानी कौम मेरे जेल जानेके बाद भी दृढ़ रही इसके लिए भी उन्होंने मुझे मुबारकबाद दी और कहा— 'मुझे आपके देश वासियोंसे नफरत हो ही नहीं सकती। आप जानते ही हैं कि मैं भी बैरिस्टर हूं। मेरे वक्तमें कुछ हिंदुस्तानी विद्यार्थी भी मेरे साथ पढ़ रहे थे। मुझे तो अपने कर्तव्यका पालन भर कर देना है। गोरे यह कानून मांगते हैं और आप स्वीकार करेंगे कि वे मुख्यतः बोअर नहीं बल्कि अंग्रेज हैं। आपका सुधार मैं स्वीकार करता हूं। जनरल बोथाके साथ भी मैंने बातचीत कर ली है और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप लोगोंमेंसे अधिकांश परवाना ले लेंगे तो मैं एशियाटिक एक्टको रद कर दूंगा। अपनी मर्जीसे लिये जानेवाले परवानेको जायज बनाने वाले कानूनका मसविदा जब बनाने लगूंगा तब उसकी एक नकल आपको आलोचनाके लिए भेज दूंगा। मैं यह नहीं चाहता कि यह लड़ाई फिर शुरू हो और आपके देशवासियोंकी भावनाओंका अनादर करना चाहता हूं।" यह कहकर जनरल स्मट्स उठकर खड़े हो गए। मैंने पूछा— अब मुझे कहां जाना है? और मेरे साथके दूसरे कैदियोंका क्या होगा?" उन्होंने हंसकर जवाब दिया—"आप तो अभीसे आजाद हैं। आपके

साथियोंको कल सवेरे छोड़ देनेके लिए टेलीफोन करता हूं। पर मेरी यह सलाह है कि आपके लोग बहुत जलसा-तमाशा न करें। करेंगे तो सरकारकी स्थिति कुछ कठिन हो जा सकती है। मैंने जवाब दिया— 'आप इतमीनान रखें फ़जलेकी खातिर मैं एक भी जलसा नहीं होने दूंगा। पर समझौता कैसे हुआ उसका स्वरूप क्या है और अब हिंदुस्तानियोंकी जिम्मेदारी कितनी बढ़ गई है, यह समझानेके लिए तो मुझे सभाएं करनी ही होंगी।' जनरल स्मट्सने कहा— 'ऐसी सभाएं आप जितनी भी करनी चाहें करें। मैं क्या चाहता हूं यह आपने समझ लिया इतना ही काफी है।'

इस वक्त शामके कोई सात बजे होंगे। मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं था। जनरल स्मट्सके सेक्रेटरीने मुझे जोहान्सबर्ग जानेका भाड़ा दिया। यह बातचीत प्रिटोरियामें हुई थी। प्रिटोरियाके भारतीयोंके पास रुकना और वहां समझौता प्रकट करना जरूरी नहीं था। मुख्य लोग जोहान्सबर्गमें ही थे। हमारा केंद्र भी वहीं था। वहां जानेवाली आखिरी ट्रेन बाकी थी। वह मुझे मिल भी गई।

२२

समझौतेका विरोध मुझपर हमला

रातके कोई नौ बजे जोहान्सबर्ग पहुंचा। तुरंत अध्यक्ष सेठ ईसप मियांके यहां गया। मुझे प्रिटोरिया ले जानेकी खबर उन्हें मिल गई थी। इससे कुछ मेरी राह भी देखते रहे होंगे। फिर भी मुझे अकेला पहुंचा हुआ देखकर सबको अचंभा हुआ और हर्ष भी। मैंने कहा कि जितने आदमी इकट्ठे किये जा सकें उतने ही को इकट्ठाकर हमें इसी वक्त सभा करनी होगी। ईसप मियां आदि मित्रोंको भी यह सलाह पसंद आई। अधिकांश भारतीय एक मुहल्लेमें रहते थे इसलिए सूचना देना कठिन

नहीं था। अध्यक्षका मकान मस्जिदके पास ही था और सभाएं तो मस्जिदके मैदानमें ही हुआ करती थीं। इससे कोई भारी प्रबंध करना था ही नहीं। मंचपर एक बत्ती लगवा लेना बस यही प्रबंध करना था। रातके ११ या १२ बजेके लगभग सभा हुई। सूचनाके लिए समय बहुत कम मिला था फिर भी कोई एक हजार आदमी इकट्ठे हो गए थे।

सभा होनेके पहले जो खास-खास लोग मौजूद थे उन्हें मैंने समझौतेकी शर्तें समझा दी थीं। कुछ उसका विरोध करते थे। फिर भी उस मंडलीके सभी लोग मेरी दलीलें सुन लेनेके बाद समझौतेका औचित्य समझ गए। पर एक शंका तो सबके मनमें थी—अगर जनरल स्मट्सने विश्वासघात किया तो? खूनी कानून भले ही अमलमें न लाया जाय पर हमारे सिरपर मूसल-की तरह पड़ा तो रहेगा ही। इस बीच हमने अपनी मर्जीसे परवाने लेकर अपना हाथ कटा दिया तो इस कानूनसे लड़नेके लिए हमारे पास जो एक बड़ा हथियार है उसे हाथसे छोड़ देंगे। यह तो जानबूझकर अपने आपको दुश्मनके पंजेमें फंसा देना-सा होगा। सच्चा समझौता तो यह कहा जायगा कि पहले खूनी कानून रद्द करदें और फिर हम स्वेच्छासे परवाने निकलवा लें।

मुझे यह दलील पसंद आई। दलील करनेवालोंकी तीक्ष्ण बुद्धि और हिम्मतपर मुझे गर्व हुआ और मैंने देखा कि सत्या-ग्रही ऐसे ही होने चाहिएं। इस दलीलके जवाबमें मैंने कहा—"आपकी दलील बहुत अच्छी है और विचारने योग्य है। खूनी कानून रद्द हो जानेके बाद ही हम अपनी इच्छासे परवाने लें इससे अच्छी तो दूसरी कोई बात हो ही नहीं सकती पर इस को मैं समझौतेका लक्षण नहीं मानता। समझौतेका अर्थ ही यह है कि जहां सिद्धांतका भेद न हो वहां दोनों पक्ष खूब बहुत कुछ करें और झगड़ा निबटालें। हमारा सिद्धांत यह है कि हम खूनी कानूनके डरसे तो उसके अनुसार जो कुछ करनेमें कोई बाधा न हो वह काम भी न करें। इस सिद्धांतपर हमें अटल

रहता है। सरकारका सिद्धांत यह है कि हिंदुस्तानी नाबालग तौरपर ट्रांसवालमें दाखिल न हों। इसके लिए वहुतसे भारतीय ऐसे परवाने निकलवा लें जिनपर वह पहचानके निशान हों और जिनकी अदल-बदल न हो सके और यों गोरोंका शक दूर कर उन्हें निर्भय कर दें। सरकार इस सिद्धांतको नहीं छोड़ने की। आजतक अपने व्यवहारसे हमने इस सिद्धांतको स्वीकार भी कर रखा है। अत: उसका विरोध करनेकी बात सोचें तो भी जबतक नये कारण उत्पन्न न हों तबतक उसके विरुद्ध नहीं लड़ा जा सकता। हमारी लड़ाई इस सिद्धांतको काटनेके लिए नहीं बल्कि कानूनका काला दाग दूर करनेके लिए है। अत: कौममें जो नया और प्रबल बल प्रकट हुआ है उसका उपयोग करनेके लिए अब हम एक नई बातको सामने रखें तो सत्याग्रही के सत्यको लांछन लगेगा। अत: सच पूछिये तो इस समझौतेका विरोध किया ही नहीं जा सकता।

अब इस दलीलपर विचार करें कि खूनी कानून रद किये जानेके पहले हम अपना हाथ कैसे कटा दें? क्यों अपने शस्त्र छोड़ दें? इसका जवाब तो बहुत आसान है। सत्याग्रही भयको तो कोसों दूर रखता है। इसलिए विश्वास करते वह कभी डरता ही नहीं। बीस बार विश्वासका घात हो तो भी इक्कीसवीं बार विश्वास करनेको तैयार रहता है। कारण यह है कि सत्याग्रही अपनी नाव विश्वासके सहारे ही चलाता है और विश्वास रखनेमें हम अपना हाथ कटा देते हैं यह कहना यह प्रकट करना है कि हम सत्याग्रहको नहीं समझते।

'मान लीजिये हमने अपनी इच्छासे नये परवाने ले लिये। पीछे सरकार विश्वासघात करती है और कानूनको रद नहीं करती तो क्या उस वक्त हम सत्याग्रह नहीं कर सकते? यह परवाना ले लेनेपर भी हम मुनासिब मौकेपर उसे दिखानेसे इकार कर दें तो उसकी क्या कीमत होगी? तब जो हजारों हिंदुस्तानी छिपे तौरपर ट्रांसवालमें दाखिल हो जायं। सरकार उनमें और [illegible] द सकेगी? अत: कानून हो

या न हों किसी भी दशामें सरकार हमारी सहायताके बिना हम पर प्रतिबंध नहीं लगा सकती। कानूनका अर्थ इतना ही है कि जो रोक सरकार लगाना चाहती है उसे हम स्वीकार न करें तो हम दण्डके पात्र होते हैं। और आमतौरसे ऐसा होता है कि मनुष्य सजाके डरसे अंकुशके अधीन होता है पर सत्याग्रही इस सामान्य नियमका उल्लंघन करता है। वह अंकुशके अधीन होता है तो सजाके डरसे नहीं बल्कि उसके माननेमें लोक-कल्याण है यह मानकर अपनी इच्छासे ऐसा करता है। ठीक यही स्थिति हमारी इस वक्त इन परवानोंके बारेमें है। इस स्थितिको सरकार कैसा ही विश्वासघात करके भी बदल नहीं सकती। इस स्थितिको उत्पन्न करनेवाले हम हैं और उसे बदल भी हमही सकते हैं। जबतक सत्याग्रहका हथियार हमारे हाथमें है तबतक हम स्वतंत्र और निर्भय हैं।

'और अगर कोई मुझसे यह कहे कि कौममें जो बल आज आ गया है वह फिर आनेवाला नहीं तो मैं यह जवाब दूंगा कि यह कहनेवाला सत्याग्रही नहीं यह सत्याग्रहको समझता ही नहीं। यह कहनेका अर्थ तो यह होता है कि आज जो बल प्रकट हुआ है वह सच्चा नहीं है बल्कि नशेके जैसा झूठा और क्षणिक है। यह बात सही हो तो हम विजयके अधिकारी नहीं। और जीत जायें तो जीती हुई बाजी भी हार जायेंगे। मान लीजिए सरकारने खूनी कानूनको रद्द कर दिया। पीछे हमने स्वेच्छया परवाने भी लिये। इसके बाद सरकारने वही खूनी कानून फिर पास कर दिया और हमें परवाने लेनेको मजबूर करने लगी तो उस वक्त उसे कौन इससे रोक सकता है? और अगर उस वक्त आज बलके विषयमें हमें शंका हो तो उस वक्त भी हमारी ऐसी ही दुर्दशा होगी। अतः चाहे जिस दृष्टिसे हम इस समझौतेको देखें हम यह कह सकते हैं कि उससे कौमने कोई कुछ खोया नहीं बल्कि कुछ लाभ ही रहेगा। और मैं तो यह भी मानता हूं कि हमारे विरोधी भी हमारी मर्यादा और न्याय-बुद्धिको पहचानकर विरोध त्याग देंगे या उसे मन्द

कर देंगे।

इस प्रकार जिन एक-दो आदमियोंने उस छोटी-सी मण्डली में विरोध प्रकट किया था उनके मनका मैं पूरा समाधान कर सका। पर आधी रातवाली बड़ी सभामें जो बवण्डर उठनेवाला था उसका तो मुझे स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था। मैंने सभाको पूरा समझौता समझाया और कहा— 'इस समझौतेसे कौमकी जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है। हमें यह दिखानेके लिए अपनी खुशीसे परवाना ले लेना है कि हम धोखा देकर या नाजायज तरीकेसे एक भी हिंदुस्तानीको ट्रांसवालमें घुसाना नहीं चाहते कोई परवाना न ले तो इस वक्त तो उसे कोई सजा भी नहीं दी जायगी पर न लेनेका अर्थ यही होगा कि कौम समझौते-को मंजूर नहीं करती। अत: यह जरूरी है कि आप लोग हाथ ऊंचा करके समझौतेका स्वागत करें। यह मैं चाहता भी हूं। पर इसका अर्थ यही होगा और मैं यही करूंगा कि आप हाथ उठाने वाले लोग ज्योंही नये परवाने मिलनेका प्रबंध हो जाए, पर-वाने लेनेमें लग जायगे और आजतक जैसे परवाना न लेनेको समझानेके लिए आपमेंसे बहुतेरे स्वयंसेवक बने थे वैसे अब लोगों-को परवाने लेनेको समझानेके लिए स्वयंसेवक बनेंगे। जो काम हमें करना है वह कर देंगे तभी इस जीतका सच्चा फल हम पा सकेंगे।

ज्योंही मेरा भाषण पूरा हुआ एक पठान भाई खड़े हुए और मुझपर सवालोंकी झड़ी लगादी।

'इस समझौतेके अंदर हमें दसों उंगलियोंकी छाप देनी होगी न?

हां और नहीं भी। मेरी अपनी सलाह तो यही होगी कि सब लोग दसों उंगलियोंकी छाप दे दें पर जिन्हें धर्मकी बाधा हो या जो निशानी देनेमें अपने आत्मसम्मानकी हानि मानते हों वे न दें तो भी चल सकता है।

'आप खुद क्या करेंगे?

'मैंने तो दसों उंगलियोंकी छाप देनेका निश्चय कर रखा

है। मैं खुद न दूं और दूसरोंको देनेकी सलाह दूं यह मुझसे तो हो ही नहीं सकता।

"दसों उंगलियोंकी निशानीके बारेमें आप बहुत लिखा करते थे। यह तो अपराधियोंसे ही ली जाती है इत्यादि सिखानेवाले आप ही थे। यह लड़ाई दस उंगलियोंकी छापकी लड़ाई है यह कहने वाले भी आप ही हैं। वे सारी बातें आज कहां गईं?"

"दसों उंगलियोंकी निशानीके बारेमें जो कुछ मैंने लिखा है उसपर आज भी कायम हूं। मैं आज भी कहता हूं कि उंगलियोंकी छाप हिंदुस्तानमें जरायम पेशा या अपराधी जातियोंसे ली जाती है। मैंने कहा है और आज भी कहता हूं कि खूनी कानूनके अनुसार दसों उंगलियोंकी निशानी देना तो क्या दस्तखत करना भी पाप है। यह बात भी सच है कि उंगलियोंकी निशानीपर मैंने बहुत जोर दिया है और मैं मानता हूं कि वैसा करनेमें मैंने समझदारीसे काम लिया। खूनी कानूनकी बारीक बातोंपर, जिन्हें अबतक करते आ रहे थ जोर देकर कौमको समझानेके बदले दसों उंगलियोंकी निशानी जैसी बड़ी और नई बातपर जोर देना आसान था और मैंने देखा कि कौम इस बातको तुरत समझ गई।

"पर आजकी स्थिति भिन्न है। मैं जोर देकर कहना चाहता हूं कि जो बात कल अपराध थी वह आजकी नई स्थितिमें भलमनसी और सराफ्तका निशान है। आप मुझसे जबर्दस्ती सलाम कराना चाहें और मैं करूं तो मैं आपकी दुनियाकी और खुद अपनी निगाहमें भी गिर जाऊंगा। पर मैं आपको अपना भाई या इंसान समझकर अपनी मर्जीसे सलाम करूं तो यह मेरी नम्रता और सज्जनताका सबूत होगा और खुदाके दरबारमें भी यह बात मेरी नेकीके खातेमें लिखी जायगी। इसी दलीलसे मैं कौमको उंगलियोंकी निशानी देनेकी सलाह देता हूं।

"हमने सुना है कि आपने कौमके साथ दगा की है और १५ हजार पौंड लेकर उसे जनरल स्मटसके हाथ बेच दिया है। हम कभी दसों उंगलियोंकी निशानी देनेवाले नहीं और किसीको देने

भी नहीं। मैं खुदा की कसम खाकर कहता हू कि जो आदमी एशियाटिक दफ्तरमें जानेमें अगुआई करेगा उसे जानसे मार डालूंगा।

पठान भाइयोंकी भावना मैं समझ सकता हू। मुझे विश्वास है कि मैंने घूस खाकर कौमको बेच दिया है इसपर कोई भी विश्वास नहीं करेगा। यह बात मैंने पहले भी समझा दी है कि जिन लोगोंने उंगलियोंकी निशानी न देनेकी कसम खाई है उन्हें कोई निशानी देनेके लिए मजबूर नहीं कर सकता और जो कोई पठान या दूसरे भाई उंगलियोंके निशान दिये बिना परवाना लेना चाहें उन्हें परवाना दिलानेमें मैं पूरी-पूरी मदद करूंगा। मैं आपको इतमीनान दिलाता हू कि बिना उंगलियोंकी निशानी दिये वे ऐच्छिक परवाना ले सकेंगे।

'मुझे यह बात कबूल करनी होगी कि मार डालनेकी धमकी मुझे पसंद नहीं आती। मैं यह भी मानता हूं कि किसीको मार डालनेकी कसम खुदाके नामपर नहीं खाई जा सकती। इसलिए मैं यह मान लेता हूं कि क्रोधके आवेशमें आकर ही इन भाईने मार डालनेकी कसम खाई है, पर इस कसमपर अमल करना हो या न करना हो समझौताकरनेमें मुख्य आदमी होने की हैसियतसे और कौमके सेवकके रूपमें मेरा स्पष्ट कर्तव्य है कि उंगलियोंकी निशानी देनेमें मैं ही अगुआ बनूं। और मैं तो ईश्वरसे प्रार्थना करूंगा कि वह मुझको ही इसका श्रेय दे। मरना तो एक दिन सभीको है। रोग या इस तरहके दूसरे कारणसे मरनेके बजाय मैं अपने किसी भाईके हाथसे मरू तो इसमें मुझे तनिक भी दुःख नहीं होगा। और अगर उस वक्त भी मैं तनिक भी क्रोध या मारनेवालेके प्रति द्वेष न करूं तो मैं जानता हूं कि मेरा तो भविष्य बनेगा ही और मारनेवाला भी पीछे तो समझ ही जायगा कि मैं सर्वथा निर्दोष था।"

ऊपरके सवाल क्यों किये गए, यह बता देना जरूरी है। जब लोगोंने खूनी कानूनके आगे सिर झुका दिया था उसके प्रति यदि कोई वैर भाव नहीं रखा जाता था फिर भी उस कायदे

विषयमें तो मुझे और कड़े शब्दोंमें बहुत-कुछ कहा और 'इंडियन ओपीनियन' में लिखा गया था। इससे कानूनको मान लेनेवालोंका जीवन अप्रिय अवश्य हो गया था। उन्होंने कभी सोचा ही न था कि कौमका बड़ा भाग अपने निश्चयपर अटल रहेगा और इतना जोर दिखायेगा कि समझौता होनेकी नौबत आ जाय। पर जब १५०से ऊपर सत्याग्रही जेलमें पहुंच गये और समझौतेकी बात चीत चलने लगी तब कानूनकी शरण जानेवालोंको और भी नागवार लगा और कुछ ऐसे भी निकले जो चाहते थे कि समझौता न हो और हो जाय तो उसको तुड़वा देना चाहते थे।

ट्रांसवालमें रहनेवाले पठानोंकी संख्या बहुत थोड़ी थी। मेरा ख्याल है कि कुल मिलाकर ५ से अधिक नहीं होंगे। उनमें बहुतेरे बोअर युद्धके समय आये हुए सिपाही थे। जैसे युद्ध कालमें आये हुए बहुतसे गोरे दक्षिण अफ्रीकामें आबाद हो गए, वैसे ही लड़ाईके सिलसिलेमें आये हुए पठान और दूसरे हिंदु स्तानी भी बस गए थे। उनमेंसे कुछ मेरे मवक्किल भी थे और दूसरे तौरपर भी उनके साथ मेरा खासा परिचय हो गया था। ये स्वभावसे बड़े भोले होते हैं। शूरवीर तो होते ही हैं। मारना और मरना उनकी निगाहमें बहुत मामूली बातें हैं। उन को किसी पर गुस्सा आये तो उसको पकड़कर पीटते अथवा उनकी भाषामें कहना चाहें तो उसकी पीठ नरम करते हैं और कभी-कभी जानसे भी मार डालते हैं। इसमें वे नितांत निष्पक्ष होते हैं। सगा भाई हो तो उसके साथ भी यही बर्ताव करेंगे। पठानोंकी तादाद यहां इतनी कम है फिर भी उनमें आपसमें झगड़ा होनेपर मार-पीटकी नौबत आ ही जाती है। ऐसे झगड़ों में मुझे अक्सर बीच-बचाव करना पड़ता। इसमें भी जब विश्वास घातकी बात हो तब तो वे अपना गुस्सा रोक ही नहीं सकते। न्याय पानेके लिए उनके पास सबसे बढ़िया कानून मारपीट ही है।

पठानोंने इस लड़ाईमें पूरा हिस्सा लिया था। उनमेंसे एक आदमी भी खूनी कानूनके सामने घुटने नहीं टेके थे। उनको

बहकाना आसान है। उंगलियोंकी निशानी देनेके बारेमें गलत-फहमी होना समझमें आ सकनेवाली बात है और इसको लेकर उनको भड़काना तनिक भी कठिन नहीं था। घूस न खाई होती तो उंगलियोंकी निशानी देनेकी बात में क्यों कहता इतना कहना पठानोंको भ्रममें डालनेके लिए काफी था।

इसके सिवा ट्रांसवालमें एक और पक्ष भी था। यह था उन लोगोंका जो बिना परवाना लिए छिपे तौरपर ट्रांसवालमें आये थे या जो दूसरे हिंदुस्तानियोंको चुपचाप बिना परवाना लिये या जाली परवानोंके जरिये ट्रांसवालमें प्रविष्ट कराया करते थे। इस पक्षका स्वार्थ समझौता न होनेमें ही था। जबतक लड़ाई चल रही हो तबतक किसीको परवाना दिखाना होता ही नहीं। इसलिए ये लोग निर्भय होकर अपना रोजगार चलाते रहते। लड़ाई चलती रहनेके दरमियान ये लोग जेल जानेसे आसानीसे बच सकते थे। अतः लड़ाई लंबे अरसेतक चले तो यह पक्ष इसे अपने लिए अच्छा ही मानता। इस प्रकार ये लोग भी पठानों-को समझौतेके खिलाफ भड़का सकते थे। अब पाठक समझ सकते हैं कि पठान यकायक क्यों उत्तेजित हो गए थे।

पर इस मध्यरात्रिके उद्गारोंका असर सभाके ऊपर कुछ भी नहीं हुआ। मैंने सभाका मत मांगा था। सभापति और दूसरे नेता दृढ़ थे। इस संवादके बाद सभापतिने भाषण दिया जिसमें समझौतेका स्वरूप समझाया और उसको मंजूर कर लेने की आवश्यकता बताई। अनंतर उन्होंने सभाका मत लिया। दो-चार पठान जो उस वक्त वहां मौजूद थे उनके सिवा और सबने समझौतेको स्वीकार किया और मैं रातके दो या तीन बजे घर पहुंचा। सोना तो कहांसे मिलता क्योंकि मुझे तड़के ही उठकर दूसरोंको छुड़ानेके लिए जेल जाना था। ७ बजे मैं जेल-पर पहुंच गया। सुपरिंटेंडेंटको टेलीफोनसे हुक्म मिल गया था और वह मेरी राह देख रहे थे। एक घंटेके अंदर सभी सत्या-ग्रही कैदी छोड़ दिये गए। अध्यक्ष और दूसरे भारतीय उन्हें लेनेके लिए आये थे। जेलसे हमारा जुलूस पैदल सभा-स्थानको

गया। वहां सभा हुई। यह दिन और दूसरे दो चार दिन यों ही दावतों आदिमें तथा लोगोंको समझानेमें लग गए।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए त्यों-त्यों एक ओर तो लोग समझौतेका अर्थ अधिकाधिक समझने लगे और दूसरी ओर गलतफहमी भी बढ़ने लगी। उत्तेजनाके कारण तो ऊपर हम देख ही चुके हैं। उनके अतिरिक्त जनरल स्मटसको लिखे हुए पत्रमें भी भ्रमका सबल कारण था। इसलिए जो अनेक प्रकारकी दलीलें पेश की जा रही थीं उनका जवाब देनेमें मुझे जो तकलीफ हुई वह उन कष्टोंसे कहीं अधिक थी जो लड़ाई चलती रहनेके दिनोंमें मुझे उठाने पड़े थे। लड़ाईके दिनोंमें जिसे हम अपना दुश्मन मानते हों उसके साथ व्यवहार करनेमें कठिनाई पड़ती है पर मेरा अनुभव यह है कि इन कठिनाइयोंको हम आसानीसे दूर कर सकते हैं। उस वक्त आपसके झगड़े अविश्वास आदि होते ही नहीं या बहुत कम होते हैं। पर युद्ध समाप्त होनेके बाद आपसके विरोध आदि जो सामने आई हुई आपत्तिको देखकर दबे रहते हैं बाहर आ जाते हैं और लड़ाईका अंत समझौतेसे हुआ हो तो उसमें दोष निकालनेका काम सदा सहज होता है। इससे बहुतेरे उसे उठा लेते हैं और जहां व्यवस्था राष्ट्रीय या लोकतंत्रीय हो वहां छोटे-बड़े सबको जवाब देना और उनका समाधान करना पड़ता है। यह ठीक ही है। जितना अनुभव आदमी ऐसे समय यानी दोस्तोंके दरमियान होनेवाले झगड़े या गलतफहमीके समय प्राप्त कर सकता है उतना विरोधीके साथ सामने लड़ते हुए नहीं प्राप्त किया जा सकता। विरोधीके की जानेवाली लड़ाईमें एक तरहका नशा रहता है और इससे उसमें उत्साह होता है। पर जब मित्रोंके बीच गलतफहमी या विरोध उत्पन्न हो जाता है तब वह असाधारण घटना मानी जाती है और सदा दुःखद ही होता। फिर भी आदमीकी परख तो ऐसे ही वक्त होती है। मेरा तो यह अपवाद-रहित अनुभव है और मुझे जान पड़ता है कि ऐसे ही समयमें मैं अपनी सारी आंतरिक संपत्ति प्राप्त कर सका हूं। युद्धका गुह्य रखकर जो

लाग लड़ते-लड़ते नहीं समझ सके थे, वे समझौतेकी बातचीतके दरमियान और उसके बाद उसे पूरी तरह समझ गए। सच्चा विरोध तो पठानोंसे आगे नहीं बढ़ा।

यों करते-करते दो-तीन महीनेमें एशियाटिक दफ्तर अपनी इच्छासे लिया जानेवाला नया परवाना निकालनेको तैयार हो गया। परवानेका रूप बिलकुल बदल गया था। उसे बनानेमें सत्याग्रही मण्डलके साथ मशविरा कर लिया गया था।

१९०८की १० वीं फरवरीको सवेरे हम कुछ आदमी परवाने लेनेके लिए जानेको तैयार हुए। लोगोंको खूब समझा दिया गया था कि परवाने लेनेका काम कौमको झटपट कर डालना है। यह भी तै कर लिया गया था कि पहले दिन नेतागण ही सबसे पहले परवाने लें। इसमें उद्देश्य यह था कि लोगोंकी झिझक दूर हो जाय, एशियाटिक दफ्तरके अफसर वगैरह कार अपना काम सौजन्यके साथ करते हैं या नहीं इसको देख लें और कामकी और तरह पर निगरानी भी रखें।

मेरा दफ्तर ही सत्याग्रह-मण्डलका भी दफ्तर था। वहां पहुंचा तो दफ्तरकी दीवारके बाहर मीर आलम और उसके साथियोंको खड़ा पाया। मीर आलम मेरा पुराना मवक्किल था और अपने सभी कामोंमें मेरी सलाह लिया करता था। बहुतसे पठान ट्रांसवालमें घास या नारियलके रेशेके गद्दे बनानेका काम करते हैं। इसमें वे अच्छा नफा करते हैं। ये गद्दे वे मज दूरोंके जरिये बनवाते और पीछे अच्छे नफेपर बेचते हैं। मीर आलम भी यही काम करता था। वह छ फुटसे अधिक ऊंचा होगा। लंबे-चौड़े कद और दुहरे बदनका था। आज पहली ही बार मैंने मीर आलमको दफ्तरके भीतरके बजाय बाहर खड़ा देखा और हमारी आंखें मिलने पर भी उसने सलामके लिए हाथ नहीं उठाया तो यह भी पहली ही बार हुआ। पर मैंने सलाम किया तो उसने भी जवाब दिया। अपने अभ्यासके अनुसार मैंने पूछा 'कैसे हो?' मुझे ऐसा खयाल है कि उसने जवाबमें 'अच्छा हूं' कहा। पर आज उसका चेहरा रोजकी तरह हंसता हुआ

नहीं था। मैंने उसकी आंखोंमें क्रोधकी झलक देख ली और अपने मनमें इसे नोट कर लिया। यह भी सोचा कि आज कुछ होनेवाला है। मैं दफ्तरके अंदर गया। अध्यक्ष ईसप मियां और दूसरे मित्र भी आ पहुंचे और हम एशियाटिक दफ्तरकी ओर रवाना हुए। मीर आलम और उसके साथी भी साथ हो लिये।

एशियाटिक आफिसके लिए लिया हुआ मकान फॉन ब्रांडिस स्क्वायरमें था और मेरे दफ्तरसे एक मीलके अंदर ही होगा। वहां पहुंचनेके लिए आम सड़कोंसे होकर जाना था। फॉन ब्रांडिस स्ट्रीटसे जाते हुए हम मेसर्स आर्नाट एंड गिब्सनकी कोठीसे आगे पहुंचे थे जहांसे एशियाटिक दफ्तरका तीन मिनिटस अधिकका रास्ता न था कि मीर आलम मेरी बगलमें आगया और पूछा 'कहां जाते हो ?' मैंने जवाब दिया—'मैं दस उंगलियोंकी निशानी देकर रजिस्ट्रीका सार्टीफिकेट लेना चाहता हूं। अगर तुम भी चलो तो तुम्हें दसों उंगलियोंकी निशानी देनेकी जरूरत नहीं है। केवल दोनों अंगूठोंकी निशानी दिला कर मैं पहले तुम्हें सार्टीफिकेट दिला दूंगा फिर अपनी उंगलियों की छाप देकर अपना सार्टीफिकेट निकलवाऊंगा।" मैं यह कहही रहा था कि इतनेमें मेरी खोपड़ीपर लाठी गिरी और मैं 'हे राम' कहते हुए बेहोश होकर मुंहके बल गिरा। इसके बाद जो कुछ हुआ उसका मुझे खबर नहीं। पर मीर आलम और उसके साथियोंने और लाठियां मारी और लातें भी जड़ीं। उनमेंसे कुछको ईसप मियां और थंबी नायडूने अपने ऊपर ले लिया। इससे वे भी थोड़ा मार खा गए। इतनेमें शोर मचा। आते जाते गोरे इकट्ठा हो गए। मीर आलम और उसके साथी भागे पर गोरोंने उन्हें पकड़ लिया। इस बीच पुलिस भी आ पहुंची और वे पुलिसके हवाले कर दिये गए।

बगलमें ही एक यूरोपियन मि॰ गिब्सनका दफ्तर था। लोग मुझे वहां उठा ले गए। थोड़ी देरमें मुझे होश आया तो मैंने रेवरेंड डोकको अपने ऊपर झुका हुआ पाया। उन्होंने मुझसे पूछा—'कैसे हो ?' मैंने हंसकर जवाब दिया— मैं तो अच्छा

है पर मेरे दांत और पसलियां दुख रही हैं। मैंने पूछा— 'मीर आलम कहां है ? उन्होंने जवाब दिया— वह तो पकड़ लिया गया है और उसके साथ दूसरे लोग भी। मैंने कहा— 'उन्हें छूटना चाहिए। मि० डोकने जवाब दिया— 'यह सब तो होता रहेगा। यहां तो तुम एक पराये दफ्तरमें पड़े हो। तुम्हारा होंठ फट गया है। पुलिस तुम्हें अस्पताल ले जानेको तैयार है। पर तुम मेरे यहां चलो तो मिसेज डोक और मैं जितनी तुम्हारी सेवा हमसे हो सकती है करेंगे। मैंने कहा— 'मुझे तो अपने ही यहां ले चलिये। पुलिस जो सहायता करना चाहती है उसके लिए उसको धन्यवाद दीजिए, पर उन लोगोंसे कह दीजिए कि मैं आपके यहां जाना पसंद करता हूं।

इतनेमें एशियाटिक आफिसर (रजिस्ट्रार आव एशियाटिक्स) मि० चमनी भी आ पहुंचे। एक गाड़ीमें लिटाकर मुझे इस भले पादरीके मकानपर ले गये जो स्मिट स्ट्रीटमें था। डाक्टर बुलाया गया। इस बीच मैंने मि० चमनी से कहा— 'मेरी आशा तो यह थी कि आपके दफ्तरमें आकर और दसों उंगलियोंकी निशानी देकर पहला परवाना अपने नाम निकलवाऊंगा। यह ईश्वरको मंजूर नहीं था। पर अब मेरी प्रार्थना है कि आप अभी जाकर कागज ले आयें और मेरी रजिस्टी कर लें। मैं आशा करता हूं कि आप मुझसे पहले और किसीकी रजिस्ट्री नहीं करेंगे। उन्होंने जवाब दिया— 'ऐसी क्या उतावली है ? अभी-अभी डाक्टर आते हैं। आप आराम करें। पीछे सब होता रहेगा। दूसरोंको परवाने दूंगा तो भी आपका नाम पहला रहेगा। मैंने कहा—"ऐसे नहीं हो सकता। मेरी भी प्रतिज्ञा है कि मैं जीवित रहा और ईश्वरको मंजूर हुआ तो सबसे पहले खुद मैं ही परवाना लूंगा। इसीसे मेरा आग्रह है कि आप कागज ले आयें। इसपर वह कागज लाने गये।

मेरा दूसरा काम था एटर्नी जनरल अर्थात् बड़े सरकारी वकीलको इस आशयका तार भेजना— मीरआलम और उसके साथियोंने मेरे ऊपर जो हमला किया उसके लिए मैं उन्हें दोषी

नहीं मानता। जो हो उनपर फौजदारी मुकदमा चले यह मैं नहीं चाहता। मुझे आशा है कि मेरी खातिर आप उन्हें छोड़ देंगे। इस तारके जवाबमें मीर आलम और उसके साथी छोड़ दिये गए।

पर जोहान्सबर्गके गोरोंने एटर्नी जनरलको इस तरहका कड़ा पत्र लिखा— 'अपराधियोंको सजा मिलनेके बारेमें गांधीके विचार कुछ भी हों, वह इस देशमें नहीं चल सकते। उनपर जो मार पड़ी है उसके विषयमें वह भले ही कुछ न करें, पर अपराधियों ने उन्हें घरके कोनेमें नहीं मारा सरेआम बीच रास्तेमें मारा है। यह सार्वजनिक अपराध माना जायगा। कितने ही अंग्रेज भी इस अपराधकी शहादत दे सकते हैं। अपराधियोंको पकड़ना ही होगा। इस आंदोलनके कारण सरकारी वकीलने मीर आलम और उसके एक साथीको फिर गिरफ्तार कराया और उन्हें तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली। हां मैं गवाहकी हैसियतसे तलब नहीं किया गया।

अब हम फिर बीमारके कमरेकी ओर निगाह फेरें। मि० चमनी कागजात लेने गये इतनेमें डाक्टर थ्वेट्स आ पहुंचे। उन्होंने मुझे देखा। मेरा ऊपरका होंठ फट गया था। उसके और गालके जख्ममें भी टांका लगाया। पसलियों आदिको देख कर उनमें लगानेके लिए दवा लिखी और जबतक टांका न खुले तबतक बोलनेको मना किया। खानेमें भी पतली चीजोंको छोड़ कर और कुछ खानेको मना किया। उन्होंने यह निदान किया कि मुझे कहीं भी बहुत गहरी चोट नहीं आई है। हफ्तेके अंदर अपना मामूली काम-काज करने लायक हो पाऊंगा। हां एक दो महीने इसका ध्यान रखना होगा कि शरीरपर अधिक श्रम न पड़े। यह कहकर वह विदा हुए। यों मेरा बोलना बंद हुआ पर मेरा हाथ तो चल ही सकता था। मैंने कौमके लिए मध्यस्थ की मारफत एक छोटा गुजराती संदेश लिखकर प्रकाशित करने के लिए दे दिया। वह इस प्रकार है

"मेरी तबीयत अच्छी है। मिस्टर और मिसेज डोक मेरे

लिए जान दे रहे हैं। मैं थोड़े ही दिनोंमें अपनी ड्यूटीपर फिर हाजिर हो जाऊंगा। जिन्होंने मुझे मारा है उनपर मुझे गुस्सा नहीं है। उन्होंने नासमझीवश यह काम किया। उनपर कोई मुकदमा चलानेकी जरूरत नहीं। दूसरे लोग शांत रहेंगे तो इस घटनासे भी हमें लाभ ही होगा।

हिंदू भाई अपने मनमें तनिक भी रोष न रखें। मैं चाहता हूं कि इस घटनासे हिंदू-मुसलमानके बीच कटुता पैदा न होकर मिठास उत्पन्न हो ईश्वरसे ऐसी प्रार्थना करता हूं।

'मुझपर मार पड़ी और उससे ज्यादा पड़े तो भी मैं तो एक ही सलाह दूंगा। और वह यह कि आमतौरसे सभी दस उंगलियोंकी निशानी दे दें। जिनके लिए सच्ची धार्मिक अड़चन हो उन्हें सरकार छूट देगी। इसमें ही कौमका और गरीबोंका भला है और इसीसे उनकी रक्षा होगी।

मगर हम सच्चे सत्याग्रही होंगे तो मार या भविष्यमें किये जानेवाले विश्वासघातके डरसे तनिक भी नहीं डरेंगे।

"जो लोग दसों उंगलियोंकी निशानीकी बातको लेकर अड़े हुए हैं उन्हें मैं अज्ञानी समझता हूं।

मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हूं कि कौमका भला करे, उसे सही रास्तेपर लगाये और हिंदू-मुसलमानोंको मेरे रक्तसे एक करे।

मि० चमनी आये। बड़ी मुश्किलसे मैंने उंगलियोंकी निशानी दे दी। मैंने देखा कि इस वक्त उनकी आंखें गीली हो रही थीं। इनके खिलाफ तो मुझे कड़े लेख भी लिखने पड़े थे। पर अवसर आनेपर मनुष्यका हृदय कितना कोमल हो जाता है इसका चित्र मेरी आंखोंके सामने खड़ा हो गया।

पाठक यह अनुमान तो कर ही लेंगे कि यह सारी विधि पूरी होनेमें कुछ मिनिटसे अधिक न लगे होंगे। मि० डोक और उनकी भली पत्नी इसके लिए चिंतित हो रहे थे कि मैं बिलकुल शांत और स्वस्थ हो जाऊं। घायल होनेके बाद भी मुझे मानसिक श्रम करते देख उन्हें दुख हो रहा था। उन्हें डर था

कि शायद मेरी तबीयतपर इसका बुरा असर पड़े। इसलिए इशारा करके और दूसरी युक्तियोंसे मेरी खाटके पाससे सबको हटा ले गये और मुझे लिखने या कोई भी काम करनेसे मनाकर दिया। मैंने प्रार्थना की और उसे लिखकर जताया कि मैं बिलकुल शांत होकर सो जाऊं, इसके पहले और इसके लिए उनकी बेटी आलिव जो उस वक्त निरी बालिका थी मेरा प्रिय अंग्रेजी भजन 'लीड काइंडली लाइट' (प्रेमल ज्योति) मुझे सुना दे। मि० डोकको मेरी यह प्रार्थना बहुत रुची। अपने मधुर हास्यसे उन्होंने मुझे इसकी सूचना दी और आलिवको इशारेसे बुलाकर आज्ञा की कि दरवाजेके बाहर खड़ी रहकर धीमे स्वरसे उक्त भजन गाये। ये पंक्तियां लिखते समय यह सारा दृश्य मेरी आंखोंके सामने फिर रहा है और आलिवका दिव्य स्वर आज भी मेरे कानोंमें गूंज रहा है।

इस प्रकरणमें मैं ऐसी बहुतसी बातें लिख गया हूं जिन्हें मैं इस प्रकरणके लिए अप्रस्तुत मानता हू और पाठक भी मानेंगे। फिर भी उनमें एक संस्मरण और बढ़ाये बिना मैं इस प्रकरण को पूरा नहीं कर सकता। इस समयके सभी सस्मरण मेरे लिए इतने पवित्र हैं कि उन्हें मैं छोड़ नहीं सकता। डोक कुटुम्बकी सेवाका वर्णन मैं किस तरह कर सकता हू ?

जोसफ डोक बैपटिस्ट सम्प्रदायके पादरी थे। उनकी उम्र उस वक्त ४६ बरसकी थी। दक्षिण अफ्रीका आनेके पहले न्यूजीलैंडमें थे। इस हमलेसे कोई छ महीने पहलेकी बात है। वह मेरे दफ्तरमें आये और अपने नामका कार्ड मेरे पास भेजा। उसमें नामके साथ 'रेवरेंड' विशेषण लगा था। इससे मैंने यह गलत अनुमान कर लिया कि जैसे कितने पादरी मुझे ईसाई बनानेके इरादेसे या लड़ाई बंद करनेके लिए समझाने आते हैं वैसे ही ये भी आये होंगे या बुजुर्ग बनकर लड़ाईमें हमदर्दी दिखाने आये होंगे। पर मि डोक अदर आये और हममें बात चीत होते दो-चार मिनिटसे अधिक न हुए होंगे कि मैंने अपनी भूल देख ली और दिल-ही-दिलमें उनसे क्षमा मांगी। उस दिनसे

हम गहरे दोस्त हो गए। अखबारोंमें लड़ाईके जो समाचार छपते थे उन सबसे उन्होंने अपनी जानकारी प्रकट की। उन्होंने कहा—"इस लड़ाईमें आप मुझे मित्र ही मानियेगा। मुझसे जो कुछ सेवा बन पड़े उसे मैं अपना धर्म समझकर करना चाहता हूं। ईसाके जीवनका चिंतन करके जो कुछ मैंने सीखा है वह यही है कि दुखियोंका दुख बटाना चाहिए।" यों हमारा परिचय हुआ और दिन दिन हमारा स्नेह-संबंध बढ़ता ही गया।

डोकका नाम इस इतिहासमें इसके बाद अनेक प्रसंगोंमें मिलेगा पर डाक-कुटुंबने मेरी जो सेवा की उसका वर्णन करते हुए इतना परिचय पाठकोंको दे देना जरूरी था। रात और दिन कोई-न-कोई तो मेरे पास मौजूद रहता ही। जितने दिन मैं वहां रहा उतने दिन उनका घर धर्मशाला बन गया था। हिंदुस्ता नियोंमें फेरी करनेवाले भी थे। उनके कपड़े मजदूरों जैसे होते वैसे भी होते जूतोंपर सेर भर धूल होती। फिर उनकी गठरी या टोकरी भी साथ होती। इन लोगोंसे लगाकर अध्यक्ष जैसों या सभी श्रेणियोंके हिंदुस्तानियोंका मि० डोकके घर मेला लग रहा था। सब मेरा हाल पूछने और जब डाक्टरकी अनुमति मिल गई तब मुझसे मिलनेके लिए आते। मि० डोक सबको समान आदर भावसे अपने दीवानखानेमें बैठाते और जबतक मेरा रहना डोक-परिवारके साथ हुआ तबतक मेरी सेवा-सुश्रुषा और मुझे देखने आनेवाले सैकड़ों लोगोंके आदर-सत्कारमें उनका सारा वक्त जाता। रातमें भी दो-तीन बार आकर चुपचाप मेरे कमरेमें झांक जाते। उनके घरमें मैं कभी यह सोच ही नहीं सका कि यह मेरा घर नहीं है और मेरा प्रिय-से-प्रिय आत्मीय भी होता तो इससे अधिक मेरी सेवा करता।

पाठक यह भी न सोचें कि हिंदुस्तानी कौमकी लड़ाईकी इतनी खुले तौरपर तरफदारी करने या मुझे अपने घरमें आश्रय देनेके कारण मि० डोकको कुछ नुकसान नहीं उठाना पड़ा। अपने पंथके गोरोंके लिए वह एक गिरजाघर चलाते थे। उनकी आजीविका इन पंथवालोंपर ही चलती थी। इन लोगोंमें सभी

उदार हृदयके होते हुए सो बात तो है नहीं। हिंदुस्तानियोंके लिए गोरोंमें जो आम नफरत है वह इनमें भी थी ही। डोकने इस बातकी परवा ही नहीं की। हमारे परिचयके प्रारंभमें ही मैंने इस नाजुक विषयकी उनके साथ चर्चा की। उनका जवाब लिखने लायक है। उन्होंने कहा— मेरे प्यारे दोस्त ईसाके धर्मको तुम कैसा मानते हो? जो आदमी अपने धर्मकी खातिर सूलीपर चढ़ा और जिसका प्रेम जगतके जितना ही विशाल था उसका मैं अनुयायी हूं। जिन गोरोंके द्वारा मेरे त्यागका तुमको भय है अगर मैं चाहता हू कि उनके सामने ईसाके अनुयायीकी हैसियतमें खड़े होकर तनिक भी शोभा पाऊं तो इस युद्धमें मुझे खुले तौरपर योग देना ही चाहिए और यह करते हुए मुझे मेरा मडल छोड़ दे तो मुझे रत्तीभर भी दुःख नहीं मानना चाहिए। मेरी रोजी उनसे मिलती है यह सही है पर तुम्हें यह तो नहीं मानना चाहिए कि मैं आजीविकाकी खातिर उनके साथ सबध रखता हूं या वे मेरी रोजी देनेवाले हैं। मेरी रोजी खुदा देता है। वे तो निमित्त मात्र हैं। उनके साथ सबध रखनेकी मेरी यह बिना कहे मानी हुई शर्त है कि मेरी धार्मिक स्वतत्रतामें उनमेसे कोई दखल नही देगा। इसलिए मेरे बारेमें तो तुम बेफिक्र रहो। मैं कुछ हिंदुस्तानियोंपर मेहरबानी करने के लिए इस लड़ाईमें शामिल नही हुआ हू। मेरा तो यह धर्म है और यह समझकर ही इसमें भाग ले रहा हूं। पर सच यह है कि अपने डीम (धर्मके मुखिया)के साथ मैंने इस बारेमें सफाई कर ली है। उन्हें मैंने विनय-पूर्वक जता दिया है कि अगर हिंदुस्तानी कौमके साथ मेरा सबध आपको न रुचता हो तो आप मुझे खुशीसे बिदा दे सकते हैं और दूसरा पादरी नियुक्त कर सकते हैं। पर उन्होंने मुझे इस विषयमें बिलकुल निश्चित कर दिया है मुझे बढ़ावा भी दिया है। फिर तुम यह भी न समझो कि सभी यूरोपियन तुम लोगोंको एकसी नफरतकी निगाहसे देखते हैं। बहुतोंकी परोक्ष रीतिसे तुम्हारे साथ कितनी हमदर्दी है, इसका अदाजा तुम्हें नहीं हो सकता पर मुझे इसका पता

होना चाहिए, यह तो तुम मानोगे ही ।

इतनी स्पष्ट बातचीत हो जानेके बाद मैंने इस विषयको फिर कभी छेड़ा ही नहीं और पीछे जब मि० डोक अपना धर्म-कार्य करते-करते देवलोक सिधारे हमारी लड़ाई उस वक्त चल ही रही थी तब उनके पंथवालों—बैपटिस्ट लोगों—ने गिरजेमें सभा की और उसमें स्व० काछलिया और दूसरे हिंदुस्तानियों तथा मुझको भी बुलाया था। उसमें मुझसे बोलनेका अनुरोध किया गया था।

मेरे अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमें कोई दस दिन लगे होंगे। ऐसी दशा हो जानेपर मैंने इस स्नेही कुटुंबसे विदा ली। हम दोनोंके लिए यह वियोग बहुत दुखदाई हो गया था।

२३

गोरे सहायक

इस लड़ाईमें इतने अधिक और प्रतिष्ठित यूरोपियनोंने हिंदुस्तानी कौमकी ओरसे आगे बढ़कर हिस्सा लिया कि इस स्थानपर उनका एक साथ परिचय करा देना अनुचित नहीं समझा जायगा। इससे आगे चलकर जब जगह-जगह उनके नाम आयेंगे तो उस वक्त पाठकोंको वे अपरिचित नहीं लगेंगे और लड़ाईके चलते वर्णनमें उनका परिचय देनेके लिए मुझको रुकना भी नहीं पड़ेगा। जिस क्रमसे मैं उनके नाम दे रहा हूं उस क्रमको पाठक उनकी प्रतिष्ठा या सहायताके मूल्यका क्रम न मानें। उसको कुछ तो उनसे परिचय होनेके कारण और कुछ लड़ाईके जिस-जिस उपविभागमें उनकी मदद मिली उसके क्रमसे रखा हुआ समझना होगा।

इनमें पहला नाम अल्बर्ट वेस्टका आता है। भारतीय जनताके साथ उनका संबंध तो लड़ाईके पहले ही जुड़ गया।

मेरा उनका वास्ता तो और भी पहलेका था। मैंने जब जोहान्स बर्गमें दफ्तर खोला तब मेरा कुटुंब मेरे साथ नहीं था। पाठकोंको याद होगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका तार पाकर १९०३ ई०में मैं यकायक रवाना हो गया था और यह भी एक बरसके अंदर लौट आनेके इरादेसे। जोहान्सबर्गमें एक निरामिष भोजन-गृह था। उसमें मैं नियमसे दोपहर और शाम को खाना खाने जाया करता था। वहां वेस्ट भी आते और वहीं हमारी जान पहचान हुई। वह एक और यूरोपियनके साझेमें छापाखाना चलाते थे।

१९०४में जोहान्सबर्गके हिंदुस्तानियोंमें भयानक प्लेग फैला। मैं पीड़ितोंकी सेवामें लग गया और उक्त भोजनगृहमें मेरा जाना अनियमित हो गया। जब जाता भी तब मेरी छूत दूसरोंको लगनेका डर न रहे इस ख्यालसे और भोजन करनेवालोंके आनेके पहले ही वहां हो आता। जब दो दिन लगातार मुझे नहीं देखा तब वेस्ट घबराये। उन्होंने अखबारोंमें देखा कि मैं प्लेग-पीड़ितोंकी सेवामें लगा हूं। तीसरे दिन सबेरे ६ बजे मैं हाथ-मुंह धो रहा था कि वेस्टने मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया। मैंने दरवाजा खोला तो वेस्टका हंसता चेहरा दिखाई दिया।

वह सुरत ही प्रसन्न होकर बोल उठे—"तुम्हें देखकर इतमीनान हुआ। तुम्हें भोजन गृहमें न देखा तो मैं घबराया। मुझसे तुम्हारी कोई मदद हो सकती हो तो जरूर कहना।

मैंने हंसकर जवाब दिया—"रोगियोंकी सेवा ?

"क्यों नहीं ? मैं जरूर तैयार हूं।

इस विनोदके बीच मैंने अपनी बात सोच ली। मैंने कहा—"आपसे मुझे दूसरे उत्तरकी आशा ही नहीं थी। पर इस काममें तो मेरे बहुतसे मददगार हैं। आपसे तो मैं इससे अधिक कठिन काम लेना चाहता हूं। मदनजीत यहीं हैं। 'इंडियन ओपीनियन'के प्रेसको कोई देखने-सम्हालनेवाला नहीं। मदनजीतको तो मैंने प्लेगके काममें लगा लिया है। आप डर्बन जायं और उस काम

को सम्हालें तो यह सच्ची सहायता होगी। इसमें कोई कमाने वाली चीज तो है ही नहीं। मैं तो आपको एक बहुत छोटी रकम ही नजर कर सकता हूं—१० पौंड प्रति मास और जो इसमें नफा हो तो उसमें आधा आपका होगा।

यह काम है तो जरा अटपटा। मुझे अपने साझीदारसे इजाजत लेनी होगी। कुछ उगाही भी वसूल करनी है। पर कोई चिंता नहीं। आज शामतककी मुहलत मुझे दे सकते हैं?

हां छः बजे हम पार्कमें मिलें।

मैं जरूर पहुंचूंगा।

इस निश्चयके अनुसार हम मिले। वेस्टने अपने साझीदारकी अनुमति भी प्राप्त कर ली। उगाहीकी वसूली मुझे सौंप दी और अगले दिन शामको डरबन रवाना हो गए। एक महीनेके अंदर उनकी रिपोर्ट मिली—"इस छापेखानेमें नफा तो है ही नहीं घाटा बहुत है। उगाही बहुत पड़ी है पर हिसाब ठीक-ठिकानेसे नहीं रखा गया है। ग्राहकोंके पूरे नाम नहीं लिखे हैं ठिकाना नहीं लिखा है। दूसरी अव्यवस्था भी बहुत है। यह सब मैं शिकायतके तौरपर नहीं लिख रहा हूं। मैं यहां नफेके लिए नहीं आया हूं। इसलिए यह ऊपर लिया हुआ काम छोड़नेका नहीं इसे पक्का समझिये। पर यह नोटिस मैं अभीसे दिये देता हूं कि आपको लंबे अरसेतक घाटा तो भरते ही जाना होगा।

मदनजीत जोहान्सबर्ग आये थे ग्राहक बनाने और छापेखानेके प्रबंधके बारेमें मुझसे बातचीत करने। मैं हर महीने प्रेसका थोड़ा-बहुत घाटा पूरा किया ही करता था। मैं यह जान लेना चाहता था कि इस मदमें और कितना पैसा डालना होगा। पाठकोंको मैं बता चुका हूं कि मदनजीतको शुरूके दिनोंमें भी छापेखानेके कामका बिल्कुल अनुभव नहीं था। इसलिए यह तो मैं शुरूसे ही सोचा करता था कि छापेखानेका काम जाननेवाले किसी आदमीको उनके साथ कर सकूं तो अच्छा हो। इस बीच प्लेग फैला और मदनजीत ऐसे कामोंमें तो बहुत कुशल और निर्भय थे। इसलिए उन्हें रोक लिया। इससे वेस्ट जब हमारा

सहायता करनेको तैयार हो गए तो मैंने इस अनपेक्षित प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन्हें यह समझा दिया कि उन्हें केवल प्लेगके दिनोंके लिए नहीं बल्कि सदाके लिए आना होगा। इसीसे उनकी उपर्युक्त प्रकारकी रिपोर्ट मिली।

पाठक जानते हैं कि अखबार और छापाखाना अन्तमें फिनिक्स गये। वहां वेस्टको माहवार १० पौंडके बदले ३ ही पौंड दिये जाने लगे। इन सारे परिवर्तनोंमें उनकी पूरी सम्मति थी। मैंने एक दिन भी उनको इसकी चिंता करते नहीं देखा कि उनकी आजीविका कैसे चलेगी। उन्होंने धर्मशास्त्र नहीं पढ़ा था फिर भी मैं उन्हें अत्यंत धार्मिक मनुष्यके रूपमें जानता हूं। वह अतिशय स्वतंत्र स्वभावके मनुष्य थे। जिस चीजको वैसी मानते वे वैसी ही कहते थे। कालेको कृष्णवर्ण न कहकर काला ही कहते। उनको रहन-सहन अत्यंत सादी थी। मुझसे परिचय होनेके समय ब्रह्मचारी थे और मैं जानता हूं कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। कुछ बरस बाद वह मां-बापके दर्शन करने विलायत गये और वहांसे ब्याह करके लौटे। मेरी सलाहसे अपनी स्त्री सास और कुंवारी बहनको साथ लाये। ये सभी फिनिक्समें निहायत सादगीसे और हर तरह हिंदुस्तानियों से घुलमिलकर रहते।

कुमारी एडावेस्ट (या देवी बहन'—हम उन्हें इसी नाम-से पुकारते थे।) इस वक्त ३५ बरसकी रही होगी पर अब भी कुमारी थीं और बहुत ही पवित्र जीवन बिताती थीं। फिनिक्स-में रहनेवाले बच्चोंको रखना उन्हें अंग्रेजी पढ़ाना सार्वजनिक रसोईमें खाना पकाना घर साफ करना हिसाब किताब रखना कंपोज करना और छापेखानेके दूसरे काम करना—इन सारे कामोंमें उन्होंने कभी आना-कानी नहीं की। इस वक्त व लोग फिनिक्समें नहीं हैं तो इसका कारण इतना ही है कि उनका छोटा-सा खर्च भी मेरे हिंदुस्तान लौट आनेके बाद छापेखानेके उठाये नहीं उठ सका। वेस्टकी सासकी उम्र ८०के ऊपर होगी। वह सिलाईका काम बहुत अच्छा जानती हैं। अतः इस

काममें यह बूढ़ा भी पूरी सहायता करतीं। फिनिक्समें उनको सब 'दादी' कहते और मानते। मिसेज वेस्टके बारेमें तो कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं। जब फिनिक्स आश्रमके बहुतसे लोग जेल चले गये तब वेस्ट-कुटुंबने मगनलाल गांधीके साथ मिलकर फिनिक्स-का काम-काज सम्हाला। अखबार और छापेखानेके बहुतसे काम वेस्ट करते। मेरी और दूसरोंकी अनुपस्थितिमें डर्बनसे गोखलेके पास भेजे जानेवाले तार वही भेजते। अंतमें जब वेस्ट भी पकड़ लिये गए (यद्यपि वह तुरंत छोड़ दिये गए) तब गोखले घबराये और एंड्रूज तथा पियर्सनको भेजा।

दूसरे हैं मि० रिच। इनके बारेमें लिख चुका हूं। ये भी लड़ाईके पहले ही मेरे दफ्तरमें दाखिल हो गए थे। मेरे पीछे मेरा काम सम्हाल सकनेकी आशासे वह बैरिस्टरी पास करने विलायत गये वहांकी कमेटी (साउथ अफ्रिकन ब्रिटिश इंडियन कमेटी) के कामकी सारी जिम्मेवारी उन्हींपर थी।

तीसरे हैं मि० पोलक। वेस्टकी तरह उनस जान-पहचान भी अनायास भोजन-गृहमें हुई। वह भी क्षणभरमें 'ट्रांसवाल क्रिटिक'के उपसंपादककी जगह छोड़कर 'इंडियन ओपीनियन' में आये। उन्होंने लड़ाईके सिलसिलेमें इंगलैंड और पूरे हिंदु स्तानमें भ्रमण किया यह तो सभी जानते हैं। रिच विलायत गये तो मैंने उन्हें फिनिक्ससे अपने दफ्तरमें बुला लिया। वहां आर्टिकल्स दिये और फिर वह भी वकील (एटर्नी) हो गए। पीछे ब्याह भी किया। मिसेज पोलकको भी हिंदुस्तान जानता है। इस बहनने लड़ाईके काममें अपने पतिका पूरा-पूरा हाथ बटाया। उसमें विघ्न कभी नहीं डाला। इस वक्त भी ये दपती असहयोगकी लड़ाईमें हमारे सहयोगी न होते हुए भी हिंदुस्तान की यथाशक्ति सेवा कर रहे हैं।

इनके बाद हर्मन केलनबेकका नंबर आता है। इनका परिचय भी लड़ाईके पहले ही हुआ। ये जातिके जर्मन हैं और अंग्रेज-जर्मनोंकी लड़ाई न छिड़ गई होती तो आज हिंदुस्तानमें होते। इनका हृदय विशाल है। इनके भोलेपनकी हद नहीं।

इनकी भावनाएं अति तीव्र हैं। इनका धंधा शिल्पीका है। ऐसा एक भी काम नहीं जिसे करनेमें इन्होंने कभी आनाकानी की हो। जब मैंने जोहान्सबर्गकी अपनी गृहस्थी तोड़ दी तब हम दोनों साथ ही रहते थे। अतः मेरा खर्च वही उठाते। घर तो इनका अपना ही था। अनेक खर्चमें मैं अपना हिस्सा देनेको कहता तो नाराज होते और यह कहकर चुप कर देते कि मुझको फिजूल खर्चोंसे बचानेवाले तो तुम्हीं हो। उनके इस कथनमें सचाई थी पर यूरोपियनोंके साथ अपने निजी संबंधोंके वर्णनका यह स्थान नहीं। गोखले जब जोहान्सबर्ग आये तब भारतीय जनताने उन्हें केलनबेकके बंगलेमें ही उतारा। यह स्थान गोखलेको बहुत पसंद आया। गोखलेको विदा करनेके लिए वह मेरे साथ जंजीबार तक गए। पोलकके साथ वह भी पकड़े गये। जेल गये और अंतमें जब दक्षिण अफ्रीकासे विदा होकर और इंगलैंडमें गोखले से मिलकर मैं हिंदुस्तान लौट रहा था तब केलनबेक मेरे साथ थे और लड़ाईके कारण ही उन्हें हिंदुस्तान आनेकी इजाजत नहीं मिली और सब जर्मनोंके साथ वह भी इंगलैंडमें नजरबंद रखे गए थे। युद्ध समाप्त होनेपर वह जोहान्सबर्गको वापस गये और अपना धंधा फिर शुरू किया। जोहान्सबर्गमें जब सत्या-ग्रही कैदियोंके कुटुंबोंको एक साथ रखनेका विचार हुआ तब केलनबेकने अपना ११०० बीघेका खेत भारतीय जनताको बिना किसी लगानके सौंप दिया। उसका विवरण पाठक आगे पढ़ेंगे।

अब एक पवित्र बालिकाका परिचय दूं। गोखलेने जो उसे प्रमाणपत्र दिया उसे पाठकोंके सामने रखे बिना मुझसे नहीं रहा जाता। इस बालिकाका नाम है मिस सोंजा श्लेजीन। इसकी कार्यशक्ति आश्चर्यजनक थी। इसको गोखले बस जंजीबारतक हमें बातें करनेको सुन्दर और शांत अवसर मिल गया था। दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानी और गोरे नेताओंका भी उन्हें अच्छा परिचय हो गया था। इन सभी मुख्य पात्रोंके चरित्रका उन्होंने सूक्ष्म निरूपण कर दिया और मुझे अच्छी तरह याद है कि मिस श्लेजीनका उन्होंने भारतीय और

मोरे सबमें प्रथम स्थान दिया था। "इसके जैसा निर्मल अंतःकरण और काममें एकाग्रता दृढ़ता मैंने बहुत ही थोड़े लोगोंमें पाई है और भारतीयोंके संग्राममें किसी भी लाभकी आशाके बिना इतना सर्वार्पण देखकर मैं तो दंग रह गया। फिर इन सारे गुणोंके साथ उसकी होशियारी और चुस्तीने तो तुम्हारी इस लड़ाईमें उसे एक अमूल्य सेविका बना दिया है। मेरे कहनेकी जरूरत तो नहीं फिरभी कह देता हूं कि उसको तुम अवश्य अपनाना।

एक स्काच कुमारिका मेरे यहां शार्टहैंड और टाइपका काम करती थी। उसकी वफादारी और नीतिमत्ता सीमा रहित थी। इस जिंदगीमें मुझे कड़वे अनुभव तो बहुतेरे हुए हैं पर सुंदर चरित्र वाले इतने अधिक यूरोपियनों और भारतीयोंसे मेरा संपर्क हुआ है कि मैं इसको सदा अपना सौभाग्य ही मानता आया हूं। इस स्काच कुमारिका मिस डिकके विवाहका अवसर आया तो मुझसे उसका वियोग हुआ। तब मि० केलनबेक मिस श्लेजीनको साथ और मुझसे कहा—"इस लड़कीको इसकी मांने मुझे सौंपा है। यह चतुर है ईमानदार है पर इसमें नट खटपन और स्वतंत्रता बहुत अधिक है। शायद कुछ उद्धत भी कही जाय। तुमसे पच सके तो इसे रखो। मैं इसे तनख्वाहकी खातिर तुम्हारे पास नहीं रखता। मैं तो अच्छे स्टेनो-टाइपिस्ट को २ पौंड माहवार देनेको तैयार था। मिस श्लेजीनकी योग्यताका मुझे पता नहीं था। मि० केलनबेकने कहा— फिलहाल तो इसे ६ पौंड प्रति मास देना। मुझे तो यह मंजूर होना ही चाहिए था।

मिस श्लेजीनके नटखटपनका अनुभव तो मुझे तुरत ही हुआ पर एक महीनेके अंदर ही उसने मुझे अपने वसमें कर लिया। रात और दिन चाहे जिस वक्त आप उसे काम दे सकते थे। उसके लिए न हो सकनेवाला या कठिन तो कुछ था ही नहीं। इस वक्त वह १६ बरसकी थी। मवक्किलों और सत्याग्रहियोंका मन भी उसने अपनी सरलता और सेवाकी तत्परता

मिस श्लेजीनको गिरफ्तार न करनेकी अपनी नीति और अपनी भलमनसीका उसने त्याग नहीं किया।

मिस श्लेजीनने अपनी ६ पौंड मासिककी वृत्तिको बढ़ानेकी न कभी मांग की और न कभी चाही। उसकी कितनी ही जरूरतों का जब मुझे पता लगा तब मैंने उसको १० पौंड देना शुरू किया। इसे भी उसने बड़ी हिचकिचाहटसे स्वीकार किया। इससे अधिक लेनेसे तो उसने साफ इंकार कर दिया— मेरी जरूरत इससे ज्यादा है ही नहीं। फिर भी मैं अधिक लूं तो जिस निष्ठासे आपके पास आई हूं वह झूठी ठहरेगी। इस जवाबसे उसने मुझे चुप कर दिया। पाठक शायद यह जानना चाहते हों कि मिस श्लेजीनकी पढ़ाई क्या थी। केप यूनीवर्सिटीकी इंटर मीडियेट परीक्षा उसने पास की थी और शार्टहैंड इत्यादिमें अव्वल दरजेका प्रमाणपत्र प्राप्त किया था। लड़ाईके कामसे छुट्टी पानेके बाद वह उसी यूनीवर्सिटीकी ग्रेजुएट हुई और इस वक्त ट्रांसवालके किसी सरकारी बालिका-विद्यालयमें प्रधाना ध्यापिका है।

हर्बर्ट किचन एक शुद्ध हृदयके और बिजलीका काम जानने वाले अंग्रेज थे। बोअर-युद्धमें उन्होंने हमारे साथ काम किया था। थोड़े दिनोंतक वह इंडियन ओपीनियनके संपादक भी रहे। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया।

ऊपर जिन लोगोंके नामगिनाये गए हैं वे तो ऐसे लोग हैं जिनसे मेरा निजी और निकटका संबंध रहा। उनकी गिनती ट्रांसवालके अग्रणी यूरोपियनोंमें नहीं की जा सकती। फिर भी कह सकता हूं कि उनसे हमें मदद भरपूर मिली। प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे मि हास्किनका स्थान पहला है। वह दक्षिण अफ्रीकाके एसोसियेशन आव चेंबर्स ऑव कामर्सके भूतपूर्व अध्यक्ष और ट्रांसवालकी धारा सभाके सदस्य थे। उनका परिचय पहले करा चुका हूं। उनकी अध्यक्षतामें सत्याग्रह-संग्राममें सहायक गोरोंका स्थायी मंडल भी स्थापित किया गया था। इस मंडलने उससे जितनी हो सकी उतनी हमारी मदद की थी। लड़ाईका सच्चा रंग जमनेके बाद

स्थानीय सरकारके साथ बातचीतका व्यवहार कैसे रह सकता? वह इसलिए नहीं कि हमने असहयोगका सिद्धांत स्वीकार किया था बल्कि सरकार ही अपने कानून तोड़नेवालोंके साथ बात चीतकी रस्म रखना पसंद नहीं करती थी। इसलिए इस वक्त गोरोंकी यह कमेटी सरकार और सत्याग्रहियोंका जोड़नेवाली कड़ी बन रही थी।

अलबर्ट कार्टराइटका परिचय भी पहले करा चुका हूं। एक और भले पादरी थे जिनका हमारे साथ डोक जैसा ही संबंध रहा और जिन्होंने हमारी बहुत मदद की। उनका नाम है रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स। ये ट्रांसवालमें अरसेतक कांग्रिगेशनल मिनिस्टर' थे। उनकी भली पत्नी भी हमारी सहायता करती। एक तीसरे प्रसिद्ध पादरी थे रेवरेंड ड्यूडनी ड्रयू जिन्होंने पादरीका काम छोड़कर पत्रका संपादकत्व स्वीकार किया था। वह ब्लोम फाटीनसे प्रकाशित होनेवाले 'फ्रेंड' नामक दैनिक पत्रके संपादक थे। उन्होंने गोरोंकी अवगणना और विरोध मोल लेकर भी अपने पत्रमें हिंदुस्तानियोंकी हिमायत की थी। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओंमें उनकी गिनती होती थी।

प्रिटोरिया न्यूज'के संपादक मि० वर स्टेंट भी इसी तरह स्वतंत्रतापूर्वक सहायता करनेवालोंमेंसे थे। एक बार प्रिटोरियाके टाउनहालमें गोरोंने वहाके मेयरके सभापतित्वमें विराट सभाका आयोजन किया था। उसका उद्देश्य एशियावासियोंका कानून और खूनी कानूनकी सराहना था। वर स्टेंटन अकेले ही इस सभामें इसके विरोधमें आवाज उठाई। सभापतिने उन्हें बैठ जानेको कहा पर उन्होंने ऐसा करनेसे साफ इनकार कर दिया। गोरोंने उनके शरीरका हाथ लगानेकी भी धमकी दी पर यह पुरुष सिंहके समान गर्जना करता उस सभामें अडिग रहा। अंतमें प्रस्ताव पास किये बिना ही सभा भंग कर देनी पड़ी।

मैं ऐसे दूसरे गोरोंके नाम भी गिना सकता हूं जो किसी भी

सत्याग्रहमें सम्मिलित नहीं हुए मगर हमारी मदद करनेका एक भी अवसर नहीं चूके। पर अधिक न लिखकर केवल तीन बहनोंका परिचय देकर ही इस प्रकरणको पूरा कर देना चाहता हूं। उनमेंसे एक हैं मिस हॉबहाउस। वह लार्ड हॉबहाउसकी बेटी थी। यह बहन बोअर-युद्धमें लार्ड मिल्नरका विरोध करके भी दक्षिण अफ्रीका पहुंची थी। जब लार्ड किचनरने दुनियाभरमें ख्यात या कहिए कि निंदित अपना 'कॉन्सेंट्रेशन कैंप'* ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें कायम किया उस वक्त यह वीर-महिला बोअर स्त्रियोंमें अकेली फिरती और उन्हें दृढ़ रहनेको समझाती और ढाढ़स देती। वह मानती थी कि बोअर-युद्धके विषयमें अंग्रेजोंकी राजनीति सोलह आने अन्यायकी है। इसलिए स्व० स्टेडकी तरह वह उनकी हार मनाती और ईश्वरसे इसके लिए प्रार्थना करती। बोअरोंकी इतनी बड़ी सेवा करनेके बाद जब उसे मालूम हुआ कि जिस अन्यायके विरुद्ध बोअरोंने तलवार उठाई थी वही अन्याय वह अज्ञानवश भारतीयोंके साथ करनेको तैयार हैं तब उससे सहन न हो सका। बोअर जनता उसके प्रति बहुत सम्मान और प्रेम रखती थी। जनरल बोथाके साथ उसका अति निकटका संबंध था। उन्हींके यहां वह ठहरा करती थी। खूनी कानूनको रद करानेके लिए बोअर लोगोंसे कहनेमें उसने कुछ उठा नहीं रखा था।

दूसरी बहन थी ऑलिव श्राइनर। इनके बारेमें मैं चौथे प्रकरणमें लिख चुका हूं। ये दक्षिण अफ्रीकाके प्रख्यात श्राइनर परिवारमें जन्मी विदुषी महिला थी। श्राइनर नाम इतना प्रसिद्ध है कि जब उनका ब्याह हुआ तब उनके पतिने यही नाम ग्रहण करना पड़ा जिसमें श्राइनर परिवारके साथ उनका संबंध [illegible] गोरोंमें लुप्त न हो जाय। यह उनका कुछ मिथ्या स्वाभिमान न था। मैं मानता हूं कि उनके साथ मेरा अच्छा परिचय था। इस बहनकी सादगी और नम्रता भी

*[illegible] बोअरोंकी स्त्रियोंको इकट्ठा करके कैदमें रखनेका पड़ाव।

वैसे ही उनका आभूषण थी वैसे उनकी विद्वता । उनके हब्शी नौकरों और खुद उनके बीच कोई अंतर है यह उन्होंने कभी नहीं माना । अंग्रेजी भाषा जहाँ-जहाँ बोली जाती है वहाँ-वहाँ उनकी 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक आदरके साथ पढ़ी जाती है । यह है तो गद्य पर काव्यकी पंक्तिमें रखी जाती है । उन्होंने और भी बहुतसी चीजें लिखी हैं । लेखनीपर इतना अधिकार होते हुए भी वह अपने हाथ से खाना पकाते घरकी सफाई करते बर्तन माँजते शर्माती नहीं थीं न उससे परहेज करती थीं । वह मानती थीं कि यह उपयोगी शरीर-श्रम उनकी लेखन शक्तिको मंद करनेके बदले उसे उत्तेजित करता है और भाषा तथा विचारोंको एक प्रकारका आत्मविश्वास और गांभीर्य प्रदान करता है । यह बहनभी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंपर जो कुछ असर डाल सकती थी उस सबका उपयोग भारतीय पक्षका समर्थन करने में किया था ।

तीसरी बहन थी मिस मोल्टीनो । यह भी दक्षिण अफ्रीकाके पुराने घरानेकी वयोवृद्ध महिला थीं । इन्होंने भी भारतीयोंकी अपनी शक्तिभर सहायता की ।

पाठक पूछ सकते हैं कि इन सारे यूरोपियनोंकी सहायता का फल क्या रहा ? इसका जवाब मैं यह दूँगा कि फल बताने के लिए यह प्रकरण नहीं लिखा गया है । उनमेंसे कुछका काम ही जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है उसके फलका साक्षी रूप है ? पर इन हितेच्छु गोरोंकी सारी सहायता—सहानुभूति का नतीजा क्या निकला यह सवाल पैदा हो सकता है । यह लड़ाई ही ऐसी थी कि उसका फल उसमें ही समाया हुआ था । यह लड़ाई थी स्वावलंबन आत्म शक्ति और भगवान पर भरोसा रखनेकी ।

गोरे सहायकोंके नाम गिना जानेका एक हेतु तो यह है कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें उनसे मिली हुई सहायताका उल्लेख न हो तो वह इस इतिहासकी कमी मानी जायगी । मैंने सभी गोरे सहायकोंके नाम नहीं दिये हैं । पर

जितने दिये हैं उतनेसे सहायक मात्रके प्रति हम अपनी कृतज्ञता इस प्रकरणमें प्रकट कर देते हैं। दूसरा कारण है इस सिद्धांतमें सत्याग्रही रूपसे अपनी श्रद्धा प्रकट करना कि यद्यपि कर्मविशेषका परिणाम हम स्पष्ट रीतिसे नहीं देख सकते हों फिर भी शुद्ध चित्तसे किये हुए कर्मका फल शुभ ही होता है, फिर वह दृश्य हो या अदृश्य। इसका तीसरा सबल कारण है यह दिखाना कि सदुद्योग ऐसी अनेक प्रकारकी शुद्ध और निःस्वार्थ सहायताएं अपनी ओर अनायास खींच लेते हैं। इस प्रकरणमें यह बात अब तक समझा नहीं दी गई हो तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि सत्याग्रहकी लड़ाईमें सत्यके पालनको ही अगर हम प्रयास मानें तो इसे छोड़कर और कोई भी प्रयास इन यूरोपीय सज्जनों की सहायता पानेके लिए नहीं किया गया। युद्धके अंतर्निहित बलसे ही वे आकृष्ट हुए थे।

२४

और भीतरी कठिनाइयां

२१वें प्रकरणमें हमें कुछ भीतरी कठिनाइयोंका अंदाजा हो गया है। मुझपर हमला होनेके समय मेरे बाल-बच्चे फिनिक्स में रहते थे। हमलेकी खबरसे उनका उद्विग्न होना स्वाभाविक था पर मुझे देखनेके लिए पैसा खर्च करके फिनिक्ससे जोहान्स बर्ग दौड़ आयें यह तो मुमकिन नहीं था। इसलिए अच्छा हो जानेपर मुझीको जाना था। नेटाल और ट्रांसवालके बीच मेरा आना जाना कामके सिलसिलेमें हुआ ही करता था। सम झौतेके बारेमें नेटालमें भी खूब भ्रम फैल रहा था इससे मैं अन जान नहीं था। मेरे और दूसरोंके पास जो चिट्ठियां आती थीं उनसे मुझे इसका पता था और 'इंडियन ओपीनियनको' जो गहरे कटाक्ष करनेवाले पत्र मिले थे उनका बंडल तो मेरे ही पास था। यद्यपि सत्याग्रह अबतक ट्रांसवालके भारतीयोंको ही करना

था तो भी नेटालके भारतीयों की सम्मति और सहानुभूति तो प्राप्त करनी ही थी। ट्रांसवालके भारतीय ट्रांसवालके निमित्तसे सारे दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाई लड़ रहे थे। इससे नेटालमें पैदा हुई गलतफहमी दूर करनेके लिए भी मेरा डर्बन जाना जरूरी था। अतः मौका मिलते ही मैं वहां गया।

डर्बनके हिंदुस्तानियोंकी आम सभा की गई। कुछ मित्रोंने मुझे चेता दिया था कि इस सभामें तुमपर हमला होने वाला है। इसलिए या तो तुम सभामें आओ ही नहीं या अपने बचावका कुछ उपाय कर लो। दोनोंमेंसे एक भी बात मुझसे हो सकनेवाली नहीं थी। नौकरको मालिक बुलाये और वह डरसे न आये तो उसका सेवक धर्म गया और मालिककी सजासे डरे तो वह सेवा कैसी? जनताकी सेवा सेवाकी खातिर करना खांडेकी धारपर चलना है। लोकसेवक स्तुति लेनेको तैयार हो जाता है तो निंदासे कैसे भाग सकता है? अत मैं तो नियत समयपर सभामें पहुंच ही गया। समझौता कैसे हुआ यह समझाया। जो सवाल किये गए उनके जवाब भी दिये।

यह सभा रातके कोई आठ बजे हुई थी। काम लगभग पूरा हो चला था कि इतनेमें एक पठान अपनी लाठी लेकर मंचपर चढ़ आया। इसी वक्त बत्तियां भी बुझ गईं। मैं स्थिति समझ गया। सभापति सेठ दाऊद मुहम्मद अपनी मेजपर चढ़ गए और लोगोंको समझाने लगे। मेरा बचाव करनेवालोंने मुझे घेर लिया। मैंने अपने बचावका कोई उपाय नहीं किया था। पर मैंने पीछे देखा कि जिन्हें हमलेका डर था वे तो सब तरहसे तैयार होकर आये थे। उनमेंसे एक तो अपनी जेबमें तमंचा रखकर आये थे और उसका खाली फैर भी किया। इस बीच पारसी रुस्तमजी जिन्होंने हमलेकी तैयारी देख ली थी बिजुली-वेगसे दौड़कर थानेपर पहुंचे और पुलिस सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडरको खबर दी। उन्होंने पुलिसका एक दस्ता भेज दिया और पुलिस गड़बड़में रास्ता करके मुझे अपने बीचमें कर पारसी रुस्तमजीके यहां ले गई।

दूसरे दिन सवेरे पारसी रुस्तमजीने डर्बनके पठानोंको इकट्ठा करके कहा कि आप लोगोंको गांधीजीसे जो कुछ शिकायतें हों उन्हें उनके सामने रखें। मैं उनसे मिला। उन्हें शांत करनेकी कोशिश की पर मैं नहीं समझता कि मैं उन्हें शांत कर सका। बहमकी दवा दलील देने या समझानेसे नहीं हो सकती। उनके मनमें यह बात जम गई थी कि मैंने कौम को धोखा दिया है और जबतक यह मैल उनके दिमागसे न निकल जाय मेरा समझाना बेकार था।

मैं उसीदिन फिनिक्स पहुंचा। जिन मित्रोंने पिछली रात मेरी रक्षा की थी उन्होंने मुझे अकेले भेजनेसे साफ इन्कार कर दिया और मुझे सुना दिया कि हम भी चलकर फिनिक्समें डेरा डालेंगे। मैंने कहा— 'आप लोग मेरी 'ना'को अनसुनी करके आना चाहेंगे तो मैं आपको रोक नहीं सकता पर वहां तो जंगल है और वहां बसनेवाले हम लोग आपको भोजन भी न दें तो आप क्या करेंगे?' उनमें से एकने जवाब दिया— 'हमें यह डर दिखानेकी जरूरत नहीं। अपना प्रबंध हम खुद कर लेंगे। पर जबतक हम सिपाहीगिरी करते होंगे तबतक आपका भंडार लूटनेसे हमें कौन रोकने वाला है?'

इस प्रकारका विनोद करते हुए हम फिनिक्स पहुंचे। इस रक्षकदलका नेता जैक मुडली नामका व्यक्ति था जो हिंदुस्तानियोंमें काफी मशहूर था। उसका जन्म नेटालमें तामिल मां बापके घर हुआ था। उसने घूंसेबाजी (बाक्सिंग) की खास तौरसे तालीम हासिल की थी और वह और उसके साथी भी मानते थे कि घूंसेबाजीमें दक्षिण अफ्रीकामें गोरा या काला कोई भी जैक मुडलीका मुकाबला नहीं कर सकता।

दक्षिण अफ्रीकामें जब बारिश न हो रही हो तब मैं बिलकुल बाहर खुलेमें सोता। अनेक वर्षोंसे मेरी यह आदत थी। इसमें कोई फेरफार करनेको मैं इस वक्त तैयार नहीं था। इससे स्वनिर्मित रक्षकदलने रातमें मेरी खाटके पास पहरा देनेका निश्चय किया। गोकि फिनिक्समें मैंने इस दलसे मजाक किया

था और उस आनेसे रोकनेकी भी कोशिश की थी फिर भी मुझे अपनी इतनी कमजोरी कबूल करनी होगी कि जब उन लोगोंने पहरा देना शुरू किया तो मैंने कुछ अधिक निर्भयता अनुभव की और मनमें यह भी सोचा कि अगर ये लोग न आये होते तो क्या मैं इतना ही निर्भय होकर सो सकता ? मुझे यह भी जान पड़ता है कि किसी आवाजसे मैं अवश्य चौंक उठता था।

मैं मानता हूं कि ईश्वरपर मेरी अविचल श्रद्धा है। मेरी बुद्धि बरसोंसे इस बातका भी स्वीकार करती आ रही है कि मृत्यु जीवनमें एक बड़ा परिवर्तन मात्र है और चाहे जब आय सदा स्वागत करने योग्य है। दिलमेंसे मौतके और दूसरे डरों को निकाल देनेका मैंने ज्ञानपूर्वक महाप्रयत्न किया है। फिर भी अपने जीवनमें ऐसे अवसर याद कर सकता हूं जब मृत्युसे मिलने का विचार करते हुए मैं वैसा उल्लसित नहीं हो सका जैसा बरसे से बिछड़े हुए मित्रसे मिलनेकी बात सोचनेपर हम हो जाया करते हैं। इस प्रकार सबल होनेका महाप्रयत्न करते हुए भी मनुष्य अक्सर निर्बल बना रहता है और बुद्धिसे गृहीत ज्ञान अनुभवका अवसर आनेपर बहुत काम नहीं आता। फिर जब उसको बाहरका सहारा मिलता है और वह उसको स्वीकार कर लेता है तब तो वह अपना अंतर्बल अधिकांशमें खो देता है। सत्याग्रहीको इस प्रकारके भयसे सदा बचते रहना चाहिए।

फिनिक्समें मैंने एक ही काम किया। गलतफहमी दूर करनेके लिए मैंने खूब लिखना शुरू किया। संपादक और शंका-शील वाचक वर्गके बीच एक कल्पित संवाद लिख डाला। जो-जो शंकाएं और आक्षेप मैंने सुन रखे थे उन सबपर जितनी तफसीलके साथ मुझसे हो सका विचार किया। मैं मानता हूं कि इसका फल अच्छा ही हुआ। यह तो प्रकट हो गया कि उन लोगोंके दिलमें गलतफहमी जड़ न जमा सकी जिनको अगर वह सचमुच हुई होती या बनी रहती तो दुःखद परिणाम होता। समझौते को मानना न मानना केवल ट्रांसवालके हिंदुस्तानियों का काम था। अतः उनके कामोंसे उनकी और नेता तथा सेवकके

रूपमें मेरी भी परीक्षा होनेवाली थी। बहुत ही थोड़े हिंदुस्तानी रहे होंगे जिन्होंने अपनी इच्छासे परवाना नहीं ले लिया हो। इतने अधिक लोग परवाना लेने आते थे कि परवाना देनेवाले अहलकारोंको दम मारनेकी फुरसत भी नहीं मिलती थी। भारतीय जनताको समझौतेकी शर्तोंमेंसे जिनका पालन करना था उनका पालन उसने बड़ी शीघ्रतासे कर दिया। सरकारको भी यह बात कबूल करनी पड़ी। मैंने यह भी देखा कि गलतफहमियोंने यद्यपि उग्र रूप ग्रहण कर लिया था फिर भी उनका क्षेत्र बहुत ही सकुचित था। कुछ पठानोंने जब कानून अपने हाथमें ले लिया और बल-प्रयोगका रास्ता पकड़ा तब भारी खलबली मच गई पर इस खलबलीका विश्लेषण करने बैठिये तो मालूम हो जायगा कि उसकी कोई बुनियाद नहीं होती और अकसर तो यह केवल क्षणिक होती है। पर यह होते हुए भी उसका जोर आज भी दुनियामें कायम है क्योंकि खूनखराबीसे हम कांप उठते हैं। पर हम धीरज के साथ विचार करने बैठें तो तुरंत मालूम हो जाय कि कांपनेका कुछ भी कारण नहीं। मान लीजिए कि मीर आलम और उसके साथियोंके प्रहारसे मेरा शरीर जख्मी होनेके बदले नष्ट हो गया होता और साथ ही यह भी मान लीजिए कि कौम बुद्धिपूर्वक अनुद्विग्न और शांत रही होती मीर आलम अपनी बुद्धिका अनुकरण करते हुए दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता था यह समझकर उसने उसके प्रति मित्रभाव और क्षमाभाव रखा होता तो इससे कौमकी कोई हानि नहीं हुई होती बल्कि अतिशय लाभ ही हुआ होता। कारण यह है कि कौममें तो उस दशामें गलतफहमीका अभाव होता और वह दूने जोशसे अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहती और अपने कर्तव्यका पालन करती। मुझे तो विशुद्ध लाभ होता क्योंकि सत्याग्रही इससे अधिक मंगल-परिणामकी तो कल्पना ही नहीं कर सकता कि अपने सत्यका आग्रह रखते हुए, सत्याग्रहके प्रसंगमें ही वह अनायास मृत्यु प्राप्त करे।

ऊपर दी हुई दलीलें सत्याग्रहकी जैसी लड़ाईपर ही लागू

हो सकती है, क्योंकि उसमें वैर-भावके लिए स्थान ही नहीं। आत्मशक्ति या स्वावलम्बन ही एकमात्र साधन होता है। उसमें एकको दूसरेका मुंह ताकते बैठे रहना नहीं होता। उसमें कोई नेता नहीं होता इसलिए कोई सेवक भी नहीं अथवा सभी नेता और सभी सेवक होते हैं। इसलिए प्रौढ़-से प्रौढ़ पुरुषकी मृत्यु भी युद्धको शिथिल नहीं करती बल्कि उसका वेग और बढ़ा देती है।

यह सत्याग्रहका शुद्ध और मूल स्वरूप है। अनुभवमें हमें इसके दर्शन नहीं होते क्योंकि सभी वैर त्याग दें यह नहीं होता सब सत्याग्रहका रहस्य समझते हों यह भी अनुभवमें देखनेमें नहीं आता। थोड़ोंको देखकर बहुसंख्यक उनका मूढ़ अनुकरण करते हैं। फिर सामुदायिक और सामाजिक सत्याग्रहका टॉल्स्टॉयका प्रयोग तो टाल्स्टायके कथनानुसार पहला ही माना जायगा। मैं खुद शुद्ध सत्याग्रहका ऐतिहासिक उदाहरण नहीं जानता था। मेरा इतिहास ज्ञान नगण्य है। इसलिए इस विषयमें मैं कोई पक्की राय कायम नहीं कर सकता। पर सच पूछिये तो ऐसे ऐतिहासिक उदाहरणोंसे हमारा कोई सबंध नहीं। सत्याग्रहके मूलतत्त्वको आप स्वीकार कर लें तो आप देखेंगे कि जो फल मैंने बताये हैं वे उसमें पहले होसे मौजूद हैं। यह दलील देकर हम इस अमूल्य वस्तुको त्याग नहीं सकते कि इसका आचरण करना कठिन या अशक्य है। शस्त्रबलके दूसरे प्रयत्न तो हजारों बरससे होते ही आ रहे हैं। उसके कड़वे फल तो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। भविष्यमें उससे मीठे फल उपजनेकी आशा थोड़ी ही रखी जा सकती है। अंधकारमेंसे अगर उजाला उत्पन्न किया जा सकता हो तो वैर-भावसे प्रेमभाव भी प्रकट किया जा सकता है।

दक्षिण अफ्रीका-

के

सत्याग्रहका इतिहास

दूसरा खंड

इस प्रकार मेरा दृढ़ विश्वास है कि जैसा दक्षिण अफ्रीकामें हुआ वैसा ही यहां भी होगा। कारण यह कि तपश्चर्यापर, सत्यपर, अहिंसापर मेरी अविचल श्रद्धा है। मैं इस बातको अक्षरशः सत्य मानता हूं कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने संपूर्ण जगतकी समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके सान्निध्यमें वैरभाव टिक नहीं सकता इस वचनको भी मैं अक्षरशः सत्य मानता हूं। कष्ट सहन करनेवालोंके लिए कुछ भी असम्भव नहीं होता इस सूत्रका मैं उपासक हूं। इन तीनों वस्तुओंका मेल मैं कितने ही सेवकोंमें पाता हूं। उनकी साधना कभी निष्फल नहीं होती मेरा यह निरपवाद अनुभव है।

पर कोई कह सकता है कि दक्षिण अफ्रीकामें पूरी जीत होनेका अर्थ तो इतना ही है कि हिंदुस्तानी जैसे थे वैसे ही बने रहे। ऐसा कहनेवाला अज्ञानी कहलायगा। दक्षिण अफ्रीकामें लड़ाई न लड़ी गई होती तो आज दक्षिण अफ्रीकासे ही नहीं बल्कि सारे अंग्रेजी उपनिवेशोंसे हिंदुस्तानियोंके कदम उठ गए होते और किसीने उनकी खोज-खबर भी न ली होती। पर यह उत्तर यथेष्ट या संतोषजनक नहीं माना जायगा। यह दलील भी दी जा सकती है कि सत्याग्रह न किया गया होता और समझाने-बुझानेसे जितना काम हो सकता था उतना काम लेकर हम बैठ गए तो आज जो स्थिति है वह नहीं होती। यह दलील यद्यपि सचाईसे खाली है फिर भी जहां केवल दलीलों और अटकलोंसे ही काम लिया जाता हो वहां किसकी दलीलें और किसके अनुमान अच्छे हैं यह कौन कह सकता है? अटकलें लगानेका हक सभीको है। जिसका जवाब नहीं दिया जा सकता जिसका खंडन नहीं किया जा सकता वैसी बात तो यह है कि जो वस्तु जिस साधनके द्वारा प्राप्त की जाती है उसकी रक्षा उसी हथियारसे हो सकती है।

काबे अर्जुन लूटियो वही धनुष वही बाण*

जिस अर्जुनने शिवजीको हराया कौरवोंका मद उतारा वही अर्जुन जब कृष्णकी सारथिसे रहित हुए तब एक डाकू दलको अपने गाण्डीव धनुषसे न हरा सके! यही स्थिति दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी है। अभी तो वे लड़ ही रहे हैं। पर जिस सत्याग्रहके द्वारा उन्होंने लड़ाई जीती थी उस हथियारको व खो बैठे हों तो अन्तमें व जीती हुई बाजी हार जायेंगे। सत्याग्रह उनका सारथि था और वही सारथि उनकी सहायता करनेमें समर्थ है।

नवजीवन
५ जुलाई १९२५

—मोहनदास करमचंद गांधी

* अर्जुनके हाथोंमें वही धनुष और वही बाण था पर डाकुओंने उन्हें लूट लिया।

'स्लेनी' कहकर पुकारते हैं। 'स्लिम'का अर्थ यहां है 'जो सरक जाय' जो पकड़में न आय। हिंदीमें उससे मिलते-जुलते अवका धूर्त या मीठा विशेषण व्यवहार करें तो विपरीत अर्थमें चालाक शब्द काममें आ सकते हैं। अनेक अंग्रेज मित्रोंने मुझसे कहा था—जनरल स्मटससे होशियार रहना। यह बड़ा काइयां है। बात कहकर पलटते उसे तनिक भी देर नहीं लगती। अपने शब्दोंका अर्थ वही जान सकता है। अकसर वह इस तरह बोलता है कि दोनों पक्ष उसके शब्दोंका वही अर्थ कर सकते हैं जो उन्हें प्रिय होता है। फिर जब मौका आता है तब वह दोनों पक्षके अर्थको किनारे रखकर अपना तीसरा ही अर्थ दिखाता है, उसको अमलमें लाता है और उसके समर्थनमें ऐसी चतुराईभरी दलीलें देता है कि दोनों पक्ष क्षणभर तो यह मानने लगते हैं कि भूल हम हीसे हुई होगी चाहिए। जनरल स्मटस जो अर्थ कर रहे हैं वही सही अर्थ है। ऐसे ही एक विषयका वर्णन मुझे इस प्रकरणमें करना है। वह घटना जिस समय घटित हुई उसी वक्त वह विश्वासघात मानी और कही गई। आज भी भारतीय समाजकी दृष्टिसे उसको मैं विश्वासघात मानता हूं। फिर भी इस शब्दके सामने मैंने जो प्रश्नचिह्न रखा है उसका कारण यह है कि उनका काम वास्तवमें शायद इरादेके साथ किया हुआ विश्वासघात न हो। जहां घातका इरादा न हो वहां विश्वास का भंग कैसे माना जा सकता है? १९१३-१४में मुझे जनरल स्मटसका जो अनुभव हुआ उसे मैंने उस वक्त कड़वा नहीं माना था और आज जब उसपर कुछ अधिक तटस्थ दृष्टिसे विचार करता हूं तब भी उसे कड़वा नहीं मान सकता। इसलिए यह सर्वथा संभव है कि १९०८में भारतीयोंके साथ उन्होंने जो व्यवहार किया वह ज्ञानपूर्वक किया हुआ वह विश्वास भंग न हो।

इतनी प्रस्तावना मैंने इसलिए दी है कि जनरल स्मटसके साथ न्याय कर सकूं और उनके नामके साथ विश्वासघात शब्द का जो मैंने व्यवहार किया है उसका और जो कुछ इस प्रकरण-

मैं मुझे कहना है उसका भी बचाव हो सके। पिछले प्रकरणमें हम देख चुके कि भारतीयोंने ऐच्छिक परवाने इस रीतिसे निकलवा लिये जिससे ट्रांसवालकी सरकारको सतोष हो जाय। अब खूनी कानूनको रद करना उक्त सरकारका फर्ज था। वह यह कर देती तो सत्याग्रहकी लड़ाई बंद हो जाती। इसका अर्थ यह नहीं है कि ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंके खिलाफ जितने कानून बने थे वे सभी रद हो जाय या हिंदुस्तानियोंके सारे दुःख दूर हो जायं। उन्हें दूर करनेके लिए तो जैसे पहले वैध आंदोलन किया जाता था वैसे करना ही था। सत्याग्रह तो खूनी कानूनरूपी नये डरावने बादलको हटाने भरके लिए था। उस कानूनको स्वीकार करनेमें कौमकी जिल्लत होती थी और पहले ट्रांसवाल और अतमें सारे दक्षिण अफ्रीकामें उसकी हस्ती ही मिट जाती थी। पर खूनी कानून रद करनेके बजाय जनरल स्मट्सने नया ही कदम उठाया। उन्होंने जो बिल प्रकाशित किया उसके जरिये खूनी कानूनको यहाल रखा और अपनी मर्जीसे लिये हुए परवाने को कानूनके अनुकूल माना। पर बिलके अंदर एक दफा ऐसी रख दी जिससे जिसने परवाना ले लिया हो उसपर खूनी कानून लागू न हो। इसके मानी यह होते थे कि एक ही उद्देश्यवाले दो कानून साथ-साथ चलते रहें और नये आनेवाले या बादमें परवाना लेनेवाले हिंदुस्तानी भी खूनी कानून द्वारा शासित हों।

यह बिल पढ़कर मैं तो दिग्मूढ़ हो गया। कौमको मैं क्या जवाब दूंगा? जिन पठान भाइयोंने पिछली मध्यरात्रिकी सभामें मुझपर कठोर आक्षेप किये थे उनको कैसी बढ़िया खुराक मिली? पर मुझे यह बता देना चाहिए कि सत्याग्रहपर मेरा विश्वास इस धक्केसे ढीला न होकर और दृढ़ हो गया। अपनी कमेटी की बैठक बुलाई और इस स्थिति समझाई। कुछने मुझे ताना भी मारा— हम तो आपसे कहते आ रहे हैं कि आप बहुत भोले हैं। जो कोई कुछ भी कह दे उसे सच मान लेते हैं। आप अपने निजी कामोंमें ही भोलापन बरतते तब तो अधिक हानि न थी पर कौमी कामोंमें जो आप यह सरलताका व्यवहार

करते हैं उससे कौमको नुकसान उठाना पड़ता है। अब पहले-का-सा जोश फिर जगना हमें तो बहुत कठिन दिखाई देता है। अपनी कौमको क्या आप नहीं जानते? वह तो सोडावाटरकी बोतल है। क्षणभरके लिए उफान आता है, उसका उपयोग कर लेना होता है। यह उफान ठंडा हुआ और सब गया। इस व्यंग्य-बाणमें विष न था। ऐसी बातें मैं दूसरे मौक़ोंपर भी सुन चुका था। मैंने हंसकर जवाब दिया—"जिसे आप मेरा भोला-पन कहते हैं वह तो ऐसी चीज है जो मेरे स्वभावका एक अंग हो गया है। यह भोलापन नहीं विश्वास है और विश्वास रखना तो मेरा और आपका सबका धर्म है। फिर भी यदि आप इसे दोष मानते हों पर अगर मेरी सेवासे कुछ लाभ होता हो तो मेरी खोट-खामीसे होनेवाली हानि भी आपको सह्य होनी चाहिए। आपकी तरह मैं यह भी नहीं मानता कि कौमका जोश सोडावाटरके उफान-जैसा है। कौममें मैं और आप भी हैं। मेरे जोशको अगर आप यह विशेषण दें तो मैं इसको अवश्य अपना अपमान मानूंगा। और मुझे विश्वास है कि आप अपनेको तो अपवादरूप ही मानते होंगे और वैसा न मानते हों और अपने पैमानेसे कौमको नापते हों तो आप कौमका अपमान करते हैं। ऐसे महान् संग्राममें ज्वार-भाटा तो आया ही करता है। आपने कितनी ही सफ़ाई कर ली हो पर विपक्षी विश्वास-घात करना ही चाहे तो उसे कौन रोक सकता है? इस मंडल-में ऐसे कितने ही लोग हैं जो मेरे पास प्रामिसरी नोट नालिश करनेके लिए लाते हैं। दस्तखत करके अपना हाथ कटा देनेसे अधिक सावधानी और क्या हो सकती है? फिर भी ऐसे लोगों पर भी अदालतमें मालिश दायर करनी पड़ती है। वे अनेक प्रकारके बचाव पेश करते हैं डिगरियां होती हैं। कुर्कियां निकलती हैं। ऐसी अयोग्य घटनाओंके लिए कौन-सी सावधानी रखी जा सकती है जिससे उनकी आवृत्ति न हो? अतः मेरी सलाह तो यही है कि जो उलझन हमारे सामने आ गई है उसे धीरजके साथ सुलझाएं। हमें फिर लड़ना ही पड़े तो हम

क्या कर सकते हैं मानी दूसरे क्या करेंगे इसको सोचे बिना हर एक सत्याग्रही खुद क्या करेगा या कर सकता है—इसीका विचार करना है। मुझे तो ऐसा लगता है कि हम इतने लोग सच्चे रहें तो दूसरे भी वैसे ही रहेंगे या उनमें कोई कमजोरी आ गई हो तो हमारी मिसाल लेकर वे उसको दूर कर सकेंगे।

मेरा खयाल है कि जिन लोगोंने फिर लड़ाई चल सकने के बारेमें नेक इरादेसे तानेके रूपमें शंका प्रकट की थी वे समझ गए। इस अवसरपर सेठ काछलिया दिन दिन अपना जौहर दिखा रहे थे। सभी विषयोंमें कम-से-कम बोलकर अपना निश्चय बता देते और फिर उसपर अटल रहते। मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नहीं आता जब उन्होंने कमजोरी दिखाई हो या अंतिम परिणामके विषयमें शंका ही प्रकट की हो। ऐसा मौका भी आया जब ईसप मियां तूफानी समुद्रमें कौमकी नैयाकी पतवार पकड़े रहनेको तैयार न थे। उस वक्त सबने एकमतसे कर्णधारके रूपमें काछलियाका स्वागत किया और उनसे अंतिम घड़ीतक उन्होंने पतवार हाथसे न छोड़ी। जो कष्ट-कठिनाइयां बिरले ही सहन कर सकते हैं उन्हें उन्होंने निश्चित और निर्भय होकर सहन किया। लड़ाई आगे बढ़ी तो एक ऐसा अवसर आया जब कितनोंके लिए जेलमें जाकर बैठ जाना आसान काम था आराम था पर बाहर रह कर सब बातोंकी बारीकी से देखना उनका प्रबंध करना बहुतों को समझाना यह सब कहीं अधिक कठिन था।

ऐसा अवसर भी आया कि सेठ काछलियाके पावनेदारोंने उन्हें अपने शिकंजेमें कस लिया।

बहुतसे भारतीय व्यापारियोंका रोजगार गोरे व्यापारियों की कोठियोंपर अवलंबित था। वे लाखों रुपयेका माल बिना किसी जमानतके हिंदुस्तानी व्यापारियोंके हाथ उधार बेच देते थे। भारतीय व्यापारियोंका इतना विश्वास संपादन कर लेना भारतीय व्यापारकी सामान्य प्रामाणिकताका एक सुंदर प्रमाण है। सेठ काछलियापर भी बहुत-सी गोरी कोठियोंका

पावना था। सरकारकी ओरसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे उकसाये जाकर इन व्यापारियोंने काछलियाको लिखा कि हमारा पावना तुरंत चुका दो। उन्होंने काछलियाको बुलाकर भी यह कहा कि आप इस लड़ाईसे अलग हो जायं तो हमें अपने पैसेकी कोई जल्दी नहीं पर आप उससे अलग न होंगे तो हमें डर है कि सरकार आपको किसी भी क्षण गिरफ्तार कर सकती है। उस दशामें हमारे पैसेका क्या होगा? इसलिए आप इस लड़ाईसे अलग हो ही न सकते हों तो हमारा पावना आपको तुरंत चुका देना चाहिए। इस वीर पुरुषने इसका यह जवाब दिया—"लड़ाईमें शामिल होना मेरी अपनी बात है मेरे व्यापार के साथ उसका कोई लगाव नहीं। इस लड़ाईमें मेरा धर्म कौमका मान और मेरा अपना आत्मसम्मान भी समाया हुआ है। आपने मुझे उधार माल दिया इसके लिए आपका अहसान मानता हूं पर इसको या अपने व्यापारको मैं सर्वोपरि नहीं मान सकता। आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहरें हैं। जबतक मैं जीवित हूं तबतक अपने-आपको बेचकर भी आपका पैसा भर सकता हूं। पर मान लीजिए कि मेरा कुछ हो गया तो भी मेरी उगाही और मेरे मालको अपने हाथमें ही समझिए। आजतक आपने मेरा विश्वास किया है और मैं चाहता हूं कि अब भी आप विश्वास करें।" यद्यपि यह दलील सोलहो आने सही थी और काछलिया की दृढ़ता गोरे व्यापारियोंके लिए विश्वासका एक अतिरिक्त कारण थी फिर भी इस वक्त उन पर उसका असर नहीं हो सकता था। हम सोते हुएको जगा सकते हैं पर जो जागते हुए सोनेका ढोंग करता हो उसको नहीं जगा सकते। गोरे व्यापारियोंके विषयमें भी यही हुआ। उन्हें तो सेठ काछलियाको दबाना था। उनके पैसेको कोई खतरा न था।

मेरे दफ्तरमें लेनदारोंकी बैठक हुई। उनको मैंने स्पष्ट शब्दोंमें बता दिया कि काछलियापर जो दबाव आप लोग डाल रहे हैं उसमें व्यापार-नीति नहीं, राजनैतिक

चाल है व्यापारियोंको बसा करना शोभा नहीं देता। इसे वे उल्टे और चिढ़ गए। सेठ काछलियाके माल और उनकी उगाहीका जो लेखा मेरे पास था वह मैंने उन्हें दिखाया और इससे यह सिद्ध किया उनका पावना पाई-पाई वसूल हो सकता है। इसके सिवा वे यह व्यापार दूसरेके हाथ बेच देना पसंद करें तो काछलिया यह सारा माल और पावना खरीदारके हवाले कर देनेको तैयार हैं। यह न करें तो जो माल दुकानमें मौजूद है उसको असल दामपर ले लें और इसमें उन्हें कुछ घाटा लगे तो उसके एवजमें जो पावना वे पसंद करें वह ले लें। पाठक समझ सकते हैं कि यह प्रस्ताव स्वीकार करनेमें गोरे व्यापारियोंको कुछ खोना न पड़ता और मैं अपने अनेक मवक्किलोंके लिए संकटकालमें पावनेदारोंके साथ ऐसा बंदोबस्त कर सका था पर व्यापारी इस मौकेपर न्याय करना नहीं चाहते थे। वे तो काछलिया को झुकाना चाहते थे। काछलिया नहीं झुके और दिवालिया कर्जदार करार दे दिये गए, जो कि उनका पावना देनेसे बहुत ज्यादा निकला।

यह दिवालियापन उनके लिए कलंकरूप नहीं बल्कि उनका भूषण था। कौममें उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और उनकी दृढ़ता और बहादुरीके लिए सबने उनको मुबारकबादी दी। पर इस प्रकारकी वीरता अलौकिक है। सामान्य मनुष्य इसको समझ ही नहीं सकता। दिवाला किस तरह दिवाला न रहकर बेइज्जती न रहकर, आदर और मान माना जा सकता है, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता। काछलियाको यही वस्तु स्वाभाविक लगी। बहुतेरे व्यापारियोंने दिवालेके डरसे ही खूनी कानूनके सामने सिर झुकाया था। काछलिया चाहते तो दिवालियेपनसे बच सकते थे। लड़ाईसे अलग होकर बचनेका उपाय तो था ही पर इस समय मैं कुछ और ही कहना चाहता हूं। बहुतसे भारतीय उनके मित्र थे। वे ऐसे संकटके समय उन्हें पैसा उधार दे सकते थे। पर ऐसा प्रबंध करके वह अपना व्यापार बचाते तो उनकी वीरता लज्जित होती। जेल जानेका

जो खतरा उनके लिए था वह तो सभी सत्याग्रहियोंके लिए था। इसलिए किसी सत्याग्रहीसे पैसे लेकर गोरोंका ऋण चुकाना उनको कदापि शोभा न देता। पर जैसे सत्याग्रही व्यापारी उनके मित्र थे वैसे ही जिन्होंने खूनी कानूनके सामने घुटने टेक दिये थे वे भी मित्र थे। उनकी मदद मिल सकती थी यह मैं जानता हूं। मेरी स्मृतिके अनुसार एक-दो मित्रोंने उनसे इसके लिए कहलाया भी पर उनकी मदद लेना तो यह मान लेने जैसा होता कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बुद्धिमानी है। अतः हम दोनोंने निश्चय किया कि उनकी मदद हमें हरगिज न लेनी चाहिए। इसके सिवा हम दोनोंने यह भी सोचा कि अगर काछलिया अपने-आपको दिवालिया करार दिया जाने दें तो उनका दिवाला दूसरोंके लिए ढालका काम देगा। कारण कि अगर सौमें नहीं तो ९९ फीसदी दिवालोंमें पावनेदार को कुछ-न-कुछ नुकसान उठाना ही पड़ता है। अतः उसे अगर रुपयेमें आठ आने मिल जायं तो वह प्रसन्न होता है और बारह आने मिल जाय तब तो वह मान लेता है कि हमारा पूरा-पावना वसूल हो गया। दक्षिण अफ्रीकाके बड़े व्यापारी आम तौर से ६। फीसदी नहीं बल्कि २५ फीसदी नफा किया करते हैं। अतः उन्हें रुपयेमें बारह आने मिल जाय तो वे इसे घाटेका रोजगार नहीं मानते। पर दिवालेमें पूरा-पूरा पावना तो शायद ही मिलता है। इसलिए कोई भी पावनेदार कर्जदारको दिवालिया बनवाना नहीं चाहता।

अतः काछलियाके दिवालेसे गोरे व्यापारियोंका दूसरोंको धमकाना तो बंद हो ही जाना चाहिए था। हुआ भी यही। गोरोंका मतलब्य यह था कि काछलियाको दबाकर युद्धसे अलग करा दें और वह ऐसा न करे तो अपना सौ फीसदी पावना उनसे वसूल करें। दोमेंसे एक भी उद्देश्य सिद्ध न हुआ उलटा प्रतिकूल परिणाम हुआ। प्रतिष्ठित भारतीय व्यापारीके दिवालियेपनका स्वागत करनेका यह पहला उदाहरण देखकर गोरे व्यापारी हतबुद्धि हो गए और सदाके लिए शांत हो गए। एक

साल्के अंदर सेठ काछलियाके मालसे गोरोंका पावना पूरा-पूरा दाम प्रति दाम वसूल हो गया। दिवालेमें पावनेदारोंको सौ फी सदी मिलनेकी मेरी जानकारीमें तो दक्षिण अफ्रीकामें यह पहली ही मिसाल थी। इससे लड़ाई जब चल रही थी उसी वक्त काछलियाका मान गोरे व्यापारियोंमें अतिशय बढ़ गया और वही व्यापारी लड़ाईके जारी रहते हुए उनको जितना माल चाहिए उतना उधार देनेको तैयार हो गए। पर काछलियाका बल तो दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। युद्धका रहस्य भी वह समझ गए। लड़ाई कितनी लम्बी होगी यह पीछेसे तो कोई कह ही न सकता था। इसलिए दिवालिया ठहराये जानेके बाद हमने तै कर लिया था कि जबतक लड़ाई चल रही है तबतक वह फिर व्यापारमें पड़ें ही नहीं। एक गरीब आदमी जितनेमें अपना खर्च चला सकता है उतना कमा लेने भर कारबार रखकर बाकी व्यापार लड़ाईके दरमियान बंद रखनेका उन्होंने निश्चय किया। इससे गोरे उन्हें जो सुभीता दे रहे थे उसका लाभ उन्होंने नहीं उठाया। पाठक इतना तो समझ ही लेंगे कि काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओंका वर्णन मैंने ऊपर किया है वे सारी इस प्रकरणमें वर्णित कमेटीकी बैठकके बाद ही नहीं घटित हुईं। पर इस प्रसंगको एक ही साथ देना ठीक समझकर यहां मैंने उन्हें दे दिया है। तिथिक्रमकी दृष्टिसे देखें तो दूसरी लड़ाई शुरू होनेके (१० सितंबर १९०८)के कुछ दिन बाद काछलिया अध्यक्ष हुए और इसके कोई पांच महीने बाद दिवालिया करार दिये गए।

अब हम कमेटीकी बैठकके नतीजेपर विचार करें। इस बैठकके बाद मैंने जनरल स्मट्सको पत्रमें लिखा कि आपका नया बिल समझौतेका भंग है। समझौतेके एक हफ्तेके अंदर उन्होंने जो भाषण दिया था उसकी ओर भी मैंने अपने पत्रमें ध्यान खींचा। उस भाषणमें उन्होंने ये शब्द कहे थे— ये लोग (एशियावासी) एशियाटिक कानून रद कर देनेके लिए मुझसे कहते हैं। मैंने उनसे कह दिया है कि जबतक सभी एशियावासी

ऐच्छिक परवाना नहीं ले लेते तबतक कानून रद नहीं किया जा सकता। अधिकारी लोग ऐसी बातोंका जवाब नहीं दिया करते जो उन्हें उलझनमें फंसा दें। देते भी हैं तो वह गोल-मटोल होता है। जनरल स्मट्स तो इस कलाके आचार्य थे। आप चाहे जितना लिखें चाहे जितना बोलें जब उनकी जवाब देनेकी इच्छा न होगी तब उनके मुंहसे आप कोई उत्तर नहीं निकलवा सकते। अपनेको मिले हुए पत्रोंका उत्तर देना ही चाहिए, यह सामान्य शिष्टाचार उनके लिए बंधनकारक नहीं था। अतः अपने पत्रों के उत्तरसे मैं कुछ भी संतोष न प्राप्त कर सका।

अपने मध्यस्थ अलबर्ट कार्टराइटसे मैं मिला। वह सुनकर स्तब्ध रह गए और कहा—"सचमुच मैं इस आदमीको समझ नहीं सकता। एशियाटिक कानून रद कर देनेकी बात मुझे अच्छी तरह याद है। मुझसे जो हो सकेगा करूंगा पर तुम जानते हो कि यह आदमी जब एक निश्चय कर लेता है तब उस पर किसीकी कुछ चलती नहीं। अखबारोंके लेखोंको तो वह कुछ गिनता ही नहीं। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी मदद तुम लोगोंके कुछ काम न आ सकेगी। मि हास्किन आदिसे भी मिला। उन्होंने जनरल स्मट्सको पत्र लिखा। उन्हें भी बहुत ही असंतोषकारक उत्तर मिला। 'विश्वासघात' शीर्षक देकर मैंने 'इंडियन ओपीनियन'में कई लेख भी लिखे पर जनरल स्मट्स उनकी परवा क्यों करने लगे? तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके लिए चाहे जैसे कड़वे विशेषण व्यवहार करो उसपर कोई असर नहीं होनेका। वह अपने सोचे हुए काम करनेमें तन मनसे लगा रहता है। जनरल स्मट्सके विषयमें दोमेंसे किस विशेषणका व्यवहार हो सकता है यह मैं नहीं जानता। मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि उनकी नीतिमें एक प्रकारकी दार्शनिकता है। जिस वक्त उनके साथ मेरा पत्र व्यवहार हो रहा था और अखबारोंमें मेरे लेख निकल रहे थे उस वक्त तो मुझे याद है कि मैंने उन्हें निष्ठुर ही माना था। पर यह युद्धका अभी पहला भाग उसका दूसरा ही बरस

था और हमारी लड़ाई तो आठ बरस चली। इस बीच मैं उनसे कितनी ही बार मिला। हमारी पीछेकी बात-चीतसे मुझे अक्सर ऐसा लगता कि जनरल स्मट्सके कार्यापनके बारेमें जो आम खयाल दक्षिण अफ्रीकामें है उसमें परिवर्तन होना चाहिए। दो बातें तो मुझे साफ दिखाई दीं अपनी राजनीतिके विषयमें उन्होंने कुछ सिद्धांत स्थिर कर रखे हैं और वे नितांत अनीतिमय तो नहीं हैं पर इसके साथ-साथ मैंने यह भी देखा कि उनके राजनीतिशास्त्रमें चालाकी और मौका पड़नेपर सत्याभासके लिए भी स्थान है।[1]

२

२

युद्धकी पुनरावृत्ति

एक ओर जनरल स्मट्ससे समझौतेकी शर्तोंका पालन करनेके लिए विनती की जा रही थी तो दूसरी ओर कौमको फिरसे जगानेका उद्योग उत्साहपूर्वक चल रहा था। अनुभव यह हुआ कि हर जगह लड़ाई फिर शुरू करने और जेल जाने को कौम तैयार थे। हर जगह सभाएं की जाने लगीं जिनमें सरकारके साथ हमारा जो पत्र-व्यवहार चल रहा था वह समझाया जाता। 'इंडियन ओपीनियन' में तो हर हफ्तेका रोजनामचा दिया ही जाता था। इससे कौमको स्थितिकी पूरी जानकारी रहती। सबको समझा दिया गया कि हमारा अपनी खुशी से परवाने लेना निष्फल सिद्ध होनेवाला है और खूनी कानून किसी तरह रद न हुआ तो हमें अपने परवाने जला डालने होंगे। इससे स्थानीय सरकारको यह मालूम हो जायगा कि हिंदुस्तानी अडिग हैं निर्भय हैं और जेल जानेको भी तैयार हैं। इस दृष्टि से हर जगह परवाने भी इकट्ठा किये जा रहे थे।

[1] ये पंक्तियां उस समय हमें मालूम हो गया है कि जनरल स्मट्स की सरदारीका भी अंत हो सकता है।—मो० क० गांधी।

जिस बिलके बारेमें हम पिछले प्रकरणमें पढ़ चुके हैं सरकारकी ओरसे उसको पास करानेकी तैयारी होने लगी। ट्रांसवालकी धारा-सभाका अधिवेशन आरंभ हुआ। भारतीयोंने उसमें आवेदनपत्र भेजा पर इसका भी नतीजा कुछ न निकला। अतमें सत्याग्रहियोंका 'अल्टिमेटम' सरकारके पास भेजा गया। 'अल्टिमेटम' के मानी होते हैं निश्चयपत्र या धमकीका पत्र जो लड़ाईके इरादेसे ही भेजा जाता है। इस शब्दका व्यवहार कौम की ओरसे नहीं किया गया बल्कि उसके निश्चयकी सूचना देने वाला जो पत्र सरकारको भेजा गया उसको जनरल स्मट्सने धारा-सभामें यही नाम दिया और साथ-साथ यह भी कहा कि जो लोग ऐसी धमकी इस सरकारको दे रहे हैं उनको उसके बलका पता नहीं है। मुझे खेद इतना ही है कि कुछ आंदोलनकारी (एजिटेटर) गरीब हिंदुस्तानियोंको उकसा रहे हैं और गरीब लोगोंमें उनका जोर हुआ तो वे बरबाद हो जायगे। अब बारोंके समाचारदाताओंने इस प्रसंगका वर्णन करते हुए लिखा था कि धारा-सभाके बहुसख्यक सदस्य अल्टिमेटमकी बात सुनकर आग-बबूला हो गए। उनकी आंखें सुर्ख हो गईं और उन्होंने जनरल स्मट्सके पेश किये हुए बिलको एकमतसे तथा उत्साह पूर्वक पास कर दिया।

उपर्युक्त अल्टिमेटममें इतनी ही बात थी—जो समझौता हिंदुस्तानी कौम और जनरल स्मट्सके बीच हुआ था उसकी स्पष्ट शर्त यह है कि हिंदुस्तानी अपनी इच्छासे परवाने ले लें तो उनको बाकायदा मान लेनेके लिए एक बिल विधान-सभामें पेश किया जायगा और एशियाटिक कानून रद कर दिया जायगा। यह तो प्रसिद्ध बात है कि हिंदुस्तानी कौमने इस रीतिसे ऐच्छिक परवाने इस तरह लिए जिससे सरकारी अधिकारियोंको संतोष हो जाय। इसलिए अब एशियाटिक कानून रद हो ही जाना चाहिए। कौमने इस बारेमें जनरल स्मट्सको बहुत लिखा। न्याय पानेके लिए जो दूसरे कानूनी उपाय किये जा सकते थे वे सब भी किये गए पर अबतक उनका सारा प्रयत्न निष्फल हुआ है। मर्यादित

विधान-सभामें पास होने ही जा रहा है। ऐसे वक्त कौममें फैली हुई बेचैनी और उसकी तीव्र भावना सरकारको बता देना नेताओंका फर्ज है। और हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि अगर समझौतेकी शर्तोंके अनुसार एशियाटिक कानून रद न कर दिया गया और ऐसा करनेके निश्चयकी सूचना कौमको अमुक अवधिके अंदर न मिल गई तो उसने जो परवाने इकट्ठा किये हैं वे जला डाले जायंगे और ऐसा करनेसे जो मुसीबतें उसपर आयंगी उनको वह विनय और दृढ़ताके साथ सहन कर लेगी।

इस पत्रको 'अल्टिमेटम' माननेका एक कारण तो यह था कि उसमें जवाब देनेके लिए एक अवधि रख दी गई थी। दूसरा कारण था गोरोंका यह आम खयाल कि हिंदुस्तानी एक जंगली कौम है। अगर हिंदुस्तानियोंको वे अपने-जैसा समझते होते तो इस चिट्ठीको विनय-पत्र मानते और उसपर ध्यान देते पर गोरोंकी यह जंगलीपनकी धारणा ही हिंदुस्तानियोंके ऊपरके जैसा पत्र लिखनेका पर्याप्त कारण था। कौमके सामने दो स्थितियां थीं एक तो यह कि जंगलीपनका आरोप स्वीकार कर दबी पड़ी रहे। दूसरी यह कि उक्त आरोपसे इंकार करनेके अमली कदम उठाये। ऐसे कदमोंमें यह पत्र पहला था। इस पत्रके पीछे उसपर अमल करनेका दृढ़ निश्चय न होता तो यह पत्र उद्धत समझा जाता और हिंदुस्तानी विचार-रहित और उजड्ड कौम है यह साबित होता।

पाठकोंके मनमें शायद यह शंका पैदा हो कि जंगली होनेसे इंकार करनेका कदम सा १९ ६में जब सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा की गई उसी वक्त उठाया जा चुका था और यदि यह सही हो तो इस पत्रमें ऐसी कौन-सी नई बात थी जिससे मैं उसको महत्त्व देता हूं और यह मानता हूं कि उसके लिखे जानेके वक्तसे कौमने जंगलीपनके आरोपको अस्वीकार करना आरंभ किया? एक दृष्टिसे यह दलील सही मानी जा सकती है, पर विशेष विचारसे मालूम होगा कि अस्वीकारका सच्चा आरंभ निश्चय पत्रसे ही हुआ। पाठकोंको याद रखना चाहिए कि सत्याग्रहकी

प्रतिज्ञाका सयोग अनायास बना। उसके बादकी जेल आदि तो उसका अनिवार्य परिणाम ही था। उसमें कौमकी प्रतिष्ठा बढ़ी पर अनजानमें। यह पत्र लिखे जानेके समय तो पूरा ज्ञान और प्रतिष्ठा का दावा करनेका पूरा इरादा था। खूनी कानूनको रद करनेका उद्देश्य तो था ही जैसे पहले वैसे अब। पर उसके साथ भाषाकी शैली काम करनेके ढंगके चुनाव आदि में फर्क था। गुलाम मालिकको सलाम करे और एक मित्र दूसरे मित्रको करे तो दोनों सलाम तो हैं ही पर दोनोंमें इतना बड़ा अंतर है कि उससे तटस्थ प्रेक्षक तुरत जान जायगा कि एक गुलाम और दूसरा दोस्त है।

अल्टिमेटम भेजते समय हम लोगोंमें यह चर्चा भी हुई थी कि अवधि नियत करके जवाब मंगाना क्या अविनय न माना जायगा? क्या इसीसे यह नहीं हो सकता कि सरकार हमारी मांग मंजूर करनेवाली हो तो भी न करे? कौमका निश्चय परोक्ष रीतिसे सरकारपर प्रकट कर देना क्या काफी न होगा? इन सब बातों पर विचार कर लेनेके बाद हम सबने एकमतसे निश्चय किया कि हम जिसको सही और मुनासिब समझें वही करें। अविनयी कहे जानेका इलजाम सिरपर आये तो उसे कबूल कर लें। सरकार जो देनेवाली हो वह झूठा रोष दिखाकर न दे तो यह जोखिम भी उठा लें। अगर हम मनुष्यरूपमें अपने आपको दूसरोंसे किसी तरह हेठा न मानते हों और यह भी मानते हों कि चाहे जितना दुख चाहे जितने दिनतक उठाना पड़े उसे सह लेनेकी शक्ति हममें है तो जो सही और सीधा रास्ता हो वही हमें स्वीकार करना चाहिए।

अब शायद पाठक यह समझ सकें कि इस बक्त जो कदम उठाया गया उसमें कुछ नवीनता और विशेषता थी। उसकी प्रतिध्वनि विधान-सभामें और बाहरके यूरोपीय मंडलोंमें भी हुई। कुछने हिंदुस्तानियोंकी हिम्मतकी सराहना की और कितने ही उनपर अति क्रुद्ध हुए। उन्होंने यह भी कहा कि हिंदुस्ता नियोंको इस गुस्ताखीकी पूरी सजा मिलनी चाहिए। उभयपक्षने

अपने व्यवहारसे हिंदुस्तानियोंके कदमका नयापन स्वीकार किया। सत्याग्रह जब आरंभ हुआ उस वक्त सच पूछिए तो यह नया कदम था। फिर भी उससे जो हलचल मची थी उसकी अपेक्षा इस पत्रसे बहुत अधिक हलचल मची। इसका एक कारण तो स्पष्ट ही है। सत्याग्रह आरंभ होनेके समय कौमकी शक्ति का अंदाजा किसीको न हुआ था। अतः उस वक्त ऐसा पत्र या उसकी भाषा हमें शोभा न देती। अब कौमकी थोड़ी-बहुत परीक्षा हो चुकी थी। सबने देख लिया था कि सामाजिक कठिनाइयोंका सामना करनेमें जो कष्ट सिरपर आयें उन्हें सह लेने की शक्ति उसमें है। अतः निश्चयपत्रकी भाषा स्वाभाविक रीतिसे उद्भूत हुई और अधिक भी अशोभनीय न लगी।

३

ऐच्छिक परवानोंकी होली

'अल्टिमेटम' या निश्चयपत्रकी अवधि उसी दिनकी रखी गई थी जिस दिन दूसरा एशियाटिक कानून विधानसभामें पास होनेवाला था। अवधि बीतनेके एक-दो घंटे बाद परवानोंको जलानेकी सार्वजनिक क्रिया करनेके लिए सभा बुलाई गई थी। सत्याग्रह-कमेटीने सोचा था कि शायद मनसोची रीतिसे सरकार का अनुकूल उत्तर मिल जाय तो भी सभा व्यर्थ न जाय। उस दशामें सरकारका अनुकूल निश्चय उसके जरिये लोगोंपर प्रकट किया जा सकता था।

कमेटीका खयाल तो यह था कि इस निश्चयपत्रका सरकार कोई जवाब ही नहीं देगी। हम सभी पहलेहीसे सभास्थानपर पहुंच गए थे। इसका प्रबंध भी कर रखा गया था कि सरकार का तारसे भी कोई जवाब आय तो वह सभामें तुरंत मिल जाय। सभाका समय चार बजेका रखा गया था। नियमानुसार वह ... [illegible] ...कों की गई थी।

सारा मैदान हिंदुस्तानियोंसे ठसाठस भर गया था। दक्षिण अफ्रीकामें हब्शी अपना खाना पकानेके लिए लोहेकी बनी चार पायोंवाली छोटी या बड़ी कड़ाई काममें लाते हैं। परवाने जलाने के लिए ऐसी ही एक कड़ाई जो बड़ी-से-बड़ी मिल सकी एक हिंदुस्तानी व्यापारीकी दुकानसे मंगा रखी गई थी। यह कड़ाई एक कोनेमें चबूतरेके ऊपर रखी गई थी।

सभाका काम शुरू करनेका समय हुआ कि इतनेमें एक स्वयंसेवक बाइसिकिलपर आ पहुंचा। उसके हाथमें तार था। यह तार सरकारका जवाब था। उसमें हिंदुस्तानी कौमके निश्चयपर खेद प्रकट किया गया था और यह भी जता दिया गया था कि सरकारके लिए अपना निश्चय बदल सकना मुमकिन नहीं। यह तार सभाको पढ़कर सुना दिया गया। सभाने उसका स्वागत किया। सरकार निश्चयपत्रकी मांगें मंजूर कर लेती तो कौमको परवानोंकी होली जलानेका शुभ-कार्य करनेका जो अवसर मिला था वह हाथसे निकल जाता। यह हर्ष योग्य माना जाय कि अयोग्य इसका निश्चय करना बहुत कठिन है। जिन-जिसने जवाबका तालियोंसे स्वागत किया उनका हेतु समझे बिना योग्यता-अयोग्यताका निर्णय नहीं हो सकता। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह हर्ष सभाके उत्साहका सुंदर लक्षण था। सभाको अपनी शक्तिका कुछ अंदाजा मिल गया था।

सभा आरंभ हुई। सभापतिने सभाको सावधान किया। सारी स्थिति समझाई। सभाने अवसरके अनुरूप प्रस्ताव स्वीकार किये। जो भिन्न भिन्न स्थितियां हमारे सामने अभी आई थीं मैंने उन्हें स्पष्ट रीतिसे समझा दिया और कहा— 'जिन लोगोंने अपने परवाने जलानेके लिए दिये हैं उनमेंसे कोई अपना परवाना वापस लेना चाहता हो तो ले सकता है। परवाने जला देनेसे ही कोई अपराध नहीं होता और जिन्हें जेल जानेका हौसला हो उनका हौसला इतनेहीसे पूरा नहीं होनेका। परवाने जला कर तो हम महज अपना यह निश्चय प्रकट करते हैं कि हमें खूनी कानूनके आगे सिर नहीं झुकाना है और परवाना दिखानेभरकी

शक्ति भी अपने पास नहीं रखना चाहते । पर जो आदमी पर वाना जलानेकी क्रियामें आज शामिल हों वह अगले ही दिन जाकर नया परवाना निकलवा लें तो कोई उनका हाथ पकड़नेवाला नहीं । जिसका ऐसा कुकर्म करनेका इरादा हो या जिसे परीक्षाके समय अपनी शक्तिके विषयमें शंका हो उसके लिए अब भी वक्त है कि अपना परवाना वापस ले ले और वह ले सकता है । इस वक्त अपना परवाना लौटा लेनेवालेके लिए लज्जाका कोई कारण नहीं । मैं तो इसको एक तरहकी हिम्मत ही मानूंगा । पर पीछेसे परवानेकी नकल लेनेमें शर्म और जिल्लत है और कौमकी हानि है । इसके सिवा कौमको यह भी समझ रखना चाहिए कि यह लड़ाई लंबी हो सकती है । हमें यह भी मालूम है कि हमारे कुछ साथी निश्चयसे गिर गए हैं। अतः स्पष्ट है कि कौमकी गाड़ी खींचनेवाले जो बाकी रह गए हैं उन्हें उतना जोर और लगाना होगा । मेरी सलाह है कि इन सारी बातोंको सोच-समझकर ही आप आनेका साहस करें ।

मेरे भाषणके बीचमें ही ये आवाजें तो आ रही थी—'हमें परवाने वापस नहीं लेने हैं उनकी होली जलाइये । अतमें मैंने कहा कि कि किसीको प्रस्तावका विरोध करना हो तो वह खड़ा हो जाय । पर कोई खड़ा न हुआ । इस सभामें मीर आलम भी हाजिर था । उसने जाहिर किया कि मुझको मारकर उसने भूल की और अपना असल परवाना जलानेके लिए दिया । ऐच्छिक परवाना तो उसने लिया ही नहीं था । मैंने मीर आलमका हाथ पकड़ा और हर्षसे दबाया । मैंने फिर उसे जताया कि मेरे मनमें तुम्हारे प्रति कभी कोई रोष नहीं था । मीर आलमके इस कामसे सभाके हर्षका ठिकाना न रहा।

कमेटीके पास दो हजारसे ऊपर परवाने जलानेके लिए आ चुके थे । उनकी गठरी उपर्युक्त कड़ाईमें झोंककर ऊपरसे मिट्टीका तेल उड़ेल दिया गया और ईसप मियांने उसे दियासलाई लगा दी । सारी सभा खड़ी हो गई और यह होली जब तक जलती रही तबतक तालियोंसे मैदानको गुंजा रखा । कुछ

लोगोंने अपने परवाने अभीतक अपने पास ही रख छोड़े थे। वे मंचपर उनकी वर्षा करने लगे। कढ़ाईमें उनकी भी आहुति कर दी गई। होलीं जलनेसे पहले तक वे क्यों नहीं दिये गए, यह पूछनेपर किसीने जवाब दिया कि हमारा ख्याल था कि जल्दे समय देनेमें अधिक शोभा है और दूसरोंपर उसका असर भी अधिक होगा। दूसरे कितनोंने सरल भावसे स्वीकार किया कि हमारी हिम्मत न होती थी और अंतिम क्षणतक यह भी सोचते थे कि शायद परवाने न जलाये जाय। पर यह होली देखकर हमसे रहा न गया। जो गति सबकी होगी वह हमारी भी हो जायगी। इस लड़ाईमें ऐसी सरल हृदयताके अनुभव हमें अनेक हुए।

लंदनके 'डेली मेल' अखबारके जोहान्सबर्गके संवाददाताने उक्त पत्रको इस सभाका विवरण भेजा। उसमें परवानोंकी होली जलानेकी तुलना उस घटनाके साथ की गई जब अमरीकाके अंग्रेजोंने विलायतसे भेजी चायकी पेटियोंको बोस्टन बंदरगाहमें जलसमाधि दे दी और इंग्लैंडके अधीन न रहनेके निश्चयकी घोषणा की। दक्षिण अफ्रीकामें १३ ० हिंदुस्तानियों-के असहाय समुदायका ट्रांसवालके बलवान राज्यसे सामना था। उधर अमरीकामें वहांके हर बातमें कुशल लाखों गोरे ब्रिटिश साम्राज्यके बलका सामना कर रहे थे। इन दोनों स्थितियोंकी तुलना करके देखनेपर 'डेलीमेल'के संवाददाताने भारतीयोंके विषयमें अतिशयोक्ति की ऐसा नहीं जान पड़ता। हिंदुस्तानी कौमका हथियार अपने सत्यपर विश्वास और भगवानके भरोसे के सिवा और कुछ न था। इसमें संदेह नहीं कि श्रद्धालुके लिए यह शस्त्र सर्वोपरि है। पर जन-समाजमें अभी यह दृष्टि नहीं आई थी और जबतक यह नहीं आती तबतक निहत्थे १३ हजार हिंदुस्तानी हर हथियारसे लैस अमरीकाके गोरोंके सामने तुच्छ गिने जायंगे पर ईश्वर तो निर्बलका ही बल है। इसलिए दुनिया इनको तुच्छ समझे यह ठीक ही है।

५

कौमपर नया सवाल उठानेका आरोप

विधानसभाकी जिस बैठकमें एशियाटिक कानून (दूसरा) पास हुआ उसीमें जनरल स्मटसने एक और बिल भी पेश किया। उसका नाम था इमिग्रंटस रिस्ट्रिक्शन एक्ट यानी नई बस्तीपर रोक लगानेवाला कानून। यह कानून सब पर लागू होता था पर उसका मुख्य उद्देश्य नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको रोकना था। इस कानूनको गढ़नेमें नेटालके वैसे ही कानूनका अनुकरण किया गया था। पर इसमें एक दफा यह थी जिनपर एशियाटिक कानून लागू होता है वे भी प्रतिबद्ध बस्तीकी व्याख्यामें आ जाय। अर्थात् परोक्ष रीतिसे उस कानूनमें ऐसी युक्ति की गई थी कि एक भी नया हिंदुस्तानी ट्रांसवालमें दाखिल न हो सके। इससे लोहा लेना तो कौमके लिए जरूरी था ही पर उसको सत्याग्रहमें शामिल करें या नहीं यह सवाल सामने खड़ा हो गया। सत्याग्रह कब और किस विषयमें करें, इस बारेमें कौम किसीके साथ बंधी हुई नहीं थी। उसकी सीमा कौमके विवेक और शक्तिमें थी। बात-बातमें कोई सत्याग्रह करे तो वह दुराग्रह होगा। वैसे ही अपनी शक्तिकी नाप-तौल किये बिना कोई इस शस्त्रका उपयोग करे और पीछे हार जाय तो इसमें भी वह खुद तो कलंकित होता ही है, इस अविवेकसे इस बजोड़ हथियारको भी दूषित करता है।

कमेटीने देखा कि हिंदुस्तानी कौमका सत्याग्रह खूनी कानूनके ही खिलाफ है। वह रद हो जाय तो बस्तीसबंधी कानून (इमिग्रंटस रिस्ट्रिक्शन एक्ट)में छिपा हुआ जहर, जो ऊपर बताया गया है, अपने आप नष्ट हो जायगा। फिर भी अगर यह सोचकर कि खूनी कानून रद हो गया तो बस्तीवाले कानूनके लिए अलग चर्चा या आंदोलनकी आवश्यकता न होगी। कौम चुप बठी रहे तो यह समझा जायगा कि हिंदुस्ता

नियोंकी नई बस्तीपर लगाये गए सारे प्रतिबंधोंको उसने स्वी कार कर लिया। इसलिए उस कानूनका तो विरोध करना ही होगा। विचार केवल इसबातका करना है कि इस संघर्षको सत्याग्रहमें शामिल करें या नहीं। कौमने सोचा कि सत्याग्रहके दौरानमें ही उसपर कोई नया हमला हो तो इस हमलेको भी सत्याग्रहमें शामिल कर लेना उसका फर्ज होगा। अशक्तिवश वैसा न किया जा सके तो यह जुदी बात है। नेताओंने देखा कि शक्तिके अभाव या न्यूनताका बहाना बनाकर हम इस जह रीली दवाकी घूंटको पी नहीं सकते इसलिए उसको भी सत्या ग्रहका विशेष बना ही लेना चाहिए।

अतः इस विषयमें स्थानीय सरकारके साथ लिखा-पढ़ी आ रंभ हुई। इससे कानूनमें कोई हेर-फेर तो नहीं हुआ पर जनरल स्मट्सको उसमें कौमको सच पूछिये तो मुझको बदनाम करने का एक नया औजार मिल गया। वह जानते थे कि जितने गोरे जाहिरा हमारी मदद करते हैं उनसे कहीं अधिकको हमदर्दी निजी तौरपर हमारे साथ है और वह हमदर्दी नष्ट की जा सकती हो तो उसकी फिक्र की जाय। उनका यह सोचना स्वाभाविक ही था। इसलिए उन्होंने मुझपर नया सवाल उठानेका इल्जाम लगाया और अपने साथ बातचीतमें तथा लिखकर भी हमारे अंग्रेज सहायकोंको बताया—"गांधीको जितना मैं पहचानता हूं उतना आप लोग नहीं पहचानते। आप उसे एक इंच दें तो वह एक हाथ मांगेगा। यह सब मैं जानता हूं। इसीलिए एशिया टिक कानूनको रद नहीं कर रहा हूं। जब उसने सत्याग्रह आरंभ किया था तब नई बस्तीकी तो कोई बात ही नहीं थी। ट्रांसवालकी रक्षाके लिए हम नये हिंदुस्तानियोंका आना रोकनेका कानून बना रहे हैं तो यह उसमें भी अपना सत्याग्रह चलाना चाहता है। ऐसी चालाकी (कनिंग) कबतक बर्दाश्त की जा सकती है? उसे जो करना हो करे भले ही एक-एक हिंदुस्तानी बरबाद हो जाय मैं एशियाटिक कानूनको रद करनेवाला नहीं और ट्रांसवाल सरकारने हिंदुस्तानियोंके विषयमें जो नीति ग्रहण की

है उसका भी त्याग नहीं किया जायगा। इस न्यायसंगत नीतिका समर्थन करना हर यूरोपियनका फर्ज है।

तनिक-सा विचार करनेसे ही यह देखा जा सकता है कि उपर्युक्त दलील सोलहो आने गैरवाजिब और नीतिविरुद्ध थी। नई बस्ती रोकनेके कानूनका जब जन्म ही नहीं हुआ था उस वक्त मैं या कौम उसका विरोध कैसे कर सकती थी? जनरल स्मट्सने मेरी चालाकीके अनुभवकी बात कही है, पर इसकी एक भी मिसाल वह पेश नहीं कर सके और मैं खुद तो जानता हू कि दक्षिण अफ्रीकामें मैं इतने बरस रहा उसमें कभी चालाकी बरतनेकी बात मुझे याद ही नहीं आती बल्कि इस मौकेपर तो मुझे आगे बढ़कर यह कहनेमें भी हिचक नहीं होती कि अपनी सारी जिंदगीमें मैंने चालाकीसे कभी काम लिया ही नहीं। मैं मानता हूं कि चालाकीसे काम लेना नीतिविरुद्ध है। इतना ही नहीं मैं तो उसे युक्तिविरुद्ध भी मानता हूं। इसलिए व्यवहार दृष्टिसे भी उसका उपयोग मैंने सदा नापसंद किया है। अपने बचावमें इतना लिखनेकी भी जरूरत मैं नहीं समझता। जिस पाठकवर्गके लिए मैं यह लिख रहा हूं उसके सामने अपने मुंहसे अपनी सफाई देते मुझे शर्म मालूम होती है। मैं चालाकीसे रहित हू इसका अनुभव अगर उन्हें अबतक न हुआ हो तो अपनी सफाईसे मैं इस विषयको सिद्ध कर ही नहीं सकता। ऊपरके वाक्य लिखनेका हेतु इतना ही है कि सत्याग्रहकी लड़ाई कैसे संकटके बीच लड़ी जा रही थी इसकी कल्पना पाठकोंको हो जाय और वे समझ लें कि कौम नीतिकी पगडंडीसे बालभर बराबर भी हट जाती तो लड़ाई कैसे खतरेमें पड़ जाती। बाजीगर जब बीस फुट ऊंचे खंभेसे लटकाई गई रस्सीपर चलता है तो उसे जैसी एकाग्र दृष्टि रखकर चलना पड़ता है—तनिक भी निगाह चूके तो दाहिने गिरे या बायें उसके लिए मौत रखी ही होती है—सत्याग्रहीको उससे भी अधिक एकाग्र दृष्टि रखकर चलना होता है। आठ बरसके लंबे कालमें मैंने यह बात सीख ली थी। जिन मित्रोंके सामने जनरल स्मट्सने उक्त आरोप लगाया था वे मुझ

अच्छी तरह पहचानते थे। अतः उनपर जनरल स्मट्स जो चाहते थे उसका उलटा ही असर हुआ। उन्होंने मेरा या मुवक्किलोंका त्याग नहीं किया बल्कि हमारी सहायता करनेमें अधिक उत्साह दिखाने लगे और कौमने पीछे देख लिया कि हमने नई बस्तीके कानूनको सत्याग्रहमें शामिल न कर लिया होता तो हम भारी मुसीबतमें पड़ जाते।

मेरे अनुभवने मुझे सिखाया है कि जिसे मैं वृद्धिका नियम कहता हूं वह हरएक शुद्ध युद्धपर घटित होता है। पर सत्याग्रहके विषयमें तो मैं इस वस्तुको सिद्धांतरूपमें मानता हूं। जैसे गंगानदी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है त्यों-त्यों अनेक नदियां आकर उसमें मिलती जाती हैं और मुहानेपर तो उसका पाट इतना चौड़ा हो जाता है कि दायें-बायें किसी ओर किनारा दिखाई नहीं देता और नावमें बैठे हुए यात्रीको विस्तारमें उसमें और समुद्रमें कोई फर्क नहीं दिखाई देता। उसी तरह सत्याग्रहकी लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है त्यों-त्यों उससे उत्पन्न होनेवाले परिणाममें वृद्धि होती जाती है। मैं मानता हूं कि सत्याग्रहका यह परिणाम अनिवार्य है। उसका कारण उसके मूल-तत्त्वमें ही विद्यमान है। कारण कि सत्याग्रहमें कम-से-कम ही अधिक-से-अधिक है। कम-से-कम में कुछ घटाना तो हो ही नहीं सकता इसलिए इससे पीछे हटा ही नहीं जा सकता और स्वाभाविक-क्रिया वृद्धिकी ही हो सकती है। दूसरी लड़ाइयां शुद्ध हों तो भी मांगमें कसौटी गुंजाइश शुरूसे ही रखी जाती है। इससे वृद्धिका नियम उनपर निरपवादरूपसे घटित हो सकता है। इस विषयमें मैंने शंका प्रकट की। पर जब कम-से-कम अधिक-से-अधिक ही हो तब वृद्धिका नियम कैसे घटित होता है, यह बात मुझे समझानी होगी। जैसे गंगा वृद्धिकी खोजमें अपनी गति छोड़ती नहीं वैसे ही सत्याग्रही भी अपनी तलवारकी धार-सरीखा रास्ता नहीं छोड़ता। पर जैसे गंगाकी धारा ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों दूसरी नदियां अपने आप आकर उसमें मिलती जाती हैं, वही बात सत्याग्रही गंगा

की भी है।

बस्तीका कानून सत्याग्रहके विषयमें शामिल कर लिया गया तो यह देखकर सत्याग्रहका सिद्धांत न जाननेवाले हिंदुस्तानियोंने आग्रह किया कि ट्रांसवालके भारतीय विरोधी सभी कानून उसमें ले लिये जायं। दूसरे कितने लोगोंने कहा कि जबतक लड़ाई चल रही है नेटाल केप कॉलोनी आरेंज फ्री स्टेट इन सबको निमंत्रित करके दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके विरोधी हरएक कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह छेड़ दिया जाय। इन दोनों बातोंमें सिद्धांत भंग था। मैंने साफ बता दिया कि जो स्थिति सत्याग्रह आरम्भ होनेके समय हमने नहीं ग्रहणकी थी वह अब मौका देखकर ग्रहण कर लें तो यह ईमानदारीके खिलाफ होगा। हमारी शक्ति कितनी ही क्यों न हो यह सत्याग्रह जिन मांगोंके लिए किया गया है उन मांगोंके पूरी हो जानेपर वह समाप्त होना ही चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस सिद्धांतपर हम दृढ़ न रहते तो जीतके बदले हमारी हार हुई होती। इतना ही नहीं जो हमदर्दी हम पा सके वह भी गंवा बैठते। इसके विपरीत जब सत्याग्रह चल रहा हो उस वक्त प्रतिपक्षी खुद नई अड़चनें पैदा करता है तो वे अपने-आप सत्याग्रहमें शामिल हो जाती हैं। सत्याग्रही जब अपनी दिशामें चला जा रहा हो उस वक्त जो चीजें उसके रास्तेमें आकर मिलती जाय उनकी उपेक्षा वह अपने सत्याग्रहका त्याग किये बिना कर ही नहीं सकता। और प्रतिपक्षी तो सत्याग्रही होता ही नहीं। सत्याग्रहके विरुद्ध सत्याग्रह करना असंभव है। इसलिए न्यूनतम और अधिकतम-का बंधन उसको होता ही नहीं। वह कोई नई बात खड़ी करके सत्याग्रहीको डराना चाहे तो डरा सकता है पर सत्याग्रही तो भयसे मुक्त हो चुका होता है। इसलिए प्रतिपक्षी नई आपत्तियां खड़ी करे तो उनके सामने भी वह अपना मंत्रोच्चार करता है और यह विश्वास रखता है कि उसकी राहमें आनेवाली सभी बाधाओंके सामने यह मंत्रोच्चार अवश्य फलदायी होगा। इसी से सत्याग्रह ज्यों-ज्यों लंबा होता है, यानी प्रतिपक्षी उसे ज्यों-

ज्यों सवा करता है त्यों-त्यों उसकी अपनी दृष्टिसे तो वह गाँठकी पूंजी ही गवाता है और सत्याग्रहीका अधिकाधिक लाभ होता है। इस नियमकी चरितार्थताके दूसरे दृष्टांत हमें इस युद्धके इतिहासमें मिलेंगे।

५

सोरावजी शापुरजी अडाजनिया

अब नई बस्तीका सवाल—इमिग्रेशन एक्ट भी लड़ाईके विषयोंमें शामिल कर लिया गया तब सत्याग्रहियोंके लिए इस अधिकारकी परीक्षा कर लेना भी जरूरी हो गया। कमेटीने तै किया था कि चाहे जिस भारतीयके जरिये यह परीक्षा नहीं कराई जायगी। खयाल यह था कि ऐसे आदमीको ट्रांसवालमें दाखिल कराके जेल-महलमें बैठा दें जो नई बस्तीके कानूनकी उन दूसरी शर्तोंको पूरा करता हो जिनसे हमारा कुछ भी विरोध नहीं है। इससे हमें यह साबित करना था कि सत्याग्रह मर्यादा-धर्म है। इस कानूनमें एक दफा इस आशयकी भी कि नये आनेवालेको यूरोपकी किसी एक भाषाका ज्ञान होना ही चाहिए। इसलिए कमेटीने अंग्रेजी जाननेवाले ऐसे हिंदुस्तानीको दाखिल करानेकी बात सोची थी जो ट्रांसवालमें पहले रह चुका हो। कितने ही हिंदुस्तानी नौजवानोंने इस परीक्षाके लिए अपने-आपको पेश किया। पर उनमेंसे सोराबजी शापुरजी अडाजनियाका नाम बतौर कसौटीके स्वीकार किया गया।

नामसे ही पाठक समझ लेंगे कि सोराबजी पारसी थे। सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी संख्या सौ से ऊपर नहीं होगी। पारसियोंके बारेमें जो मत मैंने हिंदुस्तानमें प्रकट किया है दक्षिण अफ्रीकामें भी मेरा वही मत था। सारी दुनियामें कुल मिलाकर एक लाखसे अधिक पारसी न होंगे। इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है। अपने धर्मपर

दृढ़तासे आरूढ़ है और दानशीलतामें दुनियाकी कोई भी कौम उनकी बराबरी नहीं कर सकती। इतनी ही बात इस ज्ञातिकी उत्तमताका प्रमाणपत्र है। उनमें भी सोराबजी तो काम पड़ने पर रत्न निकले। जब वह लड़ाईमें शामिल हुए उस वक्त मैं उनको कुछ यों ही मामूली-सा जानता था। लड़ाईमें शामिल होनेके विषयमें उन्होंने जो पत्र लिखे थे उन्होंने मुझपर अच्छा असर डाला था। मैं जैसे पारसियोंके गुणोंका पुजारी हूं वैसे ही जातिरूपमें उनमें जो अनेक खामियां हैं उनसे भी अनजान नहीं था और न हूं। इसलिए सच्ची परीक्षाका अवसर आनेपर सोराबजी टिक सकेंगे या नहीं इस विषयमें मेरे मनमें शका थी। पर विपक्षी इसके विरुद्ध बात कहता हो तो शकशुबहेपर अमल न करना मेरा नियम था। इसलिए मैंने तो कमटीसे यही सिफारिश की कि सोराबजीने अपने पत्रोंमें जो दृढ़ता दिखाई है उसको पक्की मान लें। और अंतमें तो सोराबजी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रही सिद्ध हुए। जिन सत्याग्रहियोंने लंबी-से-लंबी कैदें भुगतीं उनमें वह भी थे। इतना ही नहीं उन्होंने इस युद्धका इतना गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि वह जो कुछ कहें उस सबको ध्यानसे सुनना पड़ता। उनकी सलाहमें सदा दृढ़ता विवेक उदारता शांति आदिकी झलक रहती। राय कायम करनेमें वह जल्दबाजी न करते और जो कायम कर ली उसे बदलते भी नहीं। उनमें जितना पारसीपन था—और वह भरपूर था—उतना ही हिंदुस्तानीपन भी था। संकुचित जाति-अभिमानकी तो उनमें कभी गंध भी नहीं मिली। युद्ध समाप्त होनेके बाद डाक्टर मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोंमेंसे किसी को विलायत भेजकर बरिस्टर बनवानेके लिए छात्रवृत्ति दी थी। इसका चुनाव मुझीको करना था। दो-तीन योग्य भारतीय थे पर सारी मित्रमंडलीकी रायमें कोई दूसरा आदमी नहीं था जो विचारकी प्रौढ़ता और समझदारीमें सोराबजीकी बराबरी कर सके। अत वही चुने गए। ऐसे एक हिंदुस्तानीको विलायत भेजनेमें उद्देश्य यह था कि वह वापस आकर मेरी जगह ले

और कौमकी सेवा करें। कौमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोराबजी विलायत गये और बैरिस्टर बने। गोखलेसे उनका सम्पर्क तो दक्षिण अफ्रीकामें ही हो गया था। विलायतमें वह अधिक निकटका हो गया। उनका मन सोराबजीने हर लिया। उन्होंने सोराबजीसे यह आग्रह भी किया कि हिन्दुस्तान लौटनेपर भारत सेवक समिति (सरवेंट्स ऑव इंडिया सोसायटी)में शामिल हो जाओ। विद्यार्थीवर्गमें सोराबजी अतिशय प्रिय हो गए थे। वह हरएकके दुख-दर्दमें शरीक होते। विलायतके ठाट-बाट और विलासिताका उनके मनपर तनिक भी असर न हुआ। जब वह विलायत गये उनकी उम्र ३ से ऊपर थी। उनका अंग्रेजीका अभ्यास ऊंचे दरजेका नहीं था। व्याकरण आदि भूलभाल गए थे पर मनुष्यके अध्यवसायके सामने ऐसी कठिनाइयां टिक नहीं सकतीं। सोराबजीने शुद्ध विद्यार्थी-जीवन बिताया और परीक्षाओंमें पास होते गए। मेरे जमानेकी बैरिस्टरीकी परीक्षा आजकी तुलनामें आसान थी। अब तो बैरिस्टर बननेवालेको तबसे बहुत अधिक पढ़ना पड़ता है पर सोराबजीने हार न मानी। विलायतमें जब 'ऐम्बुलेंस कोर' (युद्धमें सेवाकार्य करनेवाला दस्ता) बना तो जो लोग इसमें अगुआ बने उनमें वह भी थे और अबतक उसमें बने रहे। इस दस्तेको भी सत्याग्रह करना पड़ा था। सदस्योंमेंसे बहुतेरे गिर गए। जिनके पांव अचल रहे उनमें सोराबजी सबसे आगे थे। यहां यह भी बता दूं कि इस दस्तेके सत्याग्रहमें भी हमें जय ही मिली थी।

विलायतसे बैरिस्टरी पास कर लेनेके बाद सोराबजी जोहान्सबर्ग लौटे। वहां उन्होंने सेवा और वकालत दोनों साथ साथ शुरू कर दीं। दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो चिट्ठियां मिलीं उनमें सभी सोराबजीकी तारीफ करते थे—'वह पहले जैसे सीधे-सादे थे वैसे ही अब भी हैं। आडंबर नामको नहीं। छोटे-बड़े सबके साथ हिले-मिले रहते हैं।' पर ईश्वर जैसा दयालु दिखाई देता है वैसा ही निर्दय भी लगता है। सोराबजीको

तीव्रक्षय (गैलपिंग थाइसिस) हुआ और कुछ महीनेमें वह कौम का नया प्रेम सपादन करके और उसे रोती छोड़कर चल बसे। इस तरह ईश्वरने थोड़े ही समयके बीच कौमसे दो पुरुषरत्न छीन लिये। काछलिया और सोराबजी! चुनाव करना हो तो मैं इन दोनोंमेंसे किसे प्रथम पद दे सकता हूं? मैं इनमें चुनाव कर ही नहीं सकता। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें बेजोड़ थे। जैसे काछलिया जितने शुद्ध मुसलमान थे उतने ही शुद्ध भारतीय थे वैसे ही सोराबजी भी जितने सच्चे पारसी थे उतने ही सच्चे हिंदुस्तानी थे।

यही सोराबजी सरकारको पहलेसे नोटिस देकर आज माइशके लिए ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरकार इस कदमके लिए बिलकुल तैयार न थी। इससे सोराबजीके साथ क्या कार्रवाई की जाय इसका तुरंत निश्चय न कर सकी। सोराबजीने खुले तौरपर सरहद लांघी और ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरहदपर परवानोंकी जांच करनेवाला अफसर उन्हें जानता था। सोराबजीने उससे कहा— मैं ट्रांसवालमें जान-बूझकर अपने अधिकारकी परीक्षाके लिए प्रवेश कर रहा हूं। तुम्हें मेरी अंगरेजी की परीक्षा लेनी हो तो लो और गिरफ्तार करना हो तो कर लो। अधिकारीने जवाब दिया—"मुझे मालूम है कि आप अंगरेजी जानते हैं इसलिए यह परीक्षा मुझे लेनेकी जरूरत ही नहीं। आपको गिरफ्तार करनेका मुझे हुक्म नहीं। इसलिए आप खुशीसे जहां जायमे वहां सरकारको आपको गिरफ्तार करना होगा तो करेगी।

इस प्रकार अनसोची रीतिसे सोराबजी जोहान्सबर्ग तक पहुंच गए। हम सबने उनका हर्षके साथ स्वागत किया। किसीको यह आशा नहीं थी कि सरकार ट्रांसवालकी सरहदी स्टेशन वोक्सरेस्टसे उनका एक कदम भी आगे न बढ़ने देगी। अक्सर ऐसा होता है कि जब हम अपना कदम सोच-समझ कर और निर्भय होकर तुरंत उठाते हैं तो सरकार उसका सामना करनेको तैयार नहीं होती। हरएक सरकारका यह स्वभाव

माना जा सकता है। सामान्य आंदोलनोंमें सरकारका कोई भी अधिकारी अपने महकमेको इतना अपना नहीं लेखता कि इस मामलेमें पहलेसे विचार स्थिर और व्यवस्थित कर रखे और तदनुसार तैयारी भी। फिर अधिकारीका एक ही काम नहीं होता बल्कि अनेक काम होते हैं जिनमें उसका ध्यान बट जाता है। इसके सिवा अधिकारीको अधिकारका मद होता है जिससे वह बेफिक्र रहता है और मान लेता है कि कैसा ही आंदोलन हो उसका उपाय कर लेना सत्ताधीशके बायें हाथ का खेल है। इसके विपरीत आंदोलन करनेवाला अपना ध्येय जानता हो उसके साधनको जानता हो और अपनी योजनाके बारेमें उसका मन पक्का हो तो वह तो पूरी तरह तैयार होता है और उसे एक ही कामका विचार रात दिन करना होता है। इसलिए अगर वह सही कदम पक्के तौरपर उठा सके तो वह सरकारसे सदा आगे ही रहता है। बहुतसे आंदोलन जो विफल हो जाते हैं उसका कारण सरकारकी असामान्य शक्ति नहीं बल्कि संचालकोंमें ये ऊपर बताये हुए गुणोंका अभाव होता है।

सारांश सरकारकी गफलतके कारण या जान-बूझकर की हुई वैसी योजनाके कारण सोराबजी जोहान्सबर्गतक पहुंच सके और उनके जैसे मामलेमें अधिकारीका क्या कर्तव्य है, इस की कल्पना स्थानीय अधिकारीको न थी और न इस विषयमें बड़े अफसरका आदेश मिला था। सोराबजीके इस तरह आने से कौमके उत्साहमें बहुत वृद्धि हुई। कुछ नौजवानोंको तो ऐसा जान पड़ा कि सरकार हार गई और जल्दी ही समझौता कर लेगी। ऐसा कुछ नहीं था यह उन्होंने तुरत ही देख लिया बल्कि उन्होंने यह भी देखा कि समझौता होनेके पहले शायद बहुतेरे युवकोंका आत्मबलि देनी होगी।

सोराबजीने अपने जोहान्सबर्ग आनेकी सूचना वहांके पुलिस सुपरिटेंडेंटको दी और उसके साथ यह भी लिखा कि नई बस्ती-के कानूनके अनुसार मैं अपने-आपको ट्रांसवालमें रहनेका हक-दार मानता हूं इसलिए कि मुझे अंग्रेजी भाषाका सामान्य ज्ञान

है और स्थानीय अधिकारी इसकी परीक्षा लेना चाहें तो देने को तैयार हू। इस पत्रका उन्हें कोई जवाब न मिला था। कुछ दिन बाद उसका जवाब सम्मनके रूपमें मिला।

अदालतमें मुकदमा चला। १९०८की ८वीं जुलाईको उसकी सुनवाई हुई। अदालतका कमरा भारतीय दर्शकोंसे भर गया था। मुकदमा शुरू होनेके पहले अदालतके अहातेमें उपस्थित भारतीयोंको इकट्ठा करके तात्कालिक सभा की गई। सोराबजीने उसमें जोशीला भाषण दिया। उसमें यह प्रतिज्ञा की कि जबतक हमारी विजय न हो तबतक जितनी बार जेल जाना पड़े उतनी बार जानेको तैयार रहूंगा और चाहे जो संकट आये उसे सहन करूंगा। यह अरसा इतना लंबा था कि इस बीच मैंने सोराबजीको अच्छी तरह पहचान लिया था और समझ गया था कि यह अवश्य सच्चे रत्न निकलेंगे। मुकदमा पेश हुआ। मैं वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ। सम्मनमें कई दोष थे। उन दोषोंके कारण मैंने सोराबजीके विरुद्ध निकाले हुए सम्मनको रद्द कर देनेकी मांग की। सरकारी वकीलने जवाबमें दलील पेश की पर अदालतने अगले दिन मेरी दलीलको मान कर सम्मन रद्द कर दिया और सोराबजीको रिहा कर दिया। कौम खुशीसे पागल हो गई और कह सकते हैं कि उसके पागल हो जानेका कारण भी था। दूसरा सम्मन निकाल कर फौरन ही सोराबजी पर पुनः मुकदमा चलानेकी हिम्मत तो सरकार को किस तरह हो सकती थी? और हुआ भी यही। इसलिए सोराबजी सार्वजनिक कामोंमें लग गए।

पर यह छुटकारा सदाके लिए नहीं था। सोराबजीको तुरंत चेतावनी मिली कि १० जुलाईको फिर अदालतमें हाजिर हों। उस दिन मजिस्ट्रेटने उन्हें सात दिनके अन्दर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया। अदालतका हुक्म तामील हो जानेके बाद सोराबजीने पुलिस-सुपरिंटेंडेंट मि० वरनोनको सूचना दी कि मेरा ट्रांसवालसे चले जानेका इरादा नहीं है। इसपर २० जुलाईको यह फिर अदालतके सामने लाये गए और मजिस्ट्रेट

की आज्ञा न माननेके जुर्ममें उन्हें एक महीनेकी कड़ी कैदकी सजा दी गई।

पर स्वाधीन हिंदुस्तानियोंको सरकार गिरफ्तार ही नहीं करती थी। उसने देखा कि गिरफ्तारियां जितनी ज्यादा होंगी हिंदुस्तानियोंका जोश उतना ही बढ़ता जायगा। फिर किसी मुकदमेमें किसी-न किसी काननी बारीकीके कारण भारतीय अभियुक्त छूट जाता था तो इससे भी जोश बढ़ता। सरकारको जो कानून बनाने थे वे सब पास कर चुकी थी। बहुतसे हिंदुस्तानियोंने अपने परवाने जला डाले थे पर उन्होंने परवाने लेकर ट्रांसवालमें रहनेका अपना हक तो साबित कर ही दिया था। अतः उन्हें जेल भेजनेके लिए ही उनपर मुकदमा चलानेमें सरकारको कोई फायदा नहीं दिखाई दिया और उसने यह भी सोचा कि वह खामोश रहेगी तो आंदोलन करनेवाले आंदोलनका कोई दरवाजा खुला न रहनेके कारण अपने आप मात हो जायंगे। पर सरकारका यह हिसाब गलत था। कौमने उसकी चुप्पी तोड़नेके लिए ऐसा नया कदम उठाया कि वह टूटकर ही रही और सोराबजी पर फिर मुकदमा चलाना पड़ा।

६

सेठ दाउद मुहम्मद आदिका लड़ाईमें शामिल होना

कौमने जब देखा कि सरकार खुद कुछ न करके उसको थका देना चाहती है तब दूसरा कदम उठाना उसके लिए जरूरी हो गया। सत्याग्रहीमें जबतक कष्ट सहन करनेकी शक्ति हो तबतक वह थकता ही नहीं। इसलिए कौम सरकारकी धारणा को गलत साबित कर देनेमें समर्थ थी।

नटालमें अनेक ऐसे हिंदुस्तानी बसते थे जिन्हें ट्रांसवालमें

बसनेका पुराना हक था। उन्हें व्यापारके लिए ट्रांसवालमें दाखिल होनेकी आवश्यकता नहीं थी। पर कौम मानती थी कि उन्हें यहां आनेका हक है। फिर वे थोड़ी बहुत अंग्रेजी तो जानते ही थे। इसके सिवा सोराबजी जितनी शिक्षा पाये हुए भारतीयोंके प्रवेशसे तो सत्याग्रहके नियमका किसी तरह भंग होता ही नहीं था। अत हमने दो तरहके हिंदुस्तानियोंको दाखिल करनेका निश्चय किया एक तो वे जो पहले ट्रांसवालमें रह चुके थे दूसरे व जिन्होंने खासतौरसे अंग्रेजी पढ़ी हो यानी जो शिक्षित कहे जाते हों।

इनमें सेठ दाऊद मुहम्मद और पारसी रुस्तमजी ये दो बड़े व्यापारियोंमेंसे थे और सुरेंद्रराय मेढ़ प्रागजी खंडूभाई देसाई, हरिलाल गांधी रतनसी सोढा आदि शिक्षित जनोंमेंसे थे।

सेठ दाऊद मुहम्मदका परिचय पाठकोंको करा दू। ये नेटाल इंडियन कांग्रेसके अध्यक्ष थे और उन भारतीयोंमेंसे थे जो सबसे पहले दक्षिण अफ्रीकामें पहुंचे थे। वह सूरतके सुन्नी जमात के वोहरा थे। दक्षिण अफ्रीकामें मुझे ऐसे थोड़े ही हिंदुस्तानी मिले जो चतुराईमें उनकी बराबरी कर सकें। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत अच्छी थी। अक्षरज्ञान थोड़ा ही था पर अभ्याससे अंग्रेजी और डच अच्छी बोल लेते थे। यूरोपियन व्यापारियोंके साथ अपना काम मजेसे चला लेते थे। उनकी दानशीलता विख्यात थी। उनके यहां नित्य कोई ५ मेहमानोंका खाना तो होता ही था कौमी चदोंमें उनका नाम मुखियाओंमें होता। उनके एक बेटा था जो अमूल्य रत्न था। वह चारित्र्यमें बापसे बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उसका हृदय स्फटिक मणिके समान था। इस बेटेके चारित्र्य-वेगको दाऊद सेठने कभी रोका नहीं। यह कहना अतिश योक्ति नहीं कि वह अपने पुत्रको पूजते थे। वह चाहते थे कि उनका एक भी दोष हुसेनमें न हो। उन्होंने उसे विलायत भेज कर अच्छी शिक्षा दिलाई थी पर सेठ दाऊद इस रत्नको भरी जवानीमें खो बैठे। क्षय रोगने हुसेनको पकड़ा और उसका प्राण हर लिया। यह घाव कभी भरा नहीं। हुसेनके साथ हिंदुस्तानी

कौमकी बड़ी-बड़ी आशाएं भी डूब गईं। दुसेनके लिए हिंदू-मुसलमान दाईं-बाईं आंखें थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज दाऊद सेठ भी इस लोकमें नहीं हैं। काल कब किसीको छोड़ता है?

पारसी रुस्तमजीका परिचय मैं करा चुका हूं। शिक्षित भारतीयोंमेंसे अधिकांशको पाठक जानते हैं। यह प्रकरण मैं बिना कोई पुस्तकादि अपने सामने रखे लिख रहा हूं। इस कारण कुछ नाम छूट गए होंगे। वे भाई मुझे इसके लिए माफ करेंगे। ये प्रकरण नाम अमर करनेके लिए नहीं लिखे जा रहे हैं बल्कि सत्याग्रहका रहस्य समझाने और यह बतानेके लिए लिखे जा रहे हैं कि उसकी विजय कैसे हुई। उनमें कैसे-कैसे विघ्न आये और वे किस तरह दूर किये जा सके। जहां जहां नामों और उन नामोंको धारण करनेवालोंकी चर्चा भी है वहां भी उद्देश्य यही है कि पाठक जान लें कि दक्षिण अफ्रीकामें अपढ़ कहलानेवालोंने कैसा पराक्रम किया। हिंदू मुसलमान पारसी ईसाई आदि कैसे साथ मिल सके और कैसे व्यापारियों शिक्षित वर्ग आदि ने अपने कर्तव्यका पालन किया। जहां गुणीका परिचय दिया है वहां उसका नहीं उसके गुणका स्तवन किया है।

इस प्रकार जब दाऊद सेठ अपनी सत्याग्रही सेना लेकर ट्रांसवालकी सरहदपर पहुंचे तब सरकार उनका सामना करने को तैयार थी। यह इतने बड़े दलको ट्रांसवालमें प्रवेश करने देती तो उसकी हंसी होती इसलिए उन्हें गिरफ्तार करनेमें ही छुट कारा था। वे पकड़ लिये गए। मुकदमा चला। १८ अगस्त १९०८को मजिस्ट्रेटने उन्हें सात दिनके अंदर ट्रांसवालकी सर हदसे बाहर हो जानेका हुक्म दिया। उन्होंने आज्ञाका उल्लंघन किया और २८ अगस्तको प्रिटोरियामें फिर गिरफ्तार किये गए और बिना मुकदमा चलाए ही बाहर निकाल दिए गए। ३१ तारीखको वे फिर ट्रांसवालकी सीमामें दाखिल हुए और अंतमें ८ सितंबरको वाक्सरस्टमें उन्हें ५० पौंड जुर्माना या तीन महीने की कड़ी कैदकी सजा सुनाई गई। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि

उन्होंने खुशीसे जेल जाना पसंद किया।

कौमका जोश बढ़ा। ट्रांसवालके भारतीय नेटालसे उनकी मददको आये हुए अपने भाइयोंको छुड़ा न सके तो जेलमें उनका साथ तो उन्हें देना ही चाहिए। इस विचारसे ट्रांसवालके भारतीय भी जेलकी राह ढूंढ़ने लगे। उनकी गिरफ्तारीके कितने ही रास्ते थे। ट्रांसवालमें बसनेवाला हिंदुस्तानी परवाना न दिखाये तो उसे व्यापारका परवाना न मिलेगा और परवानेके बिना व्यापार करे तो अपराधी माना जाता। नेटालसे ट्रांसवाल-की सरहदमें दाखिल होना हो तो भी परवाना दिखाना जरूरी था। न दिखानेवाला गिरफ्तार कर लिया जाता। परवाने तो जला डाले गए थे इसलिये रास्ता साफ था। दोनों रास्ते पकड़े गए। कुछ लोग बिना परवाना दिखाये फेरी करने लगे और कुछ ट्रांसवालकी सरहदमें दाखिल होते समय परवाना न दिखाकर गिरफ्तार होने लगे।

अब युद्धका रंग जमा। सबकी परीक्षा होने लगी। नेटालसे और भारतीय आये। जोहान्सबर्गमें भी धर-पकड़ शुरू हुई। स्थिति यह हो गई कि जो चाहे वह गिरफ्तार हो सकता था। जेलखाने भरे जाने लगे। नेटालसे आये हुए आक्रमणकारियोंको तीन-तीन महीनेकी सजा मिली। ट्रांसवालके फेरीवालोंको चार दिनसे लगाकर तीन महीनेतककी।

जो लोग इस तरह गिरफ्तार हुए उनमें हमारे इमाम साहब इमाम अब्दुलकादिर बावजीर भी थे। वह फेरी करके गिरफ्तार हुए थे। उनकी सजाकी शुरुआत चार दिनकी कड़ी कैदसे हुई। इनका शरीर इतना नाजुक था कि लोग उनके जेल जानेकी बात सुनकर हंसते थे। कुछ लोग आकर मुझसे कहते कि भाई इमाम साहबको न लो तो अच्छा है। वह कौमको लज्जित करेंगे। मैंने इस चेतावनीको अनसुनी किया। इमाम साहबकी शक्तिकी नाप-तौल करनेवाला मैं कौन होता था? इमाम साहब कभी नंगे पांव न चलते शौकीन थे मलायी स्त्री से ब्याह किया था पर सजा हुआ रखते और भाड़े गाड़ीके

बिना कहीं नहीं जाते थे। यह सब सच था पर उनके मनकी कौन जान सकता था? चार दिनकी सजा भुगत कर रिहा होने के बाद इमाम साहब फिर जेल गये। वहां आदर्श कैदीके रूपमें रहे कहीं मसक्कत करके भोजन करते और जिसे नित्य नयी चीजें खानेकी आदत थी वह मकईके आटेकी लपसी लाकर खुदा का शुक्र बजा लाता। इन कष्टोंसे उन्होंने हिम्मत नहीं हारी बल्कि सादगी अख्तियारकी। कैदीकी हैसियतसे उन्होंने पत्थर तोड़े झाड़ू लगाई कैदियोंकी पांतमें खड़े रहे। अंतमें फिनिक्समें पहुंचकर पानी भरने और अक्षर जोड़ने (कंपोज करने) का काम भी किया। फिनिक्स-आश्रममें रहनेवालेके लिए अक्षर जोड़नेकी कला सीख लेना जरूरी था। इमाम साहबने इस कार्यको यथाशक्ति सीख लिया था। ये इमाम साहब इन दिनों हिंदुस्तानमें अपना भाग अर्पण कर रहे हैं।

पर ऐसे तो बहुतेरे इस जेलमें शुद्ध हो गए।

जोसफ रॉयपेन बैरिस्टर केंब्रिजके ग्रेजुएट नेटालमें गिर मिटिए मां-बापके घर जन्मे थे पर साहब लोग बन गए थे। वह तो घरमें भी बूटके बिना एक कदम भी नहीं चलते थे। इमाम साहबके लिए वजू करते समय पैर धोना जरूरी था। नमाज नंगे पांव करनी चाहिए थी। बेचारे रॉयपेनको तो इतना भी नहीं करना था। उन्होने बैरिस्टरीसे छुट्टी लेकर साग-तरकारीकी टोकरी बगलमें दबाई और फेरी करके गिरफ्तार हो गए। उन्होंने भी जेल भुगती। रॉयपेनने मुझसे पूछा— पर मुझे तीसरे दरजेमें सफर करना चाहिए? मैंने जवाब दिया— 'अगर आप पहले या दूसरे दरजेमें सफर करेंगे तो मैं किसको तीसरे दरजेमें बैठाऊंगा? जेलमें आपको बैरिस्टरके रूपमें कौन पहचानेगा? जोसफ रॉयपेनके लिए यह जवाब काफी था। वह भी जेलमें चले गए।

सोलह बरसके नौजवान तो कितने ही जेलमें पहुंचे थे। मोहनलाल मानजी घेलानी तो चौदह ही बरसका था। जेलमें अधिकारियोंने हमें सतानेमें कुछ उठा नहीं रखा। पाखाने साफ

कराये। हिंदुस्तानी कैदियोंने उन्हें हंसते-हंसते साफ किया। पत्थर तुड़वाये और अल्ला या रामका नाम लेकर सत्याग्रहियों-ने उन्हें तोड़ा। तालाब खुदवाये पथरीली जमीन खुदवाई। उनकी हथेलियोंमें छाले पड़ गए, कोई-कोई असह्य कष्टसे मूर्छित भी हो गए पर किसीने हिम्मत नहीं हारी।

कोई यह न समझे कि जेलमें आपसमें झगड़े या ईर्ष्या-द्वेष नहीं होता था। ज्यादा जोरकी तकरार तो खानेको लेकर होती है पर हम उससे भी उबर गए।

मैं भी दूसरी बार गिरफ्तार हुआ। वोक्सरस्टके जेलखाने में एक वक्त हम लगभग ७५ हिंदुस्तानी कैदी इकट्ठे हो गए थे। अपनी रसोई हमने अपने हाथमें ले ली। झगड़ेका बचाव मेरे ही हाथों हो सकता था इससे मैं ही रसोइया बना। मेरे साथी प्रेमके वश मेरे हाथकी बनी कच्ची-पक्की बिना गुड़-शक्करकी पतली लपसी पी लेते थे।

सरकारने सोचा कि मुझे और कैदियोंसे अलग कर दें तो मैं भी जरा आंच खा जाऊं और दूसरे कैदी भी ढीले हो जायं पर इसका उसे कोई बढ़िया मौका नहीं मिला।

मुझे प्रिटोरियाकी जेलमें ले गये। यहां मैं तनहाईवाली कोठरीमें रखा गया जिसमें केवल खतरनाक कैदी रखे जाते हैं। सिर्फ दो बार कसरत करानेके लिए बाहर निकाला जाता। वोक्सरस्टमें हमें घी दिया जाता था, यहां वह भी नदारद। इस जेलके गौण कष्टोंके वर्णनमें मैं नहीं उलझना चाहता। जिसको उसकी जिज्ञासा हो वह 'दक्षिण अफ्रीकाके जेलके मेरे अनुभव' पुस्तक पढ़ ले।

इतनेपर भी हिंदुस्तानियोंने हार नहीं मानी। सरकार सोच-विचारमें पड़ी। जेलमें कितने हिंदुस्तानियोंको भरे? इस-से उलटा खर्च बढ़ता था। अब वह क्या करे?

७

देशनिकाला

खूनी कानूनमें तीन तरहकी सजाएं रखी गई थीं — जुर्माना, कैद और देशनिकाला। अदालतको तीनों सजाएं एक साथ देनेका अधिकार था और यह अधिकार छोटे छोटे मजिस्ट्रेटों को भी दे दिया गया था। पहले तो देशनिकालेके मानी थे अपराधीको ट्रांसवालकी हदसे बाहर नेटाल, फ्री स्टेट या डेलागोआ बे (पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका) की हदमें ले जाकर छोड़ देना। उदाहरणार्थ नेटालकी तरफसे आये हुए भारतीयोंको फोक्सरस्ट स्टेशनकी हदसे बाहर ले जाकर छोड़ देते थे। इस तरहके देशनिकालेमें थोड़ी-सी तकलीफके सिवा और कोई नुकसान न था। यह दंड तो केवल दिखावटी था। हिंदुस्तानियोंमें इससे उल्टा और ज्यादा जोश आता था।

अतः स्थानीय सरकारको हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेकी नई तरकीब सोचनी पड़ी। जेलोंमें जगह रह नहीं गई थी। सरकारने सोचा कि हिंदुस्तानियोंको अगर हिंदुस्तानतक पहुंचा सके तो वे जरूर डरकर हमारी शरण आयंगे। इसमें कुछ सचाई जरूर थी। इस प्रकार एक बड़े जत्थेको सरकारने हिंदुस्तान भेजा। इन निर्वासितोंको बहुत कष्ट सहने पड़े। खाने-पीनेको भी जो सरकार दे वही मिलता यानी भारी कष्ट था। सब डेकमें ही भेजे गए, फिर इस तरह निर्वासित होने वालोंके पास अपनी जमीन होती, दूसरी मिल्कियत होती। अपना धंधा रोजगार होता, अपने आश्रित बाल-बच्चे होते, कुछके सिरपर कर्ज भी होता। शक्ति होते यह सब गवांने दिवालिया बननेको तैयार होनेवाले लोग अधिक नहीं हो सकते थे।

यह सब होते हुए भी बहुतसे भारतीय अपने निश्चयपर अटल रहे। बहुतेरे ढीले भी पड़ गए पर उन्होंने इतना ही

किया कि अपने-आपको जान-बूझकर गिरफ्तार नहीं कराया। उनमेंसे अधिकांशने इतनी कमजोरी नहीं दिखाई कि जलाये हुए परवानोंको फिरसे निकलवा लें पर कुछने डरकर फिरसे परवाने ले लिये।

फिर भी जो लोग दृढ़ रहे उनकी संख्या नगण्य नहीं थी। उनकी बहादुरीकी हद न थी। मेरा विश्वास है कि उनमें कितने ही ऐसे थे जो हंसते-हंसते फांसीके तख्तेपर चढ़ जाते। माल जायदादकी चिंता तो उन्होंने छोड़ ही दी थी पर जो हिंदुस्तान भेज दिये गए उनमें बहुतेरे गरीब और सीधे-सादे आदमी थे। वे केवल विश्वासके बलपर ही लड़ाईमें शामिल हुए थे। उनपर इतना जुल्म होना असह्य लगा। उनकी मदद भी कैसे की जाय यह समझना कठिन था। पैसा तो अपने पास थोड़ा ही था। ऐसी लड़ाईमें पैस की मदद देने जायं तो लड़ाई ही हार जाय। उसमें लालची आदमी न घुस जायं इस डरसे पैसेका लालच एक भी आदमीको नहीं दिया जाता था। हां सहानुभूतिकी सहायता देना हमारा धर्म था।

अनुभवसे मैंने देखा है कि सहानुभूति मीठी निगाह और मीठे बोल जो काम कर सकते हैं वह पैसेसे नहीं हो सकता। पसेका लोभी भी अगर उसको हमदर्दी न मिले तो अंतमें वह, उसे त्याग देता है। इसके विपरीत जो प्रेमसे सधा हुआ है वह अनेक कष्ट सह लेनेके लिए तैयार रहता है।

अतः हमने निश्चय किया कि इन निर्वासित भाइयोंके लिए, हमदर्दी जो कुछ कर सकती है वह किया जाय। उन्हें आश्वासन दिया कि हिंदुस्तानमें आप लोगोंके लिए यथोचित प्रबंध किया जायगा। पाठकोंको जान लेना चाहिए कि इन लोगोंमेंसे बहुतेरे तो गिरमिट-मुक्त थे। हिंदुस्तानमें उनका कोई सगा-संबंधी न मिलता। कुछ तो दक्षिण अफ्रीकामें ही जन्मे भी थे। सबके लिए हिंदुस्तान परदेश-सा तो हो ही गया था। इन निराधार जनोंको समुद्रके किनारे उतारकर भटकने को छोड़ देना तो क्रूरता ही मानी जायगी। इसलिए उन्हें इस

मीमांसा दिखाया गया कि हिंदुस्तानमें उनके लिए आवश्यक प्रबंध कर दिया जायगा।

यह सब करते हुए भी जबतक उनके साथ कोई मदद गार न हो तबतक उनको शांति नहीं मिल सकती थी। देश निकाला पानेवालोंका यह पहला ही जत्था था। स्टीमर छूटने के कुछ ही घंटे बाकी रह गए थे। चुनावके लिए वक्त न था। साथियोंमेंसे भाई पी० के० नायडूपर मेरी नजर गई। मैंने पूछा—"इन गरीब भाइयोंको पहुंचाने हिंदुस्तान जा सकते हो?

'क्यों नहीं ?

"पर स्टीमर तो छूटने ही वाला है।

"छूटने दीजिये।

'पर तुम्हारे कपड़े-लत्तेका क्या होगा? खानेका क्या होगा?

'कपड़े जो पहने हूं वही काफी होंगे। खाना स्टीमरसे मिल जायगा।

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही। यह बातचीत पारसी रुस्तमजीके मकान पर हुई थी। वहीं उनके लिए कुछ कपड़े-कंबल आदि मांग-मूंगकर उन्हें रवाना किया।

"देखना रास्तेमें इन भाइयोंकी पूरी सम्हाल रखना। उन्हें सुलाकर सोना। मैं मद्रासमें श्रीनटेसन्को तार दे रहा हूं। वह जो कहें सो करना।

"मैं अपने-आपको सच्चा सिपाही साबित करनेकी कोशिश करूंगा। यह कहकर नायडू रवाना हो गए। मैंने सोच लिया कि जहां ऐसे वीर पुरुष हों वहां हार हो ही नहीं सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रीकामें ही हुआ था। हिंदुस्तानके उन्हें कभी दर्शन ही नहीं हुए थे। मैंने श्रीनटेसन्के नाम सिफारिशी चिट्ठी दी थी। उन्हें तार भी दे दिया।

यह कहना अत्युक्त न होगा कि हिंदुस्तानमें इस वक्त प्रवासी भारतीयोंके कष्टका अध्ययन करनेवाले उनकी सहा यता करनेवाले और उनके बारेमें नियमित तथा ज्ञानपूर्वक

सिखानेवाले अकेले थीनटेसन् ही थे। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार नियमित रूपसे हुआ करता था। ये निर्वासित भाई जब मद्रास पहुंचे तो थीमटेसनने उनकी पूरी मदद की। भाई नायडूके जैसे समझदार आदमीके साथ रहनेसे उन्हें भी समुचित सहायता मिली। उन्होंने नगरवासियोंसे चंदा किया और निर्वासितोंको यह मालूम नहीं होने दिया कि हम देशनिकालेका दंड पाकर यहां आये हैं।

ट्रांसवाल सरकारका यह काम जितना क्रूरता भरा था उतना ही गैरकानूनी भी था। वह खुद भी इसको जानती थी। आमतौरसे लोगोंको इस बातकी जानकारी नहीं रहती कि सरकारें अकसर जान-बूझकर अपने कानून को तोड़ा करती हैं। कठिनाईमें पड़ने पर नया कानून बनानेका समय रहता नहीं इसलिये कानूनको तोड़कर मनमानी कर लेती हैं और पीछे या तो ऐसी स्थिति पैदा करती हैं कि जिससे जनता इस बातको भूल जाय कि सरकारने कानून तोड़ा है।

सरकारके इस गैरकानूनी कामके खिलाफ हिंदुस्तानियोंने जबर्दस्त आंदोलन चलाया। हिंदुस्तानमें भी शोर मचाया और ट्रांसवाल सरकारके लिए इस तरह गरीब हिंदुस्तानियोंको देशनिकाला देना कठिन हो गया। हिंदुस्तानियोंको जो कानूनी कार्रवाइयां करनी चाहिए थीं वे सब उन्होंने कीं। अपीलें कीं और उनमें भी उनकी जीत हुई। अतमें निर्वासितोंको ठेठ हिंदुस्तान भेजनेकी प्रथा बंद हुई।

पर इसका असर सत्याग्रही सेनापर पड़े बिना न रहा। अब उसमें सच्चे योद्धा ही रह गए। 'सरकार कहीं पकड़कर हिंदुस्तान न भेज दे' इस भयका त्याग सब नहीं कर सके।

कौमका उत्साह भंग करनेके लिए सरकारने यही एक काम नहीं किया। पिछले प्रकरणमें बता चुका हूं कि सत्याग्रही कैदियोंको दुःख देनेमें उसने जरा भी कसर नहीं रखी। उनसे पत्थर तुड़वाने तकके काम कराये जाते। इतनेसे भी आगे

सरकार बढ़ गई। पहले सभी कैदी साथ रखे जाते थे। अब उन्हें अलग-अलग रखनेकी नीति ग्रहण की गई और हर जेलमें उन्हें खूब तकलीफ दी गई। ट्रांसवालका जाड़ा बहुत सख्त होता है। ठंड इतनी अधिक होती है कि सबेरे काम करते हुए हाथ अकड़ जाते हैं। इससे कैदियोंके लिए जाड़ेके दिन बहुत कठिन हो गया। ऐसी दशामें कुछ कैदी एक छोटीसी जेलमें रखे गए जहां कोई उनसे मिलने भी नहीं आ सकता। इस जत्थेमें स्वामी नागप्पा नामका एक १७ बरसका नौजवान सत्याग्रही था। वह जेलके नियमोंका पालन करता और जो काम उसे सौंपा जाता पूरा करता। सबेरे पौ फटते ही उसे सड़कपर मिट्टी कूटनेकेलिए ले जाते थे। इससे उसे फेफड़ेके शोथ (डबल निमोनिया)का कठिन रोग हो गया और अंतमें ७ जुलाई १९ १को उसने अपने प्रिय प्राणोंकी बलि दे दी। नागप्पाके साथियोंका कहना है कि अंतिम क्षणतक वह लड़ाई की ही बात सोचता करता रहा। जेल जानेका उसे कभी पछतावा न हुआ। देशकी खातिर मिली हुई मौतको उसने इस तरह गले लगाया जैसे कोई मित्रसे मिलता है। हमारे पैमानेसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर कहना होगा। अंग्रेजी जुलू आदि भाषाएं वह अभ्याससे बोल लेता था। अंग्रेजी टूटी-फूटी लिख भी लेता हो पर उसे विद्वानोंकी पंक्तिमें तो नहीं ही बिठा सकते थे। फिर भी नागप्पाके धीरज उसकी शांति उसकी देशभक्ति आमरणांत बनी रहनेवाली उसकी दृढ़ताका विचार करें तो क्या उसके विषयमें और कुछ चाहने लायक रह जायगा? बड़े विद्वानोंके न मिलनेपर भी ट्रांसवालकी लड़ाई चल सकी पर नागप्पा जैसे सिपाही न मिले होते तो क्या वह चल सकती थी?

जैसे नागप्पाकी मृत्यु जेलके कष्टोंसे हुई वैसे ही नारायन स्वामीकी देशनिकालेसे हुई (१६ अक्तूबर १९१)। देशनिकालेकी तकलीफें उसकी मौत साबित हुई। पर इन घटनाओंसे कौममे हिम्मत न हारी। हां कमजोर दिलवाले

मैदानसे खिसक गए। पर व भी अपनी शक्तिभर कुर्बानी दो कर ही चुके थे। कमजोर जानकर हमें उनकी अवगणना नहीं करनी चाहिए। हममें यह रिवाज हो गया है कि आगे बढ़ जानेवाले पीछे छूटनेवालोंका तिरस्कार करते और अपनेको बड़ा वीर मानते हैं। हकीकत अकसर इसकी उल्टी होती है। जिसकी शक्ति पचास रुपये देनेकी हो वह पच्चीस देकर बठ जाय और पांच देनेकी शक्ति रखनेवाला पूरे पांच हाजिर कर दे तो हम यही मानेंगे कि पांच देनेवालेने अधिक दिया। फिर भी पच्चीस देनेवाला पांच देनेवालेके सामने अकसर इतराता है। पर हम जानते हैं कि उसके इतरानेका कोई भी कारण नहीं। यसे ही अपनी निर्बलताके कारण भाग न ले सकनेवाला अगर अपनी सारी शक्ति खर्च कर चुका हो और शक्ति पूरा रखनेवाला उस माप-तौलमें उससे अधिक शक्ति लगा रहा हो तो भी पहला उससे अधिक योग्य है। इसलिए जो लोग युद्धके अधिक कठोर होनेपर बैठ रहे उन्होंने भी देशकी सेवा तो की ही। अब यह वक्त आया जब अधिक सहनशक्ति और अधिक हिम्मतकी आवश्यकता थी। इसमें भी ट्रांसवालके मारवाड़ी पीछे न रहे। युद्ध जारी रखनेके लिए जितनेकी जरूरत थी उतने तो रहे ही।

इस तरह हिंदुस्तानियोंकी दिन दिन अधिक कठिन परीक्षा होने लगी। ज्यों-ज्यों वे अधिक बल प्रकट करते त्यों-त्यों सरकार भी और ज्यादा ताकत काममें लाती। खतरनाक कैदियों के लिए या जिन्हें खास तौरसे सीधा करना होता है उनके लिए हर देशमें कुछ खास कैदखाने रखे जाते हैं। ट्रांसवालमें भी ऐसा ही था। ऐसे एक जेलखानेका नाम 'डायपक्लूफ' था। वहां का दारोगा भी सख्त, वहाकी मशक्कत भी सख्त। फिर भी उसको भी पूरा कर देनेवाले कैदी मिल गए। व मशक्कत करने को तैयार थ पर अपमान सहनेको तैयार नहीं थे। दारोगाने उनका अपमान किया इसलिए उन्होंने उपवास आरम्भ किया। शर्त यह थी—"जबतक तुम इस दारोगाको नहीं हटाते या हमारी जेल नहीं बदलते तबतक हम अन्न ग्रहण नहीं करेंगे।

यह उपवास शुद्ध था। उपवास करनेवाले ऐसे आदमी नहीं थे जो छिपे तौरपर कुछ खा-पी लेते हों। पाठकोंको जान लेना चाहिए कि ऐसे मामलेमें यहां हिंदुस्तानमें जो आंदोलन हो सकता है ट्रांसवालमें उसके लिए अधिक अवकाश नहीं था। वहांके जेल-नियम भी अधिक कड़े थे। ऐसे समयमें भी कैदियोंको देखने जानेका वहां रिवाज नहीं था। सत्याग्रही जब जेलमें पहुंच गया तब आमतौरसे उसे अपनी फिक्र खुद करनी पड़ती। यह लड़ाई गरीबोंकी थी और गरीबोंके तरीकेसे चलाई जा रही थी। अतः ऐसी प्रतिज्ञाकी जोखिम बहुत बड़ी थी फिर भी ये सत्याग्रही दृढ़ रहे। उस वक्तका उनका कार्य आजकी तुलनामें अधिक स्तुत्य गिना जायगा क्योंकि उस समय जनमतकी आदत लोगोंको नहीं पड़ी थी। पर ये सत्याग्रही अडिग रहे और उनकी जीत हुई। सात दिनके उपवासके बाद उन्हें दूसरी जल-में भेजनेका हुक्म आ गया।

८ :

फिर शिष्ट-मंडल

इस प्रकार सत्याग्रहियोंको जेलमें ठूंसने और देशनिकाला देनेका चक्र चल रहा था। इसमें ज्वारभाटा आता रहता। दोनों पक्ष कुछ ढीले भी हो रहे थे। सरकारने देखा कि जेलोंको भरनेसे पक्के सत्याग्रही हारनेवाले नहीं। देशनिकालेसे उसकी बदनामी होती थी। मामले अदालतमें पहुंचते तो उनमें उसकी हार भी होती थी। हिंदुस्तानी भी जोरदार मुकाबलेके लिए तैयार नहीं थे। न इतने सत्याग्रही अब रह ही गए थे। कुछ थक गए थे कुछने बिलकुल हिम्मत हार दी थी और अपने निश्चय पर अटल रहनेवालोंको मूर्ख समझते थे। पर ये मूर्ख अपने आपको बुद्धिमान मानकर भगवान और अपनी लड़ाई तथा उसके साधनोंकी सचाईपर पूरा भरोसा रखे हुए बैठे थे। ये

विलायत गया था। यह सत्याग्रहके सिलसिलेमें नहीं बल्कि नेटालमें हिंदुस्तानियोंको जो विशेष कष्ट और कठिनाइयां थीं उनकी बात कहने गया था।

इस वक्त लार्ड क्रू उपनिवेश मंत्री थे और लार्ड मोर्लेसे भारत मंत्री। खूब बातचीत हुई। हम बहुतोंसे मिले। जितने पत्रोंके संपादकों और साधारण या उमरावोंकी सभाके सदस्यों से हम मिल सकते थे उनमेंसे एकसे भी मिले बिना नहीं रहे। लार्ड एम्प्टहिलके बारेमें कह सकता हूं कि उन्होंने हमारी बेहद मदद की। वह मि मेरीमेन जनरल बोथा आदिसे मिला करते थे और अंतमें जनरल बोथाका एक संदेसा भी लाये। उन्होंने कहा— 'जनरल बोथा आपकी भावनाको समझते हैं। आपकी छोटी मांगें मंजूर कर लेनेको तैयार हैं पर एशियाटिक कानून रद्द करने और दक्षिण अफ्रीकामें नये आदमियोंके आने के सबधके कानूनमें अदल-बदल करनेको तैयार नहीं हैं। आप चाहते हैं कि कानूनमें जो काले-गोरेका भेद किया गया है वह दूर कर दिया जाय। उनको इससे इंकार है। भेद रखना उनके लिए सिद्धांतरूप है और शायद वह सोचते हैं कि मैं इस भेद को दूर कर भी दूं तो दक्षिण अफ्रीकाके गोरे इस बातको कभी सहन नहीं करेंगे। जनरल स्मट्सकी राय भी जनरल बोथाकी जैसी ही है। दोनों कहते हैं कि यह हमारा अंतिम निर्णय और अंतिम प्रस्ताव है। आप इससे अधिक मांगेंगे तो आप दुखी होंगे और आपकी कौम भी दुखी होगी। अतः आप जो निर्णय करें सोच-समझकर करें। जनरल बोथाने मुझसे कहा है कि आपसे यह कह दूं और आपकी जिम्मेदारीका खयाल आपको करा दूं।'

यह संदेसा सुनानेके बाद लार्ड एम्प्टहिलने कहा— 'देखिए, आपकी सारी व्यावहारिक मांगें तो जनरल बोथा [illegible] ...र इस दुनियामें हमें कहीं लेना और कहीं [illegible] ...म जो चाहते हैं वह सब तो हमें मिल [illegible] ...। मेरी अपनी सलाह यही है कि

आप इस प्रस्तावको स्वीकार कर लें । आपको सिद्धांतके लिए लड़ना हो तो आगे चलकर लड़ सकते हैं । आप दोनों इस पर विचार करलें और फिर जो मुनासिब हो वह जवाब दें ।

यह सुनकर मैंने सेठ हाजी हबीबकी ओर देखा । उन्होंने कहा— मेरी तरफसे कहिये कि मैं समझौता-पक्षकी ओरसे कहता हूं कि मैं जनरल बोथाका प्रस्ताव स्वीकार करता हूं । वह इतना दे दगे तो तत्काल हम सतोष कर लेंगे और सिद्धांत के लिए पीछे लड़ लेंग । अब कौमका और बरबाद होना मुझे पसंद नही । जिस पक्षकी ओरसे मैं बोल रहा हू उसकी संख्या अधिक है और उसके पास पैसा भी अधिक है । मैंने इन वाक्योंका अक्षर अक्षरका उलथा कर दिया और फिर अपने सत्याग्रही पक्षकी ओरसे कहा— आपने जो कष्ट किया उसके लिए हम दोनों आपके अहसानमद हैं । मेरे साथीने जो बात कही है वह ठीक है । वह उस पक्षकी ओरसे बोले हैं जो संख्या और पैसा दानोंमें अधिक बलवान हैं । जिनकी ओरसे मैं बोल रहा हूं वे पैसेमें उनसे गरीब और संख्यामें थोड़े हैं । पर वे सिरपर कफन बांधे हुए हैं । उनकी लड़ाई व्यवहार और सिद्धांत दोनोंके खातिर है । अगर दोमेंसे एकको छोड़ना ही पड़े तो वे व्यवहारको त्यागे देंगे और सिद्धांतके लिए लड़ेंगे । जनरल बोथाकी शक्तिका हमें अंदाजा है, पर अपनी प्रतिज्ञाको हम उससे ज्यादा वजनदार मानते हैं इसलिए उसका पालन करनेमें हम मर-मिटनेको तैयार हैं । हम धीरज रखेंगे । हमारा विश्वास है कि हम अपने निश्चय पर अटल रहे तो जिस ईश्वरके नामपर हमने प्रतिज्ञा की है वह उसे पूरी करेगा ।

"आपकी स्थिति मैं पूरी तरह समझता हूं । आपने हमारे लिए बहुत किया है । अब आप हम मुट्ठीभर सत्याग्रहियोंका और साथ न दे सकें तो हमें उससे भ्रम न होगा और इससे हम आपके उपकारोंको भूलेंगे नहीं । हमें आशा है

माफ कर देंगे। उमरजी भाईको हम दोनोंकी बातें मुखसे सुनाइएगा और कहिएगा कि हम जो थोड़ेसे सत्याग्रही हैं। वे अपनी प्रतिज्ञाका अवश्य पालन करनेवाले और यह आशा रखनेवाले हैं कि हमारी दुःख-सहनकी शक्ति अंत में उनके हृदयको भेदेगी और वे एशियाटिक कानूनको रद कर देंगे।

लार्ड एम्टहिलने उत्तर दिया—"आप यह न समझिएगा कि मैं आपको छोड़ दूंगा। मुझे भी अपनी भलमनसीकी रक्षा तो करनी ही है। अंग्रेज जिस कामको एक बार हाथमें लेता है उसको यकायक छोड़ता नहीं। आपकी लड़ाई न्यायसंगत है। आप शुद्ध साधनोंसे लड़ते हैं। मैं आपका कैसे छोड़ सकता हूं? पर मेरी स्थिति आप समझ सकते हैं। कष्ट तो आपको ही सहने होंगे। इसलिए समझौता हो सकता हो तो उसे स्वीकार करनेकी सलाह देना मेरा धर्म है। पर आप जिन्हें कष्ट सहन करना है अपनी टेकके लिए चाहे जितना कष्ट सहनेको तैयार हैं तो मैं आपको कैसे रोक सकता हूं? मैं तो आपको बधाई ही दूंगा। अतः आपकी कमेटीका अध्यक्ष तो बना ही रहूंगा और मुझसे जो मदद बन पड़ेगी वह भी जरूर करता रहूंगा। पर आपको इतना ध्यानमें रखना होगा कि मैं उमराव सभाका एक छोटा सदस्य समझा जाता हूं। मेरा वजन ज्यादा नहीं है। फिर भी जो कुछ है वह आपके लिए काम आता ही रहेगा इस विषयमें आप निःशंक रहें।"

ये प्रोत्साहनजनक वचन सुनकर हम दोनोंको प्रसन्नता हुई। इस प्रसंगकी एक मधुर वस्तुकी ओर शायद पाठकोंने ध्यान न दिया हो। सेठ हाजी हबीब और मुझमें जैसा कि ऊपर बता चुका हूं मतभेद था फिर भी हममें परस्पर इतना प्रेम और विश्वास था कि सेठ हाजी हबीबको अपना विरोधी वक्तव्य मेरे ही जरिये पहुंचानेमें हिचक न हुई। वह इतना विश्वास रख सकते थे कि उनका प्रश्न मैं लार्ड एम्टहिलके सामने ठीक ठीक उपस्थित कर दूंगा।

यहां पाठकोंसे एक अप्रस्तुत बात भी कह दूं। विलायतमें

रहनेके दिनोंमें बहुतसे भारतीय अराजकतावादियोंके साथ मेरी बातचीत हुई। उन सबकी दलीलोंका खंडन करके और दक्षिण अफ्रीकाके वैसे विचारवाले लोगोंका समाधान करनेके प्रयत्नसे 'हिंदस्वराज'की उत्पत्ति हुई। उसके मुख्य तत्त्वोंकी मैंने लार्ड एम्प्टहिलके साथ भी चर्चा की थी। उसमें उद्देश्य यही था कि वह जरा भी यह न सोच सकें कि मैंने अपने विचारको दबाकर उनके नाम और उनकी सहायताका दक्षिण अफ्रीकाके कामके लिए दुरुपयोग किया। उनके साथ हुई मेरी बहस और बातचीत मुझे सदा याद रही है। उनके घरमें बीमारी होते हुए भी वह मुझसे मिले थे और यद्यपि 'हिंदस्वराज'में प्रकट किये हुए मेरे विचारोंसे। वह सहमत नहीं हुए, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईमें उन्होंने अपना हिस्सा आखिरतक पूरा अदा किया और हमारा मधुर संबंध अंततक बना रहा।

: १ :

टाल्स्टाय फार्म—१

इस बार विलायतसे जो शिष्टमंडल लौटा वह अच्छी खबर नहीं लाया। लोग लार्ड एम्प्टहिलके साथ हुई बातचीतका नतीजा क्या निकालेंगे इसकी चिंता मुझे अधिक नहीं थी। मेरे साथ अंततक कौन खड़ा होगा यह मैं जानता था। सत्याग्रहके विषयमें मेरे विचार अब अधिक परिपक्व हो गए थे। उसकी व्यापकता और उसकी अलौकिकताको अब मैं अधिक समझ सका था। इसलिए मैं शांत था। 'हिंद-स्वराज'को मैंने विलायतसे लौटते हुए जहाजपर ही लिख डाला। उसका उद्देश्य केवल सत्याग्रहकी भव्यता दिखाना था। यह पुस्तक मेरी श्रद्धा का मानदंड है। इससे लड़नेवालोंकी संख्याका मेरे सामने सवाल ही नहीं था।

पर मुझे पैसेकी चिंता रहती थी। लंबे अरसेतक लड़ाई

चलानी हो और पासमें पैसा न हो यह दुःख भारी हो गया। पैसे बिना लड़ाई चलाई जा सकती है, पैसा अक्सर सत्यकी लड़ाईको दूषित कर देता है प्रभु सत्याग्रहीको मुमुक्षुको आवश्यकतासे अधिक साधन कभी देता ही नहीं इस बातको जितना स्पष्ट आज समझता हू उतना उस वक्त नहीं समझता था। पर मैं आस्तिक हू। प्रभुने उस वक्त भी मेरा साथ दिया। मेरा संकट काटा। एक ओर मुझे दक्षिण अफ्रीकाके तटपर उतरते ही कौमको कामकी विफलताका समाचार देना था तो दूसरी ओर प्रभुने मुझे पैसोंके कष्टसे मुक्त कर दिया। केप टाउनमें उतरते ही मुझे विलायतसे तार मिला कि सर रतनजी जमशेदजी ताताने सत्याग्रह कोषमें २५ हजार रुपया दिया है। इतना रुपया उस वक्त हमारे लिए काफी था। हमारा काम चल निकला।

पर इस धनसे या बड़ी-से-बड़ी धनराशिसे सत्याग्रहकी आत्मशुद्धिकी—आत्मबलकी—लड़ाई नहीं चल सकती। इस संग्रामके लिए चारित्र्यकी पूजी होनी चाहिए। मालिकके बिना महल जैसे खडहर-सरीखा लगता है वैसे ही चारित्र्यहीन मनुष्य और उसकी सपत्तिको समझना चाहिए। सत्याग्रहियोंने देखा कि लड़ाई कितने दिन चलेगी इसका अंदाजा किसीसे नहीं लगाया जा सकता। कहां जनरल बोथा और जनरल स्मट्सकी एक इंच भी न हटनेकी प्रतिज्ञा और कहां सत्याग्रहियोंकी मरते दमतक जूझनेकी प्रतिज्ञा! हाथी और चींटीकी लड़ाई थी। हाथीके एक पांवके नीचे अगणित चींटियोंका भुरता बन सकता है। सत्याग्रही अपने सत्याग्रहकी अवधिको हदमें घेर नहीं सकता। एक बरस लगे या अनेक उसके लिए सब बराबर हैं। उसके लिए तो लड़ना ही जय है। लड़नेके मानी थे जेल जाना देशनिकाला होना। इसके बीच बाल-बच्चोंका क्या हो? निरतर जेल जाने वालेको नौकरी तो कोई देगा ही नहीं। जेलसे छूटनेपर खुद क्या खाय बाल-बच्चोंको क्या खिलायें? कहां रहें? भाड़ा कौन दे? आजीविकाके बिना सत्याग्रही भी उद्विग्न होता है। भूखों मर

कर और अपमानोंको मूर्खों मारकर भी सड़ाई लड़ते रहनेवाले दुनियामें अधिक नहीं हो सकते।

अबतक जेल जानेवालोंके कुटुंबोंका भरण-पोषण उनको हर महीने पैसा देकर किया जाता था। हरएकको उसकी आवश्यकताके अनुसार दिया जाता था। चींटीको कण और हाथीको मन। सबको बराबर तो दे ही नहीं सकते थे। पांच बच्चेवाले सत्याग्रही और ब्रह्मचारीका जिसके आगे-पीछे कोई हो ही नहीं एक पांतमें नहीं बिठा सकते। केवल ब्रह्मचारियोंको ही भरती करें, यह भी नहीं हो सकता था। तब किस दर या पैमानेसे पैसा दिया जाय? आमतौरसे तो हरएक कुटुंबसे पूछा जाता कि कम-से कम कितने रुपयेमें उसका गुजर हो जायगा और जो रकम वह बताता उसपर विश्वास रखकर उसीके अनुसार उसका खर्च दिया जाता। इसमें छल-कपटके लिए बहुत अवकाश था। कपटियोंने इसका कुछ लाभ भी लिया। दूसरे सच्चे लोग भी किसी खास ढंगसे रहनेके आदी होनेसे उसके योग्य सहायताकी आशा रखते थे। मैंने देखा कि इस ढंगसे लंबे अरसेतक लड़ाई चलाना असंभव है। लायकके साथ अन्याय होने और नालायकके अपने पासडमें सफल हो जानेका डर रहता है। यह मुश्किल एक ही तरह हल हो सकती थी कि सारे कुटुंबोंका एकजगह रखा जाय और सब साथ रहकर काम करें। इसमें किसीके साथ अन्याय होने का डर न रहता। ठगोंके लिए बिलकुल गुंजाइश नहीं रहती यह भी कह सकते हैं। जनताके पैसेकी बचत होती और सत्याग्रही कुटुंबोंको नए और सादे जीवनकी शिक्षा बहुतोंके साथ मिलकर रहनेकी शिक्षा मिलती अनेक प्रांतों और अनेक धर्मोंके भारतीयोंके साथ रहनेका मौका मिलता।

पर ऐसी जगह कहां मिले? शहरमें रहने जाय तो बकरीको निकालते हुए ऊंटोंको घुसा लेनेका डर था। महीनेके खर्चके बराबर शायद मकानभाड़ा ही देना पड़े और सत्याग्रही कुटुंबोंका शहरमें सादगीसे रहनेमें भी कठिनाई होती। फिर शहरमें इतना लंबा चौड़ा स्थान भी न मिल सकता जहां बहुत

से परिवार घर बैठे कोई उपयोगी धंधा कर सकें। अतः यह स्पष्ट था कि हमें ऐसा स्थान पसंद करना चाहिए जो शहरसे न बहुत दूर हो और न बहुत नजदीक। फिनिक्स तो था ही 'इंडियन ओपीनियन' वहां छपता था। थोड़ी खेती भी होती थी बहुतसे सुभीते मौजूद थे। पर फिनिक्स जोहान्सबर्गसे ३०० मीलके फासलेपर और रेलसे तीस घंटेका रास्ता था। इतनी दूर कुटुंबोंको लाना ले जाना टेढ़ा और महंगा काम था। फिर सत्याग्रही कुटुंब अपना घर-बार छोड़कर इतनी दूर जानेको तैयार नहीं हो सकते थे। होते भी तो उन्हें और सत्याग्रही बंदियोंको जेलसे छूटनेपर इतनी दूर भेजना असंभव-सा लगा।

अत स्थान तो ट्रांसवालमें ही और वह भी जोहान्सबर्गके पास ही होना चाहिए था। मि० केलनबेकका परिचय पाठकों-को करा चुका हूं। उन्होंने ११०० एकड़ जमीन खरीदी और सत्याग्रहियोंको बिना किसी भाड़े-लगानके उसको काममें लानेका अधिकार दे दिया (३० मई १९१०)। इस जमीनमें बहुतसे, एक हजारके लगभग फलवाले पेड़ थे और पहाड़ोंकी तलहटीमें पांच-सात आदमियोंके रहने लायक एक छोटा-सा मकान था। पानीके लिए एक झरना और दो कुएं थे। रेलवे स्टेशन लॉले करीब एक मीलपर था और जोहान्सबर्ग २१ मील। इस जमीनपर ही मकान बनवाने और सत्याग्रही कुटुंबोंको बसानेका निश्चय किया गया।

१०

टाल्स्टाय फार्म—२

यह जमीन ११ एकड़ थी और उसके ऊंचे हिस्सेपर एक छोटी-सी पहाड़ी थी जिसकी तलहटीमें एक छोटा-सा मकान था। उसमें एक हजारके लगभग फलवाले पेड़ थे। उनमें नारंगी एप्रिकॉट प्लम इफरातसे फलते इतने कि मौसममें

सत्याग्रही भरपेट खायें तो भी बच रहें। पानीका एक छोटा-सा झरना था। उससे पानी मिल जाता। जहां रहना था उस जगहसे वह कोई ५०० गज दूर होगा। इसलिए पानी कांवरपर भरकर लानेकी मेहनत तो थी ही।

इस स्थानमें हमारा यह आग्रह था कि घरका कोई काम नौकरोंसे न लिया जाय और खेती-बारी और घर बनानेका काम भी जितना अपने हाथों हो सकता है किया जाय। इसलिए पाखाना साफ करनेसे लगाकर खाना पकानेतकका सारा काम हमें अपने हाथों ही करना था। कुटुम्बोंको रखना था पर हमने शुरूमें ही तै कर लिया था कि स्त्रियां और पुरुष अलग अलग रखे जायं। इसलिए दोनोंके लिए अलग अलग मकान और थोड़े फासलेपर बनानेका निश्चय हुआ। १० स्त्रियों और ६० पुरुषोंके रहने लायक मकान तुरत बना लेनेका निश्चय किया गया। एक मकान मि० केलनबेकके रहनेके लिए बनाना था और उसके साथ-साथ एक पाठशालाके लिए भी। इसके सिवा बढ़ईके काम मोचीके काम इत्यादिके लिए एक कारखाना भी तैयार करना था।

जो लोग इस स्थानमें रहनेके लिए आनेवाले थे वे गुजरात मद्रास आंध्र और उत्तरी हिंदुस्तानके थे। धर्मके विचारसे वे हिंदू मुसलमान पारसी और ईसाई थे। कुल ४०के लगभग पुरुष दो-तीन बूढ़े पांच स्त्रियां और २० से ३० तक बच्चे थे जिनमें पांच लड़कियां थीं।

स्त्रियोंमें जो ईसाई थीं उन्हें और दूसरोंको भी मांसाहारकी आदत थी। मि० केलनबेककी और मेरी भी राय थी कि इस स्थानमें मांसाहारका प्रवेश न हो तो अच्छा है। पर जिन्हें उसके सिवा धर्म-नीति या धार्मिक भी अड़चन न हो जो संकटके समय इस स्थानमें आ रहे थे और जिन्हें बचपनसे इस चीजकी आदत हो उनसे थोड़े दिनोंके लिए भी उसे छोड़नेको कैसे कहा जा सकता? न कहा जाय तो खर्च कितना होगा? फिर जिन्हें गोमांसकी आदत हो उन्हें क्या गोमांस दिया जाय?

किसमे रसोईघर चलाने जायें ? मेरा धर्म इस विषयमें क्या था ? इन कुटुम्बोंको पैसा देनेका निमित्त बनकर भी तो मैं मांसाहार और गोमांसाहारमें सहायक होता ही था । अगर यह नियम कर लूं कि मांसाहार करनेवालेको मदद न मिलेगी तो सत्याग्रहकी लड़ाई मुझे केवल निरामिषभोजियोंके जरिये ही लड़नी होगी । यह भी कैसे हो सकेगा ? लड़ाई तो भारतीय मात्रकी थी । अपना धर्म मैं स्पष्ट देख सका । ईसाई या मुसल्मान भाई गोमांस ही मांगें तो मुझे उनको यह देना ही होगा । मैं उन्हें इस स्थानमें आनेकी मनाही नहीं कर सकता ।

पर प्रेमका बेली ईश्वर है ही । मैंने तो सरल भावसे ईसाई बहनोंके सामने अपना संकट रखा । मुसलमान भाइयोंने तो मुझे केवल निरामिष रसोई चलानेकी इजाजत पहले ही दे दी थी केवल ईसाई बहनोंकी बात मुझे समझनी थी । उनके पति या पुत्र तो जेलमें थे । उनकी सम्मति मुझे प्राप्त थी उनके साथ ऐसे मौके अनेक बार आ चुके थे । केवल बहनोंके साथ ऐसे निकट संबंधका यह पहला ही अवसर था । मैंने उनसे मकानकी अड़चन पैसेकी अड़चन और अपनी भावनाकी बात कही साथ ही यह इतमीनान भी दिला दिया कि वे मांगेंगी तो मैं गोमांस भी हाजिर कर दूंगा । बहनोंने प्रेमभावसे मांस न मांगना मंजूर किया । रसोईका काम उनके हाथमें सौंपा गया । उनकी मददके लिए हममेंसे एक-दो पुरुष भी दे दिये गए । उनमें मैं तो था ही । मेरी मौजूदगी छोटे मोटे झगड़े-टंटोंको दूर रख सकती थी । रसोई जितनी सादी हो सकती है रखनेका निश्चय हुआ । खाने का समय निश्चित हुआ । रसोई एक ही रखी गई । सबको एक ही पांतमें भोजन करना था सबको अपने-अपने बरतन धो-मांजकर साफ रखने थे । शामिल बरतन सब लोग बारी-बारीसे मांजें यह तै हुआ । मुझे यह बता देना चाहिए कि टाल्स्टाय फार्ममें लंबे अरसेतक रहना पड़ा पर बहनों या भाइयोंने कभी मांसा हारकी मांग नहीं की । शराब तमाकू आदि तो वर्जित थे ही ।

मैं लिख चुका हूं कि मकान बनानेका काम भी जितना

अपने हाथों झोंसके उतना करनेका हमारा आग्रह था। स्थापित (Architect) तो मि० कैलनबेक थे ही। यह एक यूरोपियन राज से आये। एक गुजराती बढ़ई नारायणदास दमानियाने अपनी सहायता बिना पैसेके प्रदान की। और दूसरे बढ़ई भी थोड़े पैसेमें मिल दिये। केवल शारीरिक श्रमका काम हमने अपने हाथों किया। हममेंसे जिनके अंग लचीले थे उन्होंने तो कमाल कर दिया। बढ़ईका आधा काम तो बिहारी नामके सत्याग्रहीने उठा लिया। सफाईका काम शहर जाना और वहांसे सामान लाना आदि सिंह समान थंबी नायडूने अपने जिम्मे ले लिया।

इस टुकड़ीमें एक थे भाई प्रागजी खंडूभाई देसाई। उन्होंने अपनी जिंदगीमें कभी सर्दी-गर्मी नहीं सही थी। यहां तो कड़ाकेकी ठंड कड़ी गर्मी और गहरी बरसात सब सहनी थी। इस स्थानमें हमारे निवासका श्रीगणेश तो तंबूमें हुआ। जबतक मकान बने तबतक उन्हींमें सोना पड़ा। मकान दो महीनेमें बने होंगे। मकान सादे टीनके पतरेके थे इसलिए उनके बनानेमें ज्यादा देर न लगती। हमें लकड़ी भी जिस जिस नापकी दरकार थी तैयार मिल जाती थी। हमको बस इतना ही करना पड़ता कि नापकर उसके टुकड़े कर लें। खिड़की दरवाजे भी थोड़े ही बनाने थे इसलिए इतने कम समयमें इतने अधिक मकान बना लिये गए। पर इन कामोंमें भाई प्रागजीका पूरी कसौटी हो गई। जेलसे सुलभमें घरमेंका काम निःसंदेह हो पड़ा था। एक दिन तो थकावट और गर्मीसे वह बेहोश हो गए पर वह हार माननेवाले आदमी नहीं थे। उन्होंने अपने शरीरको यहां पूरी तरह कस लिया और अंतमें तो उन्होंने शक्ति प्राप्त कर ली थी कि मजदूरोंमें सबके साथ जुट गये।

ऐसे ही दूसरे थे भाई जोसफ रॉयपन। यह तो बैरिस्टर थे पर उन्हें बैरिस्टरीका घमंड न था। बहुत कड़ा मेहनत उनसे न हो सकता थी। ट्रेनसे बोझा उतारना और बैलगाड़ीपर उसे लादना उनके लिए कठिन था पर अपनी शक्तिभर उन्होंने यह

भी किया।

टाल्स्टाय फार्ममें निर्बल सबल हो गए और मेहनत सबके लिए शक्तिवर्धक साबित हुई।

सबको किसी-न-किसी कामसे जोहान्सबर्ग जाना पड़ता। बच्चोंको सैरके लिए जानेकी इच्छा होती। मुझको भी कामवश जाना होता। हमने निश्चय किया कि सार्वजनिक आश्रमके कामसे जाना हो तभी रेलसे जानेकी इजाजत मिले और तीसरे दरजेको छोड़कर और किसीमें जाना तो हो ही नहीं सकता था। जिसे सैरके लिए जाना हो वह पैदल चलकर जाय और अपना नाश्ता बांधकर साथ ले जाय। कोई शहरमें खानेको खर्च न करे। इतने कड़े नियम न रखे होते तो जो पैसा बचानेके लिए हमने बनवास स्वीकार किया वह रेलभाड़े और बाजारके रास्तेमें उड़ जाता। घरका नाश्ता भी सादा ही होता। घरके पिसे और बिना छने आटेकी रोटी मूंगफलीका घर बनाया हुआ मक्खन और नारंगीके छिलकेका मुरब्बा। आटा पीसनेके लिए हाथसे चलानेकी लोहेकी बनी चक्की ली थी। मूंगफलीको भूनकर पीस लेनेसे मक्खन तैयार हो जाता था। उसका दाम दूधके मक्खनकी अपेक्षा चार गुना सस्ता पड़ता। नारंगी तो फार्ममें ही इफरातसे होती थी। फार्ममें गायका दूध तो शायद ही कभी लिया जाता। हम डिब्बेका दूध काममें लाते।

अब फिर सफरकी चर्चापर आयें। जिसे जोहान्सबर्ग जानेका शौक होता वह हफ्तेमें एक या दो बार पैदल जाता और उसी दिन लौट आता। पहले बता चुका हूं कि वह २१ मीलका रास्ता था। पैदल जाने-आनेके इस एक नियमसे ही सैकड़ों रुपये बच गए और पैदल जानेवालोंको बहुत लाभ भी हुआ। कितनोंको पैदल चलनेकी नई आदत पड़ गई। नियम यह था कि इस तरह जानेवाले दो बजे रातको उठें और २॥ बजे रवाना हो जाय। सब छःसे सात घंटेके अंदर जोहान्सबर्ग पहुंच सकते थे। कम-से-कम समय

लेने जाते ४ घंटे १८ मिनटमें पहुँचते।

पाठक यह न मानें कि ये नियम आश्रमवासियोंपर भारस्वरूप थे। सभी उनका प्रेमपूर्वक पालन करते थे। बलात्कारसे तो मैं एक भी आदमीको वहाँ न रख सकता। युवक सफरमें हों या आश्रममें सारा काम हँसते-हँसते और किलकते हुए करते। शारीरिक श्रमके समय तो उन्हें ऊधम मचानेसे रोकना कठिन होता। उनसे उतना ही काम लेनेका नियम रखा गया था जितना उन्हें खुश रखते हुए लिया जा सके। इससे काम कम हुआ यह मुझे नहीं जान पड़ा।

पाखानेकी कथा समझ लेनी चाहिए। इतने आदमी इकट्ठे रहते थे फिर भी किसीको कहीं कूड़ा, मैला या जूठन पड़ी दिखाई नहीं देती थी। एक गड्ढा खोद रखा गया था। सारा कूड़ा उसीमें डालकर ऊपरसे मिट्टी डाल दी जाती। पानी कोई रास्तेमें न गिराने पाता। सब बरतनोंमें इकट्ठा किया जाता और पेड़ोंको सींचनेमें खर्च किया जाता। जूठन और साग-तरकारीके छिलकों आदिकी खाद बनती। पाखानेके लिए रहनेके मकानके पास एक चौरस गड्ढा डेढ़ फुट गहरा खोद रखा था। उसीमें सारा पाखाना डाल दिया जाता और ऊपरसे खोदी हुई मिट्टीको भी डालकर पाट दिया जाता। इसमें जरा भी दुर्गन्ध न आती। मक्खियाँ भी वहाँ नहीं भिनभिनाती थीं और किसीको इसका गुमान भी न आता कि यहाँ पाखाना पाटा गया है। साथ ही खाद अमूल्य मिलती थी। हम मैलेका सदुपयोग करें तो लाखों रुपयेकी खाद बचाएं और अनेक रोगोंसे भी बचें। पाखानेके बारेमें अपनी बुरी आदतके कारण हम पवित्र नदीके किनारेको भ्रष्ट करते हैं, मक्खियोंकी उत्पत्ति करते हैं और नहा-धोकर साफ-सुथरे होनेके बाद जो मक्खियाँ हमारी अपनी लापरवाहीसे नंगे हुए विष्ठापर बैठ चुकी हैं उन्हें अपने शरीरका स्पर्श करने देते हैं। एक छोटी-सी कुदाली हमें बहुत-सी गन्दगीसे बचा सकती है। चलनेके रास्तेपर मैला डालना, थूकना, नाक साफ करना ईश्वर

और मनुष्य दोनोंके प्रति पाप है। इसमें दयाका अभाव है। जगलमें रहनेवाला भी अगर अपने मैलेको मिट्टीमें दबा नहीं देता तो वह दंडके योग्य है।

हमारा काम था सत्याग्रही कुटुंबोंको उद्योगी बनाये रखना पैसा बचाना और अंतमें स्वावलंबी बनना। हम यह कर सके तो चाहे जितने अरसेतक लड़ सकते थे। जूतोंका तो खर्च था ही। बंद जूते (शू)से गर्म आब-हवामें तो नुकसान ही होता है। सारा पसीना पैर चूस लेता है और नाजुक हो जाता है। मोजे की जरूरत तो हमारी जैसी आबहवामें होती ही नहीं। पर कांटे रोड़े आदिसे बचनेके लिए कुछ बचावकी आवश्यकता हम मानते थे। इसलिए हमने कंटकरक्षक अर्थात् चप्पल बनानेका काम सीख लेनेका निश्चय किया। दक्षिण अफ्रीकामें पाइनटाउन के पास मरियमहिलमें रोमनकैथेलिक पादरियोंका ट्रेपिस्ट नाम का मठ है। वहां ऐसे उद्योग चलते हैं। ये पादरी जर्मन हैं। उनके एक मठमें जाकर मि० केलनबेक चप्पल बनाना सीख आये। उन्होंने मुझे सिखाया और मैंने दूसरे साथियोंको। यों अनेक युवक चप्पल बनाना सीख गए और हम मित्रमंडलीमें उसे बेचने भी लगे। मुझे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि मेरे कितने ही 'चेले' इस हुनरमें मुझसे सहज ही आगे निकल गए। दूसरा धंधा हमने बढ़ईका दाखिल किया। हम एक गांव-सा बसा रहे थे। वहां हमें चौकीसे लगाकर बक्स-संदूक-तक अनेक छोटी-बड़ी चीजोंकी आवश्यकता थी। वे सब चीजें हम अपने हाथसे ही बनाते। जिन परोपकारी मिस्त्रियोंकी बात ऊपर कह चुका हूं उन्होंने तो कई महीनेतक हमें मदद दी। इस विभागकी अध्यक्षता मि० केलनबेकने स्वयं स्वीकार की थी। उनकी कुशलता और सावधानताका अनुभव हमें प्रतिक्षण होता था।

युवकों और बालक-बालिकाओंके लिए एक पाठशाला तो चाहिए ही थी। यह काम सबसे कठिन जान पड़ा और अंततक पूर्णताको नहीं पहुंचा। शिक्षणका भार मुख्यत: मि० केलनबेक

और मुझपर था। पाठशाला दोपहरसे ही चलाई जा सकती थी। उस वक्त हम दोनों सबेरेकी मशक्कतसे खूब थके होते। पढ़नेवालोंका भी यही हाल होता। अतः अकसर वे और हम भी ऊंघने लगते। हम आंखोंपर पानीके छींटे देते बच्चोंके साथ हंस खेलकर उनकी और अपनी ऊंघ भगाते, पर अकसर यह कोशिश बेकार जाती। शरीर जो आराम मांगता है वह लेकर ही छोड़ता है। यह तो एक और सबसे छोटा विघ्न था क्योंकि नींदमें झोंके खाते हुए भी कक्षाएं तो चलती ही थीं। पर तामिल, तेलुगु और गुजराती तीन भाषाएं बोलनेवालोंको क्या सिखाया जाय और कैसे? मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेका लोभ तो मुझे था ही। तामिल थोड़ी-बहुत जानता था, पर तेलुगु तो एक अक्षर भी न आती थी। ऐसी स्थितिमें एक शिक्षक क्या करे? युवकोंमेंसे कुछका शिक्षकरूपमें उपयोग किया। यह प्रयोग सफल हुआ यह नहीं कहा जा सकता। भाई प्रागजीका उपयोग तो होता ही था। युवकोंमेंसे कुछ बड़े नटखट और आलसी थे। किताबके साथ हमेशा लड़ाई करते थे। ऐसे विद्यार्थियोंको आगे बढ़ानेकी शिक्षक क्या आशा कर सकते थे? फिर हमारा काम अनियमित था। जरूरत होनेपर मुझे जोहान्सबर्ग जाना ही पड़ता। यही हाल मि० कैलनबैककी थी।

दूसरी कठिनाई धार्मिक शिक्षाकी थी। मुसलमानोंको कुरान पढ़ानेका लोभ तो मुझे था ही। पारसियोंको अवेस्ता पढ़ानेकी इच्छा होती। एक खोजाका लड़का था। उसके पास अपने पंथकी एक छोटी-सी पोथी थी। उसके बापने वह पोथी पढ़ानेका भार मुझपर डाल दिया था। मैंने इस्लाम और पारसी धर्मकी पुस्तकें इकट्ठी कीं। हिंदू-धर्मके जो मूल मुझको जान पड़े उन्हें मैंने लिख डाला। अपने ही बच्चोंके लिए या आश्रमके बच्चोंके लिए, यह बात अब याद नहीं रही। यह चीज मेरे पास होती तो अपनी प्रगति या गतिको नाप करनेके लिए मैं उसे यहां दे देता, पर ये चीजें तो कितनी ही अपनी जिंदगीमें मैंने फेंक दी या जला डालीं। इन

वस्तुओंके संग्रहकी आवश्यकता मुझे ज्यों-ज्यों कम मालूम पड़ती गई और ज्यों-ज्यों मेरा काम बढ़ता गया त्यों-त्यों मैं इन चीजोंका नाश करता गया। मुझे इसका पछतावा भी नहीं। इन वस्तुओंका संग्रह मेरे लिए एक बोझ और बड़े खर्चकी चीज हो जाता। उनके रक्षणके साधन मुझे जुटाने पड़ते और मेरी अपरिग्रही आत्माको यह असह्य होता।

पर यह शिक्षणका प्रयोग व्यर्थ नहीं गया। बालकोंमें कभी असहिष्णुता नहीं आई। एक दूसरेके धर्म और रीति-रिवाजके प्रति उन्होंने उदार भाव रखना सीखा। सगे भाइयोंकी तरह हिल-मिलकर रहना सीखा। एक-दूसरेकी सेवा करना सीखा। सभ्यता सीखी। उद्यमी बने और आज भी उन बालकोंमेंसे जिनके कार्योंकी थोड़ी-बहुत खबर मुझको है उसपरसे मैं जानता हूं कि टाल्स्टाय फार्ममें उन्होंने जो कुछ सीखा वह व्यर्थ नहीं गया। अधूरा सही पर यह विचारमय और धार्मिक प्रयोग था और टाल्स्टाय फार्मके जो संस्मरण अत्यंत मधुर हैं उनमें यह शिक्षणके प्रयोगका स्मरण तनिक भी कम मधुर नहीं है।

पर इन मधुर स्मृतियोंके लिए एक पूरे प्रकरणकी आवश्यकता है।

११

टाल्स्टाय फार्म—२

इस प्रकरणमें टाल्स्टाय फार्मके बहुतसे संस्मरणोंका संग्रह होगा। अतः ये स्मरण असंबद्ध लगेंगे। पाठक इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

पढ़ानेके लिए जैसा वर्ग मुझे मिला था वैसा शायद ही किसी शिक्षकके हिस्से पड़ा हो। सात बरसके बालक-बालिकाओंसे लगाकर २० बरसतकके जवान और १२-१३ बरसतककी कु-

कियां इस वर्गमें थीं। कुछ लड़के ऐसे थे जिन्हें जंगली कह सकते हैं। वे खूब ऊधम मचाते।

ऐसी जमातको क्या पढ़ाऊं? सबके स्वभावके अनुकूल कैसे होऊं? फिर सबके साथ किस भाषामें बातचीत करूं? तामिल और तेलुगुभाषी बच्चे या तो अपनी मातृभाषा समझते थे या अंग्रेजी। थोड़ी डच भी जानते थे। मुझे तो अंग्रेजीसे ही काम लेना होता। मैंने वर्गके दो विभाग कर दिए— गुजराती भाषी बच्चोंसे गुजरातीमें बोलता बाकी सबसे अंग्रेजीमें। शिक्षणकी योजना यह थी कि उसका मुख्य भाग होता तो कोई रोचक वार्ता कहना या पढ़कर सुनाना। बच्चोंके साथ मिलकर बैठना और मित्रभाव सेवाभाव सिखाना यही उद्देश्य मैंने सामने रखा था। इतिहास-भूगोलका थोड़ा सामान्य ज्ञान करा देता और थोड़ा लिखना सिखा देता। कुछको अंकगणित भी सिखाता। इस तरह गाड़ी चला लेता। प्रार्थनामें गानेके लिए कुछ भजन सिखाता। उसमें तामिल होनेके लिए तामिल बालकोंको भी समझाता।

लड़के-लड़कियां आजादीसे साथ उठते-बैठते। टाल्स्टाय फार्ममें मेरा यह सहशिक्षाका प्रयोग अधिक-से अधिक निर्भय था। जो आजादी मैंने बालक-बालिकाओंको वहां दी या सिखाई थी वह आजादी देने या सिखानेकी मेरी हिम्मत भी आज नहीं होगी। मुझे अकसर ऐसा लगा है कि मेरा मन उन दिनों आजकी अपेक्षा अधिक निर्दोष था। इसका कारण मेरा अज्ञान हो सकता है। इसके बाद कई बार मुझ धोखा हुआ है, कड़ुवे अनुभव हुए हैं। जिन्हें मैं नितांत निर्दोष समझता था वे सदोष सिद्ध हुए हैं। अपने आप भी गहराईमें बैठनेपर मैंने विकार पाये हैं। इससे मन कातर बन गया है।

मुझे अपने इस प्रयोगपर पछतावा नहीं। मेरी आत्मा गवाही देती है कि इस प्रयोगसे कुछ भी हानि नहीं हुई पर दूधका जला छाछको भी फूक-फूककर पिया करता है। यही बात मेरे बारेमें समझनी चाहिए।

मनुष्य श्रद्धा या हिम्मत दूसरेसे चुरा नहीं सकता संशयात्मा विनश्यति । टाल्स्टाय फार्ममें मेरी हिम्मत औ श्रद्धा पराकाष्ठाको पहुंची हुई थी । मह श्रद्धा और हिम्म फिर देनेके लिए मैं प्रभुसे प्रार्थना किया करता हूं । पर व सुने तब न ! उसके सामने तो मुझ जैसे अगणित भिखा होते हैं । भरोसा इतना ही है कि जैसे उससे याचना करनेवा असंख्य हैं वैसे उसके कान भी असंख्य हैं । इसलिए उसपर मेर श्रद्धा पूरी है । यह भी जानता हूं कि जब मैं इसका अधिकार हो जाऊंगा तब मेरी अर्ज जरूर सुनेगा ।

मह था मेरा प्रयोग । मैं तो बदमाश समझे जानेवा लड़कों और निर्दोष सयानी लड़कियोंको साथ नहानेको भेजता लड़के-लड़कियोंको मर्यादाधर्मके विषयमें खूब समझा दिया था मेरे सत्याग्रहसे व सभी परिचित थे । मैं उन्हें मांके जितना ! प्यार करता था इसे मैं तो जानता ही था पर वे भी इ मानते थे । पाठकोंको पानीके झरनेकी बात याद होगी । व रसोईसे कुछ दूरीपर था । वहां बालक-बालिकाओंको सम होने देना और फिर यह आशा रखना कि वे निर्दोष-निष्पा बने रहेंगे ? मेरी आंखें तो उन लड़कियोंके पीछे वस ही फि करती थीं जैसे मांकी आंखें बेटीके पीछे फिरा करती हैं स्नानका समय नियत था । उसके लिए सब लड़कियां और स लड़के साथ जाते । समूमें जो एक प्रकारकी सुरक्षितता हो है वह यहां थी । उन्हें कहीं एकांत तो मिलता ही नहीं आमतौरसे मैं भी उसी वक्त वहां पहुंच जाता ।

हम सभी एक खुले बरामदेमें सोते थे । लड़के लड़किय मेरे आस-पास सोते । दो बिस्तरोंके बीच मुश्किलसे तीं फुटका अंतर होता । बिस्तरोंके क्रममें अवश्य थोड़ी सावधान रखी जाती पर सदोष मनके लिए यह सावधानी क्या क सकती थी । अब मैं देखता हूं कि इन लड़के-लड़कियोंके बारे में प्रभुने ही लाज रखी । मैंने इस विश्वाससे यह प्रयत्न किय कि लड़के-लड़कियां इस तरह निर्दोष रीतिसे मिल जुल सक

है। उनके मां-बापने मुझपर बहुत विश्वास रखकर यह प्रयोग करने दिया।

एक दिन इन लड़कियोंने ही या किसी लड़केने मुझे खबर दी कि एक युवकने दो लड़कियोंके साथ मजाक किया है। मैं कांप उठा। मैंने जांच की। बात सच थी। युवकोंको समझाया पर इतना काफी नहीं था। दोनों लड़कियोंके शरीरपर कोई ऐसा चिह्न चाहता था जिससे हरएक युवक यह समझ सके और जान ले कि इन बालाओंपर कुदृष्टि डाली ही नहीं जा सकती। लड़कियां भी समझ लें कि हमारी पवित्रतापर कोई हाथ डाल सकता ही नहीं। सीताके शरीरको विकारी रावण स्पर्शतक न कर सका। राम तो दूर थे। ऐसा कौन-सा चिह्न इन लड़कियोंको दूं जिससे वे अपने-आपको सुरक्षित समझें और दूसरे भी उन्हें देखकर निर्विकार रहें? रातभर जागा। सवेरे लड़कियोंसे विनती की। उन्हें चौंकाये बिना समझाकर सलाह दी कि वे अपने सुंदर लंबे बाल कतर देनेकी इजाजत मुझे दे दें। फार्मपर हम एक दूसरेकी दाढ़ी बनाया और बाल कतर दिया करते थे। इससे कतरनी मेरे पास थी। पहले तो इन लड़कियोंने नहीं समझा। बड़ी स्त्रियोंको मैंने अपनी बात समझा दी थी। उन्हें मेरी सलाह सहन तो नहीं हुई पर वे मेरा हेतु समझ चुकी थीं। उनकी मदद मुझे मिली। दोनों लड़कियां भव्य थीं। आह! आज इनमेंसे एक चल बसी है। वह तेजस्विनी थी। दूसरी जीवित है और अपनी गृहस्थी चला रही है। अंतमें वे दोनों समझ गईं। उसी क्षण उस हाथने जो आज यह प्रसंग लिख रहा है, उन बालिकाओंके बालपर कतरनी चला दी। पीछे वर्गमें इस कार्यका विश्लेषण करके उसको समझा दिया। परिणाम सुंदर रहा। फिर मैंने मजाककी बात नहीं सुनी। इन लड़कियोंने कुछ खोया तो नहीं ही। कितना पाया यह तो भगवान ही जानता होगा। मैं आशा करता हूं कि युवक इस घटनाको याद करते और अपनी दृष्टिको शुद्ध रखते होंगे।

ऐसे प्रयोग अनुकरणके लिए नहीं लिखे जाते। कोई शिक्षक उनका अनुकरण करे तो वह भारी जोखिम अपने सिरपर लेगा। इस प्रयोगका उल्लेख स्थितिविशेषमें मनुष्य किस हदतक जा सकता है यह दिखाने और सत्याग्रहकी लड़ाईकी विशुद्धता बतानेके लिए किया गया है। इस विशुद्धतामें ही उसकी विजयकी जड़ थी। इस प्रयोगके लिए शिक्षकको मां-बाप दोनों बनना होता है और हर कष्ट-हानिके लिए तैयार होकर ही ऐसे प्रयोग किये जा सकते हैं। उनके पीछे कठिन तपश्चर्याका बल होना चाहिए।

इस कार्यका असर फार्मवासियोंकी सारी रहन-सहनपर पड़े बिना न रहा। कम-से-कम खर्चमें गुजर करना हमारा उद्देश्य था इसलिए पहनावेमें भी हेर-फेर किया। दक्षिण अफ्रीकाके शहरोंमें आमतौरसे हमारे पुरुषवर्गका पहनावा यूरोपियन ढंगका ही होता है। सत्याग्रहियोंका भी था। फार्मपर उतने कपड़ोंकी जरूरत नहीं थी। हम सभी मजदूर बन गए थे। इससे पहनावा रखा मजदूरोंका पर यूरोपीय ढंगका— यानी मजदूरोंके पहननेका पतलून और उसी तरहकी कमीज। इस पहनावेमें जेलका अनुकरण था। मोटे आसमानी रंगके कपड़ेका सस्ता पतलून और कमीज मिलती वही सब पहनते। स्त्रियोंमें अधिकांश सिलाईका काम सुंदर रीतिसे कर सकती थीं। उन्होंने सिलाईका सारा काम अपने ऊपर ले लिया।

भोजनमें चावल दाल तरकारी रोटी और कभी-कभी खीर होना सामान्य नियम था। ये सारी चीजें एक ही बरतनमें परसी जातीं। बरतनमें थालीके बदले जेलकी जैसी तसली रखी गई थी और लकड़ीके चमचे अपने हाथसे बना लिये गए थे। खाना तीन वक्त दिया जाता। सबेरे छः बजे रोटी और गेहूं का कहवा (काफी) ग्यारह बजे दाल-भात और तरकारी और शामके ५॥ बजे गेहूंकी लपसी और दूध या रोटी और गेहूंका कहवा। रातके ९ बजे सबको सो जाना होता। शामके भोजनके बाद सात या साढ़े सात बजे प्रार्थना होती। प्रार्थनामें

भजन गाये जाते और कभी रामायणसे तो कभी इसलामके धर्मग्रंथोंमेंसे कुछ पढ़ा जाता। भजन अंग्रेजी हिंदी और गुजरातीमें होते। कभी तीनोंके भजन गाये जाते तो कभी एकहीसे।

फार्ममें बहुतेरे एकादशी व्रत करते। वहां भाई पी० के० कोतवाल पहुंच गये थे जिन्हें उपवास आदिका अच्छा ज्ञान और अनुभव था। उनको देखकर बहुतोंने चातुर्मास किया। इसी बीच रोजा भी आ गया। हममें कुछ मुसलमान नौजवान थे। उन्हें रोजा रखनेको प्रोत्साहन देना हमें अपना धर्म जान पड़ा। उसके लिए सरगही (सहरी) और रातके भोजनका प्रबंध कर दिया। उनके लिए रातमें खीर आदि भी बनती। मांसाहार तो होता ही नहीं था। किसीने इसकी मांग भी नहीं की। उनके धर्मभावका सम्मान करनेके लिए हम भी एक ही जून शामको भोजन करते। हमारा सामान्य नियम सूर्यास्तसे पहले भोजन कर लेनेका था। मुसलमान लड़के थोड़े ही थे इसलिए अंतर इतना ही होता कि दूसरे सूर्यास्तसे पहले खा-पीकर तैयार हो जाते। मुसलमान नवयुवकोंने भी रोजा रखनेमें इतनी भलमनसी बरती कि किसीको ज्यादा तकलीफ न होने दी। पर इस तरह गैर मुस्लिम लड़कोंके आहार-संयममें उनका साथ देनेका असर सबके ऊपर अच्छा ही हुआ। हिंदू-मुसलमानके लड़कोंके बीच मजहबको लेकर एक बार भी झगड़ा हुआ हो या भेद उत्पन्न हुआ हो इसकी याद मुझे नहीं है। इसका उलटा मैं जानता हूं कि सब अपने-अपने धर्मपर दृढ़ रहते हुए भी एक दूसरेके प्रति पूरा आदर रखते और एक दूसरेको स्वधर्मपालनमें सहायता देते।

हम शहरसे इतनी दूर रहते थे फिर भी बीमारियोंके लिए दवा-दारूका जो साधारण प्रबंध रखा जाता है वैसा कुछ भी नहीं रखा गया था। उन दिनों लड़के-लड़कियोंकी निर्दोषताके विषयमें मुझे जो श्रद्धा थी वही श्रद्धा बीमारीमें केवल प्राकृतिक उपचार करनेके विषयमें भी थी। मैं सोचता था कि पहले तो सादे जीवनमें बीमारी होगी ही क्यों और हो भी गई तो हम

उसका उपाय कर लेंगे। मेरी आरोग्यविषयक पुस्तक मेरे प्रयोगों और मेरी उस संयमकी श्रद्धाकी नोटबुक है। मुझे यह अभिमान था कि मैं तो बीमार हो ही नहीं सकता। यह मानता था कि केवल पानी मिट्टी या उपवासके प्रयोग या भोजनके अदल-बदलसे सब प्रकारके रोग दूर किये जा सकते हैं। फार्ममें एक भी बीमारीके मौकेपर डाक्टरका उपयोग नहीं किया गया। उत्तर भारतका रहनेवाला एक सत्तर बरसका बूढ़ा था। उसको दमे और खांसीकी शिकायत थी। वह भी महज खुराकके अदल-बदल और पानीके प्रयोगसे चंगा हो गया। पर ऐसे प्रयत्न करनेकी हिम्मत अब मैं खो बैठा हूं और खुद दो बार बीमार पड़नेके बाद यह मानने लगा हूं कि मैंने इसका अधिकार भी खो दिया।

फार्म जब चल रहा था उसी बीच स्व० गोखले दक्षिण अफ्रीका आये थे। उनकी यात्राके वर्णनके लिए तो अलग प्रकरणकी जरूरत है। पर उसका एक कड़ुआ-मीठा संस्मरण यहां लिखे देता हूं। हमारा जीवन कैसा था यह तो पाठकोंने जान ही लिया। फार्ममें खाट-जैसी कोई चीज नहीं थी पर गोखलेजीके लिए एक मांग लाये। कोई ऐसा कमरा नहीं था जहां उनको पूरा एकांत मिले। बैठनेके लिए पाठशालाकी बेंचें भर थीं। ऐसी स्थितिमें भी नाजुक तबियतवाले गोखलेजीको फार्म पर लाये बिना हमसे कैसे रहा जाता? वैसे वह भी उसे देखे बिना कैसे रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातकी तकलीफ बर्दाश्त कर लेगा और वह स्टेशनसे फार्मतक डेढ़ मील पैदल भी आ सकते हैं। मैंने उनसे पूछ लिया था और अपनी सरलतावश उन्होंने बिना सोचे-समझे मुझपर विश्वास रखकर सारी व्यवस्था स्वीकार करली थी। संयोगवश उसी दिन वर्षा भी हो गई। यकायक मेरे किये प्रबंधमें कोई हेरफेर नहीं हो सकता था। इस अज्ञानभरे प्रेमके कारण उस दिन मैंने गोखलेजीको जो कष्ट दिया वह मुझे कभी नहीं भूला। इतना बड़ा परिवर्तन उनकी प्रकृति सहन नहीं कर सकती थी। उन्हें ठंड लग गई। भोजनके लिए उन्हें रसोईमें नहीं ले जा सकते थे। मि० केलन

मेककें कमरेमें उन्हें उतारा था। वहां खाना ले जानेमें ठंडा तो हो ही जाता। उनके लिए मैं खास शोरवा बनाता। भाई कोतवाल खास चपातियां बनाते। पर वे गरम कैसे रखे जाय? ज्यों-त्यों करके निबटाया। गोखलेने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा पर उनके चेहरेसे मैं समझ गया और अपनी मूर्खता भी समझ गया। जब उन्हें मालूम हुआ कि हम सभी जमीनपर सोते हैं तब उनके लिए जो खाट लाई गई थी उसे हटा दिया और अपना बिस्तर भी फर्शपर ही जमा लिया। यह रात मैंने पश्चात्ताप करते बिताई। गोखलेकी एक आदत थी जिसे मैं बुरी आदत कहता। वह नौकरकी ही सेवा स्वीकार करते। ऐसी यात्राओंमें नौकरको साथ न रखते। मैंने और मि कैलनबेकने उनसे बहुत बिनती की कि हमें पांव दबाने दीजिए पर वह टस-से मस न हुए। हमें अपना शरीर स्पर्शतक न करने दिया। उल्टे आधी खीझ और आधी हंसीमें कहा—"जान पड़ता है कि आप सब लोगोंने यही समझ लिया है कि कष्ट भोगनेके लिए अकेले आप ही लोग जन्मे हो और हम-जैसे लोग इसीलिए पैदा हुए हैं कि तुम्हें कष्ट दें। अपनी अतिकी सजा आज तुम पूरी-पूरी भोग लो। मैं तुम्हें अपना शरीर छूनेतक नहीं दूंगा। तुम सब लोग निबटनेके लिए दूर जाओगे और मेरे लिए कमोड रखोगे। ऐसा क्यों? चाहे जितनी तकलीफ उठानी पड़े मैं भोग लूंगा पर तुम्हारा गर्व चूर करूंगा।" यह वचन हमारे लिए वज्र समान थे। मैं और मि कैलनबेक खिन्न हुए पर इतना आश्वास था कि उनके चेहरेपर हास्य था। अर्जुनने कृष्णको अन जानेमें बहुत कष्ट दिया होगा पर कृष्णने क्या उसे याद रखा? गोखलेने हमारा सेवाका भाव ही याद रखा सेवा तो करने ही नहीं दी। मोंबासासे उन्होंने मुझे जो प्रेमभरा पत्र लिखा वह मेरे हृदयपर अंकित हो गया है। उन्होंने कष्ट सह लिये पर जो सेवा हम कर सकते थे वह अंततक न करने दी। भोजन आदि हमारे हाथसे न लेते तो करते क्या!

अगले दिन सबेरे न उन्होंने खुद आराम किया न हमें

छेने दिया। उनके सब भाषणोंको जिन्हें हम पुस्तकरूपमें छपाने जा रहे थे सुधारा। उनकी आदत थी कि कुछ भी लिखना हो तो उसका मजमून इधर-से-उधर टहलते हुए सोचते। उन्हें एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मैंने सोचा कि उसे तो वह तुरंत लिख डालेंगे पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। मैंने टीका की तो मुझे वह व्याख्यान सुनना पड़ा– 'मेरा जीवन तुम क्या जानो। मैं छोटी-से-छोटी बात भी उतावलीमें नहीं करता। उसको सोचता हूं। उसके मध्यबिंदुको सोचता हूं फिर विषयके अनुरूप भाषाका विचार करता हूं और तब लिखता हूं। सब ऐसा करें तो कितना वक्त बच जाय? और समाज भी आज जो अधकचरे विचार उसे मिलते रहे हैं उनके भारसे बच जाय।

जैसे गोखलेके आगमनके वर्णनके बिना टाल्स्टाय फार्मके संस्मरण अधूरे माने जायंगे वैसे ही मि० केलनबेककी रहन-सहन के विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। इस निर्मल पुरुषका परिचय मैं पहले करा चुका हूं। मि० केलनबेकका टाल्स्टाय फार्ममें हम लोगोंके बीचमें हम-जैसे ही होकर रहना यही अचरजकी बात थी। गोखले सामान्य बातोंसे आकृष्ट होने वाले आदमी नहीं थे पर केलनबेकके जीवनके महान परिवर्तन से वह भी अतिशय आकृष्ट हुए थे। केलनबेकने कभी दुनियाकी सर्दी-गर्मी न सही थी एक भी तकलीफ या अड़चन न उठाई थी। असंयम उनका धर्म हो गया था। संसारके सुख भोगनेमें उन्होंने कोई कसर नहीं रखी थी। पैसेसे जो चीज मिल सकती थी अपने सुखके लिए उसे प्राप्त करनेमें उन्होंने कभी आगा-पीछा न किया था।

ऐसे आदमीका टाल्स्टाय फार्ममें रहना सोना-बैठना खाना पीना और फार्मवासियोंके साथ घुल-मिल जाना ऐसी-वैसी बात नहीं थी। हम लोगोंको यह देखकर आनंदजनक आश्चर्य हुआ। कुछ गोरोंने मि केलनबेकको मूर्ख या पागल समझ लिया। दूसरे कितनोंके दिलमें उनकी त्यागशक्तिको देखकर उनके लिए इज्जत बढ़ी। केलनबेकने अपने त्यागको कभी दुःखरूप न माना

जितना आनंद उन्होंने सुखोंके भोगमें पाया था उससे अधिक उनके त्यागमें पाया। सारी जिंदगीके सुखका वर्णन करते हुए वह तल्लीन हो जाते और क्षणभरके लिए तो सुननेवालोंको भी वह सुख भोगनेकी इच्छा हो जाती। छोटे-बड़े सबके साथ वह इतने प्रेमसे हिल-मिल जाते कि उनका अल्प वियोग भी सबको खले बिना न रहता। उन्हें फलवाले पेड़ोंका बड़ा शौक था। इससे मालीका काम उन्होंने अपने ही लिए रख छोड़ा था। रोज सवेरे बच्चों और बड़ोंसे भी सींचने-संवारनेका काम कराते। वह इतने हँसमुख और स्वभावके इतने आनंदमय थे कि मस्त मस्त पूरी कराते फिर भी उनके साथ काम करना सबको रुचता। जब-कभी रातके दो बजे उठकर टाल्स्टाय फार्मसे जोहन्सबर्गसे पाने वाले निकलते तो मि० केलनबेक इस टोलीमें जरूर होते।

इनके साथ धार्मिक संवाद सदा हुआ करता था। मेरे पास अहिंसा सत्य इत्यादि यमोंको छोड़कर दूसरी बात हो ही क्या सकती थी? सर्पादिक मारनेमें भी पाप है। मेरी इस बातसे जैसे मेरे अनेक दूसरे यूरोपियन मित्र पहले चौंके थे वैसे ही मि० केलनबेकको भी धक्का लगा पर पीछे तात्त्विक दृष्टिसे उन्होंने यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया। हमारे संबंधके आरंभमें ही उन्होंने यह बात मान ली थी कि बुद्धि जिस वस्तुको स्वीकार कर ले उसका आचरण करना उचित और धर्म है। इसीसे वह अपने जीवनमें इतने महत्त्वके परिवर्तन एक क्षणमें बिना किसी झिझकके कर सके थे। अब अगर सर्पादिका मारना अनुचित है तो मि केलनबेकको इच्छा हुई कि उनकी मित्रता संपादन करें। पहले तो उन्होंने ऐसी पुस्तकें इकट्ठी कीं जिनसे भिन्न भिन्न जातिके सर्पोंकी पहचान हो सके। उनमें उन्होंने देखा कि सभी सांप जहरीले नहीं होते। कुछ तो खेतोंकी फसलकी रक्षा करने वाले होते हैं। हम सबने सांपोंको पहचानना सीख लिया और अंतमें एक विशाल अजगरको जो फार्ममें ही मिल गया था पाल लिया। उसको सदा अपने ही हाथसे खाना देते। मैंने नरमीसे

उनके साथ यह दलीलकी— 'यद्यपि आपका भाव शुद्ध है फिर भी अजगर तो उसको पहचाननेसे रहा क्योंकि आपकी प्रीतिके साथ भय मिला हुआ है। उसको खुला रखकर उसके साथ खेलनेकी हिम्मत तो न आपकी है, न मेरी और ऐसी हिम्मत ही वह चीज है जिसे हम अपने अंदर पैदा करना चाहते हैं। इस लिए इस सर्पको पालनेमें मैं सद्भाव तो देखता हूं पर उसमें अहिंसा नहीं देखता। हमारा व्यवहार तो ऐसा होना चाहिए कि अजगर उसे पहचान सके। प्राणिमात्र भय और प्रीतिको पहचानते हैं, यह तो हमारा रोजका अनुभव है। फिर इस सांपको आप जहरीला तो मानते ही नहीं। इसके तौर-तरीके इसकी आदतें आदि जाननेके लिए ही उसे कैद कर रखा है। यह एक प्रकारकी विलासिता हुई। मित्रतामें इसके लिए भी स्थान नहीं है।"

मि० केलनबेकको यह दलील जची पर उस अजगरको तुरंत छोड़ देनेकी उनकी इच्छा नहीं हुई। मैंने किसी तरहका दबाव नहीं डाला। सर्पके व्यवहारमें मैं भी रस लेने लगा था और बच्चोंको तो उसमें अतिशय आनंद मिल रहा था उसको तंग करनेकी सभीको मनाही थी पर इस कैदीने अपना रास्ता खुद निकाल लिया। पिंजड़ेका दरवाजा खुला रह गया हो या उसीने युक्तिसे खोल लिया हो चाहे जो कारण हो दो चार दिनके अंदर ही एक दिन सवेरे मि केलनबेक अपने कैदी मित्रसे मिलने गये तो देखते हैं कि उसका पिंजड़ा खाली है। वह खुश हुए मैं भी हुआ पर इस प्रयोगके फलस्वरूप सर्प हमारी बातचीतका स्थायी विषय हो गया था।

मि केलनबेक एक गरीब जर्मनको फार्म पर लाये थे। वह गरीब तो था ही अपंग भी था। उसका कूबड़ इतना निकला आया था कि लकड़ीके सहारेके बिना चल ही नहीं सकता। उसकी हिम्मतकी हद नहीं थी। शिक्षित होनेसे सूक्ष्म बातोंमें बहुत रस लेता था। फार्ममें वह भी हिंदुस्तानियों-जैसा ही होकर सबके साथ हिल-मिलकर रहता था। उसने

निर्भय होकर सांपोंके साथ खेलना शुरू किया। छोटे सांपोंको तो हाथमें पकड़कर ले आता और हथेलीपर रखकर खिलाता भी। फार्म लंबे अरसेतक चलता तो इस जर्मनके जिसका नाम कॉलेनबेक था प्रयोगका फल क्या होता यह तो ईश्वर ही जाने।

इस प्रयोगोंके फलस्वरूप यद्यपि हमारे मनमें सांपोंका डर घट गया था पर कोई यह न समझ ले कि फार्ममें कोई सांपसे डरती ही नहीं था या सांपादिको मारनेकी सभीको मनाही थी। अमुक वस्तुमें हिंसा है या पाप है, यह मान लेना एक बात है और तदनुसार आचरण करनेकी शक्ति होना दूसरी बात है। जिसके मनमें सांपका डर बना हो और जो स्वयं प्राण त्याग करनेको तैयार न हो वह संकटमें पड़नेपर सांपको छोड़नेवाला नहीं। फार्ममें ऐसी एक घटना हुई थी जो मुझे याद है। पाठकोंने यह तो समझ ही लिया होगा कि वहां सांपोंका उपद्रव काफी था। *हम जब इस फार्ममें गये तब वहां आदमियोंकी* बस्ती बिल्कुल ही नहीं थी और कुछ अरसेसे योंही निर्जन पड़ा था। एक दिन मि० केलनबेकके ही कमरेमें सांप दिखाई दिया और ऐसी जगह जहांसे उसे भगाना या पकड़ लेना नामुम किन-सा था। फार्मके एक विद्यार्थीने उसको देखा। उसने मुझे बुलाया और पूछा कि अब क्या करना चाहिये। उसने उसे मारनेकी इजाजत मांगी। इस अनुमतिके बिना वह सांपको मार सकता था पर आमतौरसे विद्यार्थी या दूसरे लोग भी मुझसे पूछे बिना ऐसे काम नहीं करते थे। मारनेकी इजाजत दे देना मुझे अपना धर्म दिखाई दिया और मैंने इजाजत दे दी। यह बात लिखते समय भी मुझे ऐसा नहीं जान पड़ता कि यह इजाजत देनेमें मैंने कोई गलती की। सांपको हाथसे पकड़ लेने या फार्मवासियोंको और किसी तरह भयमुक्त कर देनेकी मुझमें शक्ति न थी और आज भी उसे उत्पन्न नहीं कर सकता हूं।

फार्ममें सत्याग्रहियोंका ज्वारभाटा आया करता था यह

बात तो पाठक आसानीसे समझ सकते हैं। कोई सत्याग्रही जेल जानेवाला होता तो कोई-न-कोई उससे छूटकर आया होता। छूटकर आनेवालोंमें दो ऐसे आये-जिन्हें मजिस्ट्रेटने जाती मुचलकेपर छोड़ा था और जिन्हें सजा सुननेके लिए अगले दिन अदालतमें हाजिर होना था। वे बैठे बातें कर रहे थे। इतनेमें उनके लिए जो आखिरी ट्रेन थी उसका वक्त हो गया और वे उसे पा सकेंगे या नहीं यह संदिग्ध हो गया। दोनों जवान थे और अच्छे कसरती थे। वे और हममेंसे भी कुछ लोग जो उन्हें विदा करने जानेवाले थे दौड़े। रास्तेमें ही मैंने ट्रेनके आनेकी सीटी सुनी। ट्रेन छूटनेकी सीटी हुई तब हम स्टेशनकी बाहरी हदतक पहुंच पाये थे। वे दोनों भाई तो अधिकाधिक तेज दौड़ते जा रहे थे। मैं पीछे छूट गया। ट्रेन चल दी। दोनों युवकोंको दौड़ते देख स्टेशनमास्टरने चलती ट्रेन रोक दी और उनको बैठा लिया। मैंने स्टेशन पहुंचकर स्टेशनमास्टरके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। इस घटनाका वर्णन करनेमें मैंने दो बातें बतायी हैं एक तो यह कि सत्याग्रहियोंको जेल जाने और प्रतिज्ञाका पालन करनेकी कितनी उत्सुकता होती थी। दूसरी यह कि स्थानीय कर्मचारियोंके साथ उन्होंने कैसा मधुर संबंध जोड़ लिया था। ये युवक उस ट्रेनको न पकड़ सके होते तो अगले दिन अदालतमें हाजिर न हो पाते। उनका कोई दूसरा जामिन नहीं था। न उनसे रुपये-पैसेकी ही जमानत ली गई थी। वे महज अपनी भलमनसीके विश्वासपर छोड़े गए थे। सत्याग्रहियोंकी साख इतनी हो गई थी कि उनके खुद जेल जानेसे आतुर होनेके कारण मजिस्ट्रेट उनसे जमानत लेनेकी जरूरत नहीं समझते थे। इस कारण इन युवक सत्याग्रहियोंको ट्रेन छूट जानेके डरसे भारी खेद हुआ था। अतः वे वायुवेगसे दौड़े। सत्याग्रहके आरंभ में अधिकारियोंकी ओरसे सत्याग्रहियोंको कुछ कष्ट दिये गए थे यह बात कही जा सकती है। यह भी कह सकते हैं कि कहीं-कहीं जेलके अफसर-अहलकार बहुत ज्यादा सख्त थे पर लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई हमने कुल मिलाकर देखा कि अहलकार

पहलेसे कम कड़वे हो गए और कुछ तो मीठे भी हो गए और वहां उनके साथ सदा सावका पड़ा वहां इस स्टेशनमास्टरकी तरह हमारी मदद भी करने लगे। कोई पाठक इससे यह न समझें कि सत्याग्रहियोंने अहलकारोंको किसी तरह घूस देकर उनसे सुभीते प्राप्त किये। ऐसे अयोग्य सुभीते प्राप्त करनेकी बात उन्होंने कभी सोची ही नहीं पर सभ्यताके सुभाते लेनेका हौसला किसको न होगा? और ऐसे सुभीते सत्याग्रहियोंको कितनी ही जगह मिल सकते थे। स्टेशनमास्टर प्रतिकूल हो तो नियमोंकी सीमामें रहते हुए भी मुसाफिरको कितनी ही तरहसे हैरान कर सकता है। ऐसी हैरानियोंके खिलाफ आप कोई शिकायत—फरियाद भी नहीं कर सकते। और वह अनुकूल हो तो कायदेके अंदर रहकर भी आपको बहुतसे सुभीते दे सकता है। ऐसी सब सहूलियतें हम फार्मके पासके स्टेशन लॉलेके स्टेशन मास्टरसे पा सके थे और इसका कारण था सत्याग्रहियोंका सौजन्य उनका धैर्य और कष्ट-सहन करनेकी उनकी शक्ति।

एक अप्रस्तुत प्रसंगकी चर्चा यहां कर देना संभवतः अनुचित न माना जायगा। मुझे भोजनके सुधार और प्रयोग धार्मिक आर्थिक और आरोग्यकी दृष्टिसे करनेका शौक लगभग ३५ बरससे रहा है। यह शौक आज भी मंद नहीं पड़ा है। मेरे प्रयोगोंका असर मेरे आसपासवालोंपर तो पड़ता ही है। इन प्रयोगोंके साथ दवाकी मदद लिए बिना प्राकृतिक—जैसे पानी और मिट्टीके—उपचारोंसे रोग मिटानेके प्रयोग भी मैं करता था। जब वकालत करताथा उन दिनों मवक्किलोंके साथ मेरा संबंध कौटुंबिक-जैसा हो जाता। इससे वे मुझे अपने सुख-दुःखमें साथी बनाते। कुछ आरोग्यविषयक मेरे प्रयोगोंसे परिचित हो जानेके बाद उस विषयमें मेरी सहायता लेते। ऐसी सहायता लेनेवाले कभी-कभी टाल्स्टाय फार्मपर भी चढ़ आते। यों आने वालोंमें लुटावन नामका एक बूढ़ा था जो उत्तर भारतका रहनेवाला था और पहले गिरमिटमें दक्षिण अफ्रीका आया था। उसकी उम्र ७० के पार होगी। उसे पुराने दमे और खांसीकी

बीमारी थी। वैद्योंके पूर्व और डाक्टरोंके मिक्सचर काफी आजमा चुका था। उन दिनों अपने उपचारोंके विषयोंमें मेरे विश्वासकी भी कोई सीमा नहीं थी। मैंने कहा कि तुम मेरी सभी शर्तोंका पालन करो और फार्ममें रहो तो मैं तुमपर अपने प्रयोगोंकी परीक्षा कर सकता हूं। यह तो कैसे कह सकता हूं कि मैंने उसका इलाज करना कबूल किया। स्टावनने मेरी शर्तें मजूर कर लीं। उसको तंबाकू पीनेका भारी व्यसन था। उससे जो शर्तें कबूल कराई गई थीं उनमें एक तंबाकू छोड़ देनेकी भी थी। स्टावनको मैंने एक दिनका उपवास कराया। रोज १२ बजे धूपमें कूने बाथ देना शुरू किया। उस वक्त मौसम ऐसा था कि धूपमें बैठा जा सके। भोजनमें थोड़ा भात थोड़ा जैतूनका तेल शहद और शहदके साथ कभी खीर और मीठी नारंगी और कभी अंगूर और भुने गेहूंका कहवा देता। नमक-मसाला बिलकुल बंद था। जिस मकानमें मैं सोता उसीके भीतरके हिस्सेमें स्टावनका भी बिस्तर लगता था। बिस्तरमें सबको दो कंबल मिलते थे—एक बिछानेके लिए दूसरा ओढ़नेके लिए। और एक काठ का तकिया होता था। एक सप्ताह बीता। स्टावन के शरीरमें तेज आया। दमा घटा खांसी भी घटी। पर रातमें दमा और खांसी दोनों उभड़ें। मेरा शक तंबाकू-पर गया। मैंने उससे पूछा। स्टावनने कहा—'मैं नहीं पीता।' एक-दो दिन और गये। फिर भी फर्क न पड़ा तो मैंने छिपे तौरपर स्टावनपर निगाह रखनेका निश्चय किया। सभी जमीनपर सोते थे। सर्पादिका भय तो था ही इसलिए मि॰ कैलनबेकने मुझे बिजली की चोरबत्ती (टार्च) दे रखी थी और खुद भी एक रखते थे। इस बत्तीको मैं पास रखकर सोता। एक रात मैंने तै किया कि बिस्तरपर पड़ा-पड़ा जागता रहूंगा। दरवाजेके बाहर बरामदेमें मेरा बिस्तर था और दरवाजेके भीतर नजदीक ही स्टावनका लगा था। आधी रातका स्टावनको खांसी आई। उसने दियासलाई जलाई और बीड़ी पीना शुरू किया। मैं धीरेसे जाकर उसके बिस्तरके पास खड़ा हो गया और बत्ती-

का बटन दबा दिया। लुटावन घबराया सब समझ गया। बीड़ी बुझा दी और मेरे पांव पकड़ लिये। मैंने भारी कसूर किया। अब मैं कभी तंबाकू न पीऊंगा। आपको मैंने धोखा दिया। मुझको आप माफ करें।" यह कहते-कहते लुटावनका गला भर आया। मैंने उसको तसल्ली दी और कहा कि बीड़ी न पीनेमें तुम्हारा हित है। मेरे हिसाबसे खांसी अबतक चली जानी चाहिए थी। वह नहीं गई इसलिए मुझे शक हुआ। लुटावनकी बीड़ी गई और उसके साथ दो या तीन दिनमें खांसी और दमा ढीले पड़े और एक महीनेमें दोनों चले गए। लुटावनमें खूब तेज-शक्ति-उत्साह आ गया और उसने हमसे विदा मांगी।

स्टेशनमास्टरका बेटा जो दो सालका रहा होगा टाइफाइड ज्वरसे पीड़ित हुआ। उन्हें मेरे उपचारोंका पता था ही। मुझसे सलाह ली। उस बच्चेको दो दिन तो मैंने कुछ भी खानेको नहीं दिया। तीसरे दिनसे आधा केला खूब मसला हुआ और उसमें एक चम्मच जैतूनका तेल और दो-चार मूंद नीबूका रस डालकर देने लगा। इसके सिवा और सब खुराक बंद। रातमें उसके पेटपर मिट्टीकी पट्टी बांधता। यह बच्चा भी चंगा हो गया। हो सकता है कि डाक्टरका निदान गलत रहा हो और उसका बुखार टाइफाइड (मियादी) न रहा हो।

ऐसे बहुतेरे प्रयोग मैंने फार्ममें किये। उनमेंसे एकमें भी विफल होनेकी बात मुझे याद नहीं है पर आज वही उपचार करनेकी मेरी हिम्मत नहीं होती। टाइफाइडके रोगीको जैतूनका तेल और केला देते तो मुझे कंपकंपी होने लगती। १९१८में हिन्दुस्तानमें मुझे आंवकी बीमारी हुई और उसका इलाज मेरे किये न हो सका और मुझे आजतक इसका पता नहीं कि जो उपचार दक्षिण अफ्रीकामें सफल होते थे वही उपचार हिन्दुस्तानमें उसी अंशमें सफल नहीं होते इसका कारण मेरे आत्मविश्वासका घट जाना है या यह कि यहांकी जलवायु उन उपचारोंके पूरी [illegible]

इन घरेलू इलाजों और टाल्स्टाय फार्ममें रखी गई सादी जिंदगीसे कौमके कुछ नहीं तो भी दो-तीन लाख रुपये बच गए। रहनेवालोंमें कौटुंबिक भावना उत्पन्न हुई। सत्याग्रहियोंको शुद्ध आश्रय स्थान मिला। बेईमानी और मक्कारीके लिए अवकाश न रहा मूँग और कंकड़ी अलग-अलग हो गई।

ऊपरकी घटनाओंमें वर्णित आहारके प्रयोग आरोग्यकी दृष्टिसे किये गए पर इस फार्मके अंदर ही मैंने अपने ऊपर एक अतिशय महत्वका प्रयोग किया जो शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे था।

निरामिषभोजीकी हैसियतसे हमें दूध लेनेका अधिकार है या नहीं इस विषयपर मैंने खूब विचार किया था खूब पढ़ा भी था पर फार्ममें रहनेके दिनोंमें कोई पुस्तक या अखबार मेरे हाथमें पड़ा जिसमें मैंने देखा कि कलकत्तेमें गाय भैसोंका दूध निचोड़कर निकाला जाता है। उस लेखमें फूकेकी निर्दयता-भरी और भयानक क्रियाका भी वर्णन था। एक बार मि केलनबेकके साथ दूध लेनेकी आवश्यकताके बारेमें बातचीत हो रही थी। उस सिलसिलेमें मैंने इस क्रियाकी बात भी कही। दूधके त्यागके दूसरे अनेक आध्यात्मिक लाभ भी मैंने बताये और कहा कि दूध छोड़ा जा सकता हो तो अच्छा है। मि केलनबेक अत्यंत साहसी थे इसलिए दुग्ध त्यागके प्रयोगके लिए तुरत तैयार हो गए। उन्हें मेरी बात बहुत पसंद आई। उसी दिन हम दोनोंने दूध त्याग दिया और अंतमें हम केवल सूखे और ताजे फलोंपर रहने लगे। आगपर पकाई हुई हर तरहकी खुराक त्याग दी। इस प्रयोगका अंत क्या हुआ, इसका इतिहास देनेका यह स्थान नहीं है। पर इतना तो कह ही दूँ कि मैं केवल फल खाकर पाँच बरस रहा। इससे न मैंने कोई कमजोरी अनुभवकी और न मुझे किसी प्रकारकी व्याधि हुई। इस कालमें मुझमें शारीरिक काम करनेकी पूरी शक्ति थी यहाँतक कि एक दिनमें मैं पैदल ५५ मीलकी यात्रा कर सकता था। दिनभरमें ४० मीलका मंजिल कर लेना तो मामूली बात थी। मेरा दृढ़

विश्वास है कि इस प्रयोगके आध्यात्मिक परिणाम बड़े सुंदर हुए। इस प्रयोगको मजबूरन त्याग देना पड़ा इसका दुःख मुझे सदा रहा है और मैं राजनैतिक काम-काजके झमेलेमें जिस हद तक उलझ गया हूं उससे छुटकारा पा सकूं तो इस उम्रमें और शरीरके लिए जोखिम लेकर भी इसके आध्यात्मिक फलके परी क्षणके लिए फिरसे यह प्रयोग कर देखूं। डाक्टरों-वैद्योंमें आध्या त्मिक दृष्टिका अभाव होना भी हमारे मार्गमें विघ्नकारक हो गया है।

पर अब इन मधुर और महत्त्वके संस्मरणोंकी समाप्ति करनी होगी। ऐसे कठिन प्रयोग आत्मशुद्धिके संग्रामके अंदर ही किये जा सकते हैं। आखिरी लड़ाईके लिए टाल्स्टाय फार्म आध्यात्मिक शुद्धि और तपश्चर्याका स्थान सिद्ध हुआ। इसमें मुझे पूरा संदेह है कि ऐसा स्थान न मिला होता या प्राप्त किया गया होता तो आठ बरसतक हमारी लड़ाई चल सकी होती या नहीं हमें अधिक पैसा मिल सका होता या नहीं और अंतमें जो हजारों आदमी लड़ाईमें शामिल हुए वे शामिल होते या नहीं। टाल्स्टाय फार्मका ढोल पीटनेका नियम हमने नहीं रखा था। फिर भी जो वस्तु दयाकी पात्र नहीं थी उसने लोगोंके दयाभाव सहानुभूतिको जाग्रत किया। उन्होंने देखा कि हम खुद जो बात करनेको तैयार नहीं हैं और जिसे कष्टरूप मानते हैं फार्मवासी उस बातको कर रहे हैं। उनका यह विश्वास १९१३ में जो फिरसे बड़े पैमानेपर लड़ाई शुरू हुई उसके लिए बड़ी पूंजीरूप हो गया। इस पूंजीके मुआविजका हिसाब नहीं हो सकता। मुआवजा कब मिलता है यह भी कोई नहीं कह सकता। पर मिलता है इस विषयमें मुझ तो तनिक भी शंका नहीं और मरा कहना है कि किसीको भी शंका नहीं करनी चाहिए।

१२

गोखलेकी यात्रा—१

इस तरह टाल्स्टाय फार्ममें सत्याग्रही अपनी जिंदगी बिता रहे थे और जो कुछ उनके नसीबमें लिखा था उसके लिए तैयार हो रहे थे। युद्ध कब समाप्त होगा इसका न उन्हें पता था न चिंता थी। उनकी प्रतिज्ञा एक ही थी: खूनी कानूनके सामने सिर न झुकायेंगे और ऐसा करते हुए जो कष्ट सिरपर आयेंगे उन्हें सह लेंगे। सिपाहीके लिए लड़ना ही जीत है क्योंकि इसमें ही वह सुख मानता है और चूंकि लड़ना अपने हाथमें होता है इसलिए वह मानता है कि हार-जीत या सुख-दुःख खुद मुझपर ही अवलंबित है। या यों कह सकते हैं कि पराजय-जैसी चीज उसके शब्दकोषमें होती ही नहीं। गीताके शब्दोंमें कहें तो उसके लिए सुख-दुःख हार-जीत समान हैं।

इक्के-दुक्के सत्याग्रही जेल जाया करते थे। जब ऐसा मौका न हो तब फार्मके बाहरी कामोंको देखकर कोई यह नहीं सोच सकता था कि इसमें सत्याग्रही रहते होंगे और वे लड़ाई की तैयारी कर रहे होंगे। फिर भी कोई नास्तिक वहां आ जाता तो वह मित्र होता तो हमपर तरस खाता और आलोचक होता तो हमारी निंदा करता। कहता— आलस्य सवार हो गया है। इसीसे जंगलमें पड़े-पड़े रोटियां खा रहे हैं। जेलसे हार गए हैं इसलिए सुंदर फलोद्यानमें बसकर नियमित जीवन बिता और शहरके झंझटोंसे दूर रहकर सुख भोग रहे हैं। ऐसे आलोचक-को कैसे समझाया जाय कि सत्याग्रही अयोग्य रीतिसे नीतिको भंग करके जेल जा ही नहीं सकता? उसे कौन समझाये कि सत्याग्रहीकी शांतिमें उसके संयममें ही लड़ाईकी तैयारी होती है? उसे कौन कहे कि सत्याग्रही मनुष्यकी सहायताका ख्यालतक दिलसे निकाल देता है केवल भगवानका भरोसा रखता है। परिणाम यह हुआ कि जिन्हें किसीने न सोचा था

ऐसे संयोग आ उपस्थित हुए या भगवानने भेज दिये। ऐसी सहायता भी मिली जिसकी आशा हम नहीं रखते थे। हमारी परीक्षा भी अचानक जब वह हमारी कल्पनासे कोसों दूर थी आ पहुंची और अतमें ऐसी बाह्य विजय भी मिली जिसको दुनिया समझ सके।

मैं अरसेसे गोखले और दूसरे नेताओंसे प्रार्थना करता आ रहा था कि दक्षिण अफ्रीका आकर भारतीयोंकी स्थितिको देखें। पर कोई आयेंगे या नहीं इस विषयमें मुझे पूरा संदेह था। मि० रिच किसी भी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे पर जब लड़ाई बिलकुल ही मंद पड़ गई हो ऐसे वक्तमें आनेकी हिम्मत कौन करता? १९११में गोखले विलायतमें थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके संग्रामका अध्ययन तो किया ही था। बड़ी कौंसिलमें बहस भी की थी और गिरमिटियोंका नेटाल भेजना बंद कर देनेका प्रस्ताव भी पेश किया था (२५ फरवरी १९१०) जो पास हुआ। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर चल ही रहा था। भारतमंत्रीके साथ वह मशविरा भी कर रहे थे और उन्हें यह जता दिया गया था कि वह दक्षिण अफ्रीका जाकर पूरे मसलेको समझना चाहते हैं। भारतमंत्रीने उनके इरादेको पसंद किया था। गोखलेने मुझे छ हफ्तेके दौरेकी योजना बनानेको लिख भेजा और दक्षिण अफ्रीकासे विदा होनेकी आखरी तारीख भी लिख दी। हमारे हर्षका तो पार ही न रहा। किसी भी भारतीय नेताने अबतक दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रा नहीं की थी। दक्षिण अफ्रीकाकी बात तो क्या हिंदुस्तानके बाहरके एक भी देश या उपनिवेशमें प्रवासी भारतीयोंकी हालत समझनेके उद्देश्यसे कोई नहीं गया था। इसस हम सभी गोखले-जैसे महान् नेताके आगमनके महत्त्वको समझ सके और निश्चय किया कि उनका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा कभी किसी बादशाहका भी न हुआ हो। दक्षिण अफ्रीकाके मुख्य-मुख्य नगरोंमें उनको ले जानेकी बात भी तै की गई। सत्याग्रही और दूसरे हिंदुस्तानी स्वागतको

तैयारी में खुशीसे शरीक हुए। इस स्वागतमें शामिल होनेके लिए गोरोंको भी निमंत्रण दिया गया और लगभग सभी जगह वे उसमें सम्मिलित हुए। हमने यह भी तै किया कि जहां-जहां सार्वजनिक सभा की जाय वहां-वहां उस नगरका मेयर स्वीकार करे तो आमतौरसे उसीको सभापतिके आसनपर बिठाया जाय और जहां-जहां मिल सके वहां-वहां टाउनहालमें ही सभा की जाय। रेलवे विभागकी इजाजत लेकर रास्ते-के बड़े-बड़े स्टेशनोंको सजानेका भार भी अपने ऊपर लिया और अधिकांश स्टेशनोंके सजानेकी इजाजत भी हासिल कर ली। आमतौरसे ऐसी इजाजत नहीं दी जाती। स्वागतकी हमारी जबर्दस्त तैयारीका असर अधिकारियोंपर हुआ और उसमें जितनी हमदर्दी वह दिखा सके उतनी दिखाई। मिसालके लिए जोहान्सबर्गमें वहांके स्टेशनको सजानेमें ही हमें कोई १५ दिन लग गये होंगे क्योंकि वहां हमने एक सुंदर चित्रित तोरण बनाया था जिसका नक्शा मि० केलनबेकने तैयार किया था।

दक्षिण अफ्रीका कैसा देश है इसका अंदाजा गोखलेको विलायतमें ही हो गया था। भारतमंत्रीने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखलेके रुतबे साम्राज्यमें उनके स्थान इत्यादिकी सूचना दे दी थी पर स्टीमर कंपनीसे टिकट ले रखने या अच्छा केबिन (कमरा) रिजर्व करा रखनेकी बात किसीको कैसे सूझ सकती? गोखलेकी तबीयत नाजुक तो रहती ही थी। अत उन्हें जहाजपर अच्छा केबिन चाहिए था। एकांत भी जरूरी था। स्टीमर कंपनीके यहांसे तो टूक जवाब मिला कि ऐसा केबिन हमारे यहां है ही नहीं। मुझे ठीक याद नहीं कि गोखलेने खुद या उनके किसी मित्रने इंडिया आफिस (भारतमंत्रीके दफ्तर)को इसकी खबर दी। कंपनीके डाइरेक्टरको इंडिया आफिसकी ओरसे पत्र लिखा गया और जहां कोई था ही नहीं वहां गोखलेके लिए अच्छे-से-अच्छा केबिन हाजिर हो गया। इस प्रारंभिक कड़ुवाहटका फल

मीठा रहा। स्टीमरके कप्तानको भी गोखलेका सुंदर स्वागत करनेकी हिदायत कर दी गई। इससे गोखलेके इस सफर के दिन आनंद और शांतिमें बीते। वह जितने गंभीर थे उतने ही आनंदी और विनोदी भी थे। जहाजपर होनेवाले खेलों आदिमें वह अच्छी तरह शामिल होते और इससे जहाजके यात्रियोंमें खूब लोकप्रिय हो गए थे। यूनियन सरकारने गोखलेसे उसके मेहमान होने और रेलवेका सरकारी सेलून स्वीकार करनेका अनुरोध किया था। मुझसे मशविरा करलेने के बाद सेलून और प्रिटोरियामें सरकारका आतिथ्य स्वीकार कर लेनेका निश्चय किया।

गोखले केपटाउन बंदरगाहमें जहाजसे उतरनेवाले थे। १९१२की २२वीं अक्तूबरको वह जहाजसे उतरे। उनका स्वास्थ्य जितना मैं सोचता था उससे कहीं ज्यादा नाजुक था। वह एक खास खूराक ही ले सकते थे। अधिक श्रम भी सहन नहीं हो सकता था। जो कार्यक्रम मैंने बनाया था वह उनसे नहीं चल सकता था। जितना अदल-बदल हो सकता था उतना किया। वह बदला हो न जा सके तो स्वास्थ्यकी जोखिम उठाकर भी वह सारा कार्यक्रम कायम रखनेको तयार हो गए। उनसे पूछे बिना कठिन कार्यक्रम बना डालनेमें मैंने जो मूर्खता की उसका मुझे बहुत पछतावा हुआ। कुछ रद्दोबदल तो मैंने किया पर अधिकांश कार्यक्रम तो ज्यों-का त्यों कायम रखना ही पड़ा। गोखलेको अधिक एकांत मिलना आवश्यक था यह मैं नहीं समझ सका था। ऐसा एकांत दिलाने में मुझे अधिक-से अधिक कठिनाई पड़ी। पर सत्यके खातिर मुझे नम्रतापूर्वक इतना तो कहना ही होगा कि रोगियों और बड़ोंकी सेवा करनेका मुझे अभ्यास और शौक था। इसम अपनी मूर्खता जान लेनेके बाद मैं प्रबंधमें इतना सुधार कर सका कि उन्हें यथेष्ट एकांत और शांति मिल सके। सारे दौरेमें उनके मंत्रीका काम मैंने ही किया। स्वयंसेवक ऐसे थे कि उन्हें अंधेरी रातमें भी जाकर जगाया जा दें। अतः सेवकोंके प्रमादसे उन्हें

कभी कोई कठिनाई हुई हो इसकी मुझे याद नहीं। मि० केलनबैक भी इन स्वयंसेवकोंमें थे।

केपटाउनमें अच्छी से-अच्छी सभा होनी चाहिए, यह तो स्पष्ट ही था। श्राइनर-कुटुंबके बारेमें मैं प्रथम खंडमें लिख चुका हूं। उसके मुखिया सिनेटर डब्ल्यू पी० श्राइनरसे इस सभाका सभापतित्व स्वीकार करनेकी प्रार्थनाकी और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। विशाल सभा हुई। हिंदुस्तानी और यूरोपियन बड़ी संख्यामें उपस्थित हुए। मि० श्राइनरने मधुर शब्दोंमें गोखलेका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंके साथ अपनी हमदर्दी जाहिर की। गोखलेका भाषण छोटा परिपक्व विचारोंसे भरा हुआ दृढ़ पर विनययुक्त था। उससे भारतीय प्रसन्न हुए और गोरोंका मन मोखलेने हर लिया। अतः यह कह सकते हैं कि गोखलेने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी धरतीपर कदम रखा उसी दिन वहांकी पचरंगी जनताके हृदयोंमें प्रवेश कर गए।

केपटाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलका दो दिनका सफर था। युद्धका कुरुक्षेत्र ट्रांसवाल था। केपटाउनसे आते हुए ट्रांसवालका पहला बड़ा सरहदी स्टेशन क्लर्क्सडोर्प पड़ता। वहां हिंदुस्तानियोंकी आबादी भी खासी थी। इसस वहां और जोहान्सबर्ग पहुंचनेसे पहले रास्तेमें पड़नेवाले ऐसे ही दो और नगरोंमें भी गोखलेको रोकने और सभामें उपस्थित होनेका कार्यक्रम बनाया गया था। इससे क्लर्क्सडोर्पसे स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था कराई गई। तीनों जगह उन नगरोंके मेयरोंने सभापतिका आसन ग्रहण किया। कहीं भी एक घंटेसे अधिक समय नहीं दिया गया। जोहान्सबर्ग ट्रेन ठीक वक्त पर पहुंची एक मिनटका भी फर्क नहीं पड़ा। स्टेशनपर बढ़िया कालीन आदि बिछाये गए थे। एक मंच भी बनाया गया था। जोहान्सबर्गके मेयर मि० एलिस और दूसरे यूरोपियन उपस्थित थे। मि० एलिसने अपनी मोटर इसके लिये पेश की कि गोखले जबतक जोहान्सबर्गमें रहें तबतक उनकी सवारीमें रहे। गोखलेको मानपत्र स्टेशनपर ही

भेंट किया गया। मानपत्र तो उन्हें हर जगह ही मिलता। जोहान्स बर्गका मानपत्र वहाँकी खानसे निकले हुए सोनेकी हृदयाकार तख्ती पर खुदा हुआ था जो दक्षिण अफ्रीकाकी बढ़िया लकड़ी (रोडेशियाकी टीक) पर जड़ी हुई थी। इस लकड़ीपर ताज महल और हिंदुस्तानके कुछ दृश्योंके चित्र बड़ी खूबसूरतीसे खोदे गए थे। गोखलेका सबके साथ परिचय कराना, मानपत्र पढ़ना उसका जवाब देना, दूसरे मानपत्र स्वीकार करना ये सारे काम २० मिनटके अंदर ही निबटा दिये गए। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढ़नेमें पांच मिनटसे अधिक नहीं लगे होंगे। गोखलेके उत्तरने भी इससे ज्यादा वक्त नहीं लिया होगा। स्वयं सेवकोंका प्रबंध इतना सुंदर था कि पूर्व निश्चित लोगोंसे अधिक एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नहीं आने पाया। शोरगुल बिलकुल नहीं था। बाहर जबर्दस्त भीड़ थी फिर भी किसीके आने-जाने में तनिक भी अड़चन नहीं हुई।

गोखलेको ठहरानेका प्रबंध मि० केलनबेकके एक सुंदर बंगलेमें किया गया था जो जोहान्सबर्गसे पांच मीलके फासलेपर अवस्थित एक पहाड़ीकी चोटीपर बना हुआ था। वहांका दृश्य इतना सुंदर था, शांति इतनी आनंददायक थी और बंगलेकी बनावट सादी होते हुए भी इतनी कलामय थी कि गोखलेको यह स्थान बहुत ही पसंद आया। सब लोगोंसे मिलनेका प्रबंध शहरमें किया गया था। इसके लिए एक खास दफ्तर किरायेपर लिया गया था। उसमें तीन कमरे थे। एक खास कमरा गोखले-के आराम करनेके लिए, दूसरा मुलाकातके लिए और तीसरा मिलनेको आनेवालोंके बैठनेके लिए। नगरके कुछ विशेष व्यक्तियों से निजी मुलाकातके लिए भी हम गोखलेको ले गये थे। प्रमुख यूरोपियनोंने भी अपनी एक निजी सभा की थी जिसमें उनके दृष्टिबिंदुको गोखले पूरी तरह समझ लें। इसके सिवा जोहान्स बर्गमें उनके सम्मानमें एक बड़ा भोज भी दिया गया जिसमें ४०० आदमियोंको निमंत्रण दिया गया था। इनमें १५०के लगभग यूरोपियन होंगे। भारतीयोंका प्रवेश टिकटसे रखा गया

था जिसकी कीमत एक गिनी रखी गई थी। इससे इस दावतका खर्च निकल आया। भोजन शुद्ध निरामिष और मद्यपानरहित ही था। रसोई भी सारी स्वयंसेवकोंने ही बनाई थी। इस सुंदर आयोजनका चित्र यहां प्रस्तुत कर सकना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकामें हमारे भारतीय भाई हिंदू-मुसलमान छुआ-छूत नहीं जानते। हां निरामिषभोजी भारतीय अपने निरामिषा-हारकी रक्षा करते हैं। हिंदुस्तानियोंमें कितने ही ईसाई भी थे। वे बहुत करके गिरमिटिया मां-बापकी संतान हैं। उनमें से बहुतेरे होटलोंमें खाना पकाने और परसनेका धंधा करते हैं। इन भाइयोंकी मददसे ही इतने बड़े भोजका प्रबंध कर लेना संभव हुआ। भोजनमें कोई पंद्रह प्रकारकी चीजें रही होंगी। दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोंके लिए यह बिलकुल नया और अचरजभरा अनुभव था। इतने अधिक हिंदुस्तानियोंके साथ एक पांतमें भोजन करने बैठना, निरामिष भोजन और बिना शराबके काम चला लेना तीनों अनुभव उनमेंसे बहुतोंके लिए नये थे। वो तो सभीके लिए नये थे।

इस सम्मेलनमें गोखलेने जो भाषण दिया वह दक्षिण अफ्रीकामें उनका सबसे बड़ा और सबसे अधिक महत्त्वका भाषण था। वह लगातार ४५ मिनट बोले। इस भाषणकी तैयारीमें उन्होंने हमारी पूरी हाजिरी ली थी। उन्होंने अपना यह नियमी भरका नियम बताया कि स्थानीय लोगोंके दृष्टिबिंदुकी अव-गणना न हो और उनका जितना लिहाज किया जा सकता है उतना किया जाय इसलिए मुझे यह बता देनेको कहा कि मैं अपनी दृष्टिसे उनसे क्या कहलवाना चाहता हूं। यह मुझे लिख-कर देना था और इसके साथ यह शर्त थी कि अगर उनके एक वाक्य या विचारका भी वह उपयोग न करें तो मैं बुरा न मानूं। वह मजमून न ज्यादा लंबा हो न छोटा फिर भी कोई जरूरी बात छूट न जाय। इन सारी शर्तोंका पालन करते हुए मुझे उनके लिए अपने नोट तैयार करने होते थे। यह तो कह ही दूं कि मेरी भाषाका तो उन्होंने बिलकुल ही उपयोग नहीं किया।

अंग्रेजी भाषामें पारंगत गोखले मेरी भाषाका कहीं भी उपयोग करते यह आशा मैं रखता ही क्यों ? मेरे विचारोंका उन्होंने उपयोग किया यह भी मैं नहीं कह सकता। पर उन्होंने मेरे विचारोंकी उपयोगिता स्वीकार की। इससे मैंने मनको यह समझा लिया कि उन्होंने किसी तरह मेरे विचारोंका उपयोग कर लिया होगा। पर उनकी विचारश्रेणी ऐसी थी कि उन्होंने उसमें अपने विचारको कहीं स्थान दिया या नहीं इसका पता आपको चल ही नहीं सकता था। गोखलेके सभी भाषणोंमें मैं उपस्थित था पर मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नहीं आता जब मैंने सोचा हो कि उन्होंने अमुक भाव प्रकट नहीं किया होता या अमुक विशेषणका व्यवहार न किया होता तो अच्छा होता। उनके विचारोंकी स्पष्टता दृढ़ता विनय इत्यादि उनके अतिशय परिश्रम और सत्यपरायणताका प्रसाद थी।

जोहान्सबर्गमें केवल हिंदुस्तानियोंकी विराट् सभा भी होनी ही चाहिए थी। मेरा यह आग्रह पूर्वकालसे ही चला आ रहा है कि हम या तो अपनी मातृभाषामें बोलें या राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानीमें। इस आग्रहकी बदौलत दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके साथ मेरा संबंध सरल और निकटका हो गया। इससे मैं सोचता था कि हिंदुस्तानियोंके साथ गोखले भी हिंदुस्तानीमें ही बोलें तो अच्छा है। इस विषयमें गोखलेके विचार मुझे मालूम थे। टूटी-फूटी हिंदीसे वह अपना काम चला ही नहीं सकते थे। इसलिए या तो मराठीमें बोलते या अंग्रेजीमें। मराठीमें बोलना उन्हें बनावटी-सा जान पड़ा और उसमें बोलें भी तो गुजराती और उत्तर भारतवाले श्रोताओंके लिए उसका हिंदुस्तानी उलथा तो करना ही होता। तो फिर अंग्रेजीमें ही क्यों न बोलें ? सौभाग्यवश मेरे पास एक ऐसी दलील थी जिससे गोखले मराठीमें बोलना मंजूर कर लें। जोहान्सबर्गमें कोंकणके बहुतसे मुसलमान बसते थे। थोड़े महाराष्ट्रीय हिंदू तो थे ही। इन सभीको गोखलेका मराठी भाषण सुननेकी बड़ी इच्छा थी और उन्होंने मुझसे कह रखा

था कि गोखलेसे मराठीमें बोलनेकी प्रार्थना करूं। मैंने उनसे कहा— आप मराठीमें बोलेंगे तो ये लोग बहुत खुश होंगे और आप जो बोलेंगे उसका हिंदुस्तानी तरजुमा मैं कर दूंगा।" यह खिलखिलाकर हंस पड़े और बोले— 'तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मैं सब जानता हूं। यह हिंदुस्तानी तुमको मुबारक हो। पर तुम मराठीका उल्था हिंदुस्तानीमें करने चले हो। यह तो बताओ कि इतनी मराठी तुमने कहां सीखी?' मैंने जवाब दिया—"जो बात आपने मेरी हिंदुस्तानीके बारेमें कही है वही मराठीकी भी समझिए। मराठीका एक अक्षर भी मैं बोल नहीं सकता। पर जिस विषयका मुझे ज्ञान है उस विषयपर आप मराठीमें जो कुछ कहेंगे उसका भावार्थ मैं जरूर समझ जाऊंगा। इतना तो आप देख लेंगे कि मैं लोगोंके सामने उसका अनर्थ कदापि न करूंगा। मैं आपको ऐसे उल्था करनेवाले दे सकता हूं जो मराठी अच्छी तरह समझते हैं, पर शायद आप इसको पसंद न करें। अतः मुझे निभा लीजिएगा और मराठीमें ही बोलिएगा। कोंकणी भाइयोंके जैसी मुझे भी आपका मराठी भाषण सुननेकी हवस है।

'तुम अपनी टेक जरूर रखना। यहां तुम्हारे पाले पड़ा हूं इसलिए छुटकारा थोड़े ही पा सकता हूं' यों कहकर मुझे रिझाया और इसके बाद ऐसी सभाओंमें ठेठ जंजीबारतक मराठीमें ही बोले और मैं उनका विशेष रूपसे नियुक्त भाषांतरकार रहा। मैं नहीं जानता कि यह बात मैं उन्हें कहां तक समझा सका कि मुहावरेदार और व्याकरण-शुद्ध अंग्रेजीमें बोलनेकी अपेक्षा यथासंभव मातृभाषा यहां तक कि टूटी-फूटी व्याकरण रहित हिंदीमें ही बोलना मुनासिब है। पर इतना जानता हूं कि दक्षिण अफ्रीकामें वह महज मुझे खुश करनेकी खातिर मराठीमें बोले। मराठीमें कुछ भाषण देनेके बाद इसके फलसे उन्हें भी प्रसन्नता हुई, यह मैं देख सका। गोखलेने दक्षिण अफ्रीकामें अनेक अवसरोंपर अपने व्यवहारसे यह दिखा दिया कि जहां सिद्धांतका प्रश्न नहीं वहां अपने

सेवकोंको प्रसन्न करना गुण है।

१२ :

गोखलेकी यात्रा—२

जोहान्सबर्गसे हमें प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामें गोखलेको यूनियन सरकारकी ओरसे निमंत्रण था। अतः टांसवाल होटलमें उसने उनके लिए जो स्थान खाली रखवाया था वहीं उतरना था। यहां गोखलेको यूनियन सरकारके मन्त्रिमंडलसे मिलना था जिसमें जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे। जैसा कि ऊपर बता चुका हूं उनका कार्यक्रम मैंने ऐसा बनाया था कि रोज करनेके कामोंकी सूचना मैं उन्हें सबेरे या वह पूछें तो अगली रातको दे दिया करता था। मंत्रिमंडलसे मिलनेका काम बड़ी जवाबदेहीका था। हम दोनोंने तै किया कि मैं उनके साथ न जाऊं, जानेकी इच्छा भी प्रकट न करूं। मेरी उपस्थिति-से मंत्रिमंडल और गोखलेके बीच कुछ-न-कुछ पर्दा पड़ जाता। मंत्रिगण भी भरकर स्थानीय भारतीयोंकी ओर इच्छा हो तो मेरी भी जो गलतियां मानते हों उन्हें न बता सकते। वे कुछ कहना चाहते हों तो उसे भी खुले दिलसे न कह सकते पर इससे गोखलेकी जिम्मेदारी दुगनी हो जाती थी। कोई तथ्यकी भूल हो जाय या वे कोई नया तथ्य सामने रखें और उसका जवाब गोखलेके पास न हो अथवा उन्हें हिंदुस्तानियोंकी ओरसे कोई स्वीकृति देनी हो तो उस दशामें क्या करना होगा यह समस्या उपस्थित हो गई। पर गोखलेने तुरंत उसका हल निकाल लिया। मैं उनके लिए भारतीयोंकी स्थितिका अबसे इति तक खुलासा तैयार कर दूं। भारतीय कहांतक जानेको तैयार हैं, यह भी लिख दूं। उसके बाहरकी कोई भी बात सामने आये तो गोखले अपना अज्ञान स्वीकार कर लें। यह निश्चय करके वह निश्चिन्त हो गए। अब करना इतना ही रहा कि मैं उस तरहका

खुलासा तैयार कर दूं और मोखले उसे पढ़ लें। पर वह उसे पढ़ लें इतना वक्त तो मैंने रखा ही नहीं था। कितना ही छोटा खुलासा लिखूं फिर भी चार उपनिवेशोंमें भारतीयोंकी स्थितिका इतिहास दस बीस पन्ने लिखे बिना कैसे दे सकता था! फिर उस खुलासेको पढ़नेके बाद उनके मनमें कुछ सवाल तो उठते ही। पर उनकी स्मरणशक्ति जितनी तीव्र थी वैसे ही श्रम करनेकी शक्ति अगाध थी। सारी रात जागे और पोलकको और मुझे जगाया। एक-एक बातकी पूरी जानकारी प्राप्त की और उन्होंने भी समझा या नहीं इसकी जांच भी करा ली। अपने विचार मुझे सुनाते जाते। अंतमें उन्हें संतोष हुआ। मैं तो निर्भय था ही।

लगभग दो घंटे या इससे कुछ अधिक वह मंत्रिमंडलके पास बैठे और लौटकर मुझसे कहा– 'तुम्हें एक बरसके अंदर हिंदुस्तान लौट जाना है। सब बातोंका फैसला हो गया। खूनी कानून रद होगा। इमिग्रेशन कानूनसे वर्णभेद निकाल दिया जायगा। तीन पौंडका कर उठा दिया जायगा।' मैंने कहा 'मुझे इसमें पूरी शंका है। मंत्रिमंडलको जितना मैं जानता हूं उतना आप नहीं जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है, क्योंकि मैं खुद भी आशावादी हूं पर अनेक बार धोखा खा चुका हूं। इसलिए इस विषयमें आपकी जितनी आशा मैं नहीं रख सकता। पर मुझे कोई डर नहीं। आप मंत्रिमंडलसे वचन ले आये इतना ही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो इतना ही है कि जब आवश्यक हो तब लड़ लूं और यह साबित कर दूं कि हमारी लड़ाई न्यायकी है। इसकी सिद्धिमें आपको मिला हुआ वचन हमारे लिए बहुत सामजनक होगा और लड़ना पड़ा ही तो लड़नेमें उससे हमारा बल दूना हो जायगा। पर अधिक भार तीयोंके जेलमें गये बिना और एक सालके अंदर मैं हिंदुस्तान लौट सकता हूं ऐसा मुझ नहीं दिखाई देता।

यह सुनकर वह बोले– मैं तुमसे जो कहता हूं उसमें फर्क पड़नेवाला नहीं। मुझे जनरल बोथाने वचन दिया है कि खूनी

कानून रद कर दिया जायगा और तीन पौंडका कर उठा दिया जायगा। तुम्हें बारह महीनेके अंदर हिंदुस्तान लौटना ही होगा। मैं तुम्हारा एक भी बहाना सुननेवाला नहीं।"

जोहान्सबर्गका भाषण प्रिटोरियाकी यात्राके बाद हुआ था। ट्रांसवालसे गोखले डर्बन मेरित्सबर्ग आदि स्थानोंमें गये। वहां भी बहुतसे यूरोपियनोंसे मिले-जुले। किम्बरलीकी हीरेकी खान भी देखी। किम्बरली और डर्बनमें भी स्वागतमंडलकी ओरसे जोहान्सबर्गकी जैसी दावतें की गई और उनमें भी बहुतसे यूरोपियन सम्मिलित हुए। यों भारतीय और यूरोपियन दोनोंके मन हर कर गोखलेने १९१२की १७वीं नवंबरको दक्षिण अफ्रीकाके समुद्र-तटसे प्रस्थान किया। उनकी इच्छासे मैं और मि० केलनबेक जंजीबारतक उन्हें पहुंचाने गये। स्टीमरपर उनके लिए ऐसे भोजनका प्रबंध कर दिया था जो उनकी प्रकृतिके अनुकूल हो। रास्तेमें डेलागोआ बे इन्हामबेन जंजी बार आदि बंदरगाहोंपर भी उनका खूब सम्मान कियागया।

स्टीमरपर हमारे बीच होनेवाली बातचीतका विषय केवल हिंदुस्तान या उसके प्रति हमारा धर्म ही होता। उनकी हर बातमें उनकी कोमल भावना उनकी सत्यपरायणता और उनका स्वदेशाभिमान झलक उठता। मैंने देखा कि स्टीमरपर वह जो खेल खेलते उसमें भी खेलकी बनिस्बत हिंदुस्तानकी सेवाका भाव अधिक होता। उसमें भी संपूर्णता तो होनी ही चाहिए थी।

स्टीमरपर हमें इतमीनानसे बातें करनेकी फुरसत तो रहती ही। इस वार्तालापोंमें उन्होंने मुझे हिंदुस्तानके लिए तैयार किया। भारतके हरएक नेताके परित्रका विश्लेषण करके दिखाया। उनका विश्लेषण इतना सही था कि उन नेताओंके विषयमें जो कुछ मैंने स्वयं अनुभव किया उसमें और गोखलेके आलेखनमें शायद ही कहीं फर्क पाया हो।

गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रामें उनके साथ मेरा जो संबंध रहा उसके कितने ही पवित्र संस्मरण ऐसे हैं जो यहां दिये

जा सकते हैं पर सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका संबंध नहीं है, इससे मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलम रोकनी पड़ रही है। जंजीबारमें हुआ वियोग मेरे और मि० कैलनबेक दोनोंके लिए अतिशय दुःखदायी था पर यह सोचकर कि देहधारियोंके निकट से-निकट संबंधका भी एक दिन अंत होता ही है हमने धैर्य धारण किया और दोनोंने यह आशा रखी कि गोखलेकी भविष्यवाणी सत्य होगी और हम दोनों एक बरसके अंदर हिंदुस्तान जा सकेंगे। पर यह अनहोनी बात निकली।

फिर भी गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्राने हमें अधिक दृढ़ किया और कुछ दिन बाद जब युद्ध फिर अधिक तीव्ररूपमें आरंभ हुआ तब इस यात्राका मर्म और उसकी आवश्यकता हम अधिक समझ सके। गोखले दक्षिण अफ्रीका न गये होते और मंत्रिमंडलसे न मिले होते तो तीन पौंडके करको हम युद्धका विषय न बना सके होते। अगर खूनी कानून रद हो जानेपर सत्याग्रहकी लड़ाई बंद हो जाती तो तीन पौंडके करके लिए हमें नया सत्याग्रह करना पड़ता और उसे करनेमें अपार कष्ट सहन करना पड़ता। इतना ही नहीं लोग तुरंत दूसरे सत्याग्रहके लिए तैयार होते या नहीं इसमें भी शंका ही थी। इस करको रद कराना स्वतंत्र भारतीयोंका फर्ज था। इसके लिए अर्जियां भेजना आदि सब वैध उपाय किये जा चुके थे। १८९५से यह कर अदा किया जा रहा था। पर कैसा ही घोर कष्ट क्यों न हो वह लंबे अरसेतक बना रहे तो लोग उसके आदी हो जाते हैं और उसके विरोध करनेका धर्म उन्हें समझाना कठिन हो जाता है, दुनियाको उसकी घोरता समझाना भी उतना ही कठिन हो जाता है। गोखलेको मिले हुए वचनने सत्याग्रहियोंका रास्ता साफ कर दिया। या तो सरकार अपने वचनके अनुसार उक्त करको उठा दे नहीं तो यह वचन-भंग ही लड़ाईका सबल कारण हो जाता। हुआ भी ऐसाही। सरकारने एक बरसके अंदर कर नहीं उठाया। इतना ही नहीं साफ कह दिया कि वह हटाया नहीं जा सकता।

अतः गोखलेकी यात्रासे तीन पौंडके करको सत्याग्रहके जरिये हटवानेमें हमें मदद तो मिली ही; इस यात्रासे वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके विशेषज्ञ मान लिये गये। दक्षिण अफ्रीकाके बारेमें उनके कथनका वजन भी बढ़ गया। साथ ही दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले भारतीयोंके विषयमें निजी जानकारी हो जानेके कारण इस बातको अधिक समझने लगे कि हिंदुस्तानको उनके लिए क्या करना चाहिए और हिंदुस्तानको यह बात समझानेमें उनकी शक्ति तथा अधिकार बहुत बढ़ गया। हमारी लड़ाई जब फिर छिड़ी तो हिंदुस्तानसे पैसेकी वर्षा होने लगी और लार्ड हार्डिजने सत्याग्रहियोंके साथ अपनी गहरी और ज्वलन्त सहानुभूति दरसाकर उन्हें प्रोत्साहन दिया। हिंदुस्तानसे मि० एंड्रूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका गये। गोखलेकी यात्राके बिना ये सभी बातें असंभव होतीं।

वचन भंग कैसे हुआ और उसके बाद क्या हुआ यह नये प्रकरणका विषय है।

१४ :

वचन-भंग

दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्राममें इतने सूक्ष्म विचार से काम लिया जा रहा था कि प्रचलित नीतिके विरुद्ध एक भी कदम नहीं उठाया जाता। इतना ही नहीं बल्कि इस बातका भी ध्यान रखा जाता कि सरकारको अनुचित रीतिसे कष्ट न पहुंचाया जाय। मिसालके लिए, खूनी कानून केवल ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोंपर लागू किया गया था। इससे सत्याग्रह-नीतिमें केवल ट्रांसवालके भारतीय ही शामिल किये जाते थे। नेटाल केप कोलोनी इत्यादिसे सत्याग्रहियोंकी भरती करनेका कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया बल्कि वहांसे आए हुए इसके प्रस्ताव भी छोटा दिये गये। लड़ाईकी

जा सकते हैं पर सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका संबंध नहीं है इससे मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलम रोकनी पड़ रही है। जंजीबारमें हुआ वियोग मेरे और मि० केलनबेक दोनोंके लिए अतिशय दुःखदायी था पर यह सोचकर कि देहधारियोंके निकट से-निकट संबंधका भी एक दिन अंत होता ही है हमने धैर्य धारण किया और दोनोंने यह आशा रखी कि गोखलेकी भविष्यवाणी सत्य होगी और हम दोनों एक बरसके अंदर हिंदुस्तान जा सकेंगे। पर यह अनहोनी बात निकली।

फिर भी गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्राने हमें अधिक दृढ़ किया और कुछ दिन बाद जब युद्ध फिर अधिक तीव्ररूपमें आरंभ हुआ तब इस यात्राका मर्म और उसकी आवश्यकता हम अधिक समझ सके। गोखले दक्षिण अफ्रीका न गये होते और मंत्रिमंडलसे न मिल होते तो तीन पौंडके करको हम युद्धका विषय न बना सके होते। अगर खूनी कानून रद हो जानेपर सत्याग्रहकी लड़ाई बंद हो जाती तो तीन पौंडके करके लिए हमें नया सत्याग्रह करना पड़ता और उसे करनेमें अपार कष्ट सहन करना पड़ता। इतना ही नहीं लोग तुरंत दूसरे सत्याग्रहके लिए तैयार होते या नहीं इसमें भी शंका ही थी। इस करको रद कराना स्वतंत्र भारतीयोंका फर्ज था। इसके लिए अर्जियां भेजना आदि सब वैध उपाय किये जा चुके थे। १८९५से यह कर अदा किया जा रहा था। पर कैसा ही घोर कष्ट क्यों न हो वह लंबे अरसेतक बना रहे तो लोग उसके आदी हो जाते हैं और उसके विरोध करनेका धर्म उन्हें समझाना कठिन हो जाता है दुनियाको उसकी घोरता समझाना भी उतना ही कठिन हो जाता है। गोखलेको मिले हुए वचनने सत्याग्रहियोंका रास्ता साफ कर दिया। या तो सरकार अपने वचनके अनुसार उक्त करको उठा दे नहीं तो यह वचन भंग ही लड़ाईका सबल कारण हो जाता। हुआ भी ऐसाही। सरकारने एक बरसके अंदर कर नहीं उठाया। इतना ही नहीं साफ कह दिया कि वह हटाया नहीं जा सकता।

स अपने आपको बंधा नहीं मानती थी। उसने सत्याग्रहियोंपर दो-चार बार नीति भंगका इलजाम लगाया। खूनी कानूनके बाद हिंदुस्तानियोंके खिलाफ कोई नया कानून गढ़ा जाय तो उसका समावेश सत्याग्रहके हेतुओंमें हो सकता है इस बातको एक बच्चा भी समझ सकता है। फिर भी जब नये दाखिल होनेवाले हिंदुस्तानियोंपर नया प्रतिबंध लगाया गया और वह लड़ाईके हेतुओंमें शामिल कर लिया गया तब सरकारने उनपर युद्ध-हेतुओंमें नये विषयोंको शामिल करनेका इलजाम लगाया। यह आरोप सोलहों आने अनुचित था। अगर नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंपर ऐसी रुकावटें लगाई गईं जो पहले नहीं थीं तो उनको भी युद्धके हेतुओंमें शामिल करनेका हक हमें होना ही चाहिए था और हम देख चुके हैं कि सोराबजी वगैरह इसीलिए ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरकारको यह बात बर्दाश्त नहीं हो सकती थी। पर निष्पक्ष आदमियोंको इस कदमका औचित्य समझानेमें मुझे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई।

गोखलेकी रवानगीके बाद ऐसा मौका फिर आया। गोखलेने तो माना था कि तीन पौंडका कर एक बरसके अंदर रद हो हो जायगा और उनके जानेके बाद यूनियन पार्लमेंटका जो अधिवेशन होगा उसमें उस कर रद करनेके कानूनका मसविदा पास कर लिया जायगा। इसके बदले जनरल स्मट्सने यह प्रकट किया कि नेटालके यूरोपियन यह कर उठा देनेको तैयार नहीं हैं। इसलिए यूनियन सरकार उसे रद करनेका कानून पास करनेमें असमर्थ है। परन्तु ऐसी कोई बात नहीं थी। यूनियन पार्लामेंटमें चारों उपनिवेशोंके प्रतिनिधि बैठते हैं। अकेले नेटालके सदस्योंकी उसमें कुछ नहीं चल सकती थी। फिर मन्त्रिमंडलके पेश किये हुए बिलको पार्लमेंट नामंजूर कर दे [illegible] माना सकता था। जनरल स्मट्सने इसमेंसे कुछ भी नहीं किया। इससे हमें इस क्रूर करको युद्धके कारणोंमें सम्मिलित कर लेनेका सुयोग सहज ही मिल गया। इसके लिए हमें दो कारण मिले। एक तो यह कि चलती लड़ाईके दरमियान सरकारने

मर्यादा भी इस कानूनको रद करानेतक ही थी। इस बातको न गोरे समझ सकते थे न भारतीय। आरम्भमें भारतीयोंकी ओरसे यह मांग हुआ करती थी कि अगर लड़ाई शुरू करनेके बाद खूनी कानूनके अतिरिक्त और कष्टोंको भी हम उसके उद्देश्योंमें शामिल कर सकते हों तो क्यों न कर लें? मैंने उन्हें धीरजके साथ समझाया कि इसमें सत्यका भंग होता है और जिस युद्धमें सत्यका ही आग्रह हो उसमें उसके भंगकी बात कैसे सोची जा सकती है? शुद्ध युद्धमें तो लड़ते-लड़ते लड़नेवालोंका बल बढ़ता हुआ दिखाई दे तो भी युद्ध आरम्भ करते समय जो उद्देश्य नियत किये गये हों उनसे आगे जा ही नहीं सकते। दूसरी ओर लड़नेका बल अगर दिन दिन छीजता दिखाई दे तो भी जिस हेतुके लिए लड़ाई छेड़ी गई हो उसका त्याग नहीं किया जा सकता। इन दोनों सिद्धांतोंपर दक्षिण अफ्रीकामें पूरी तरह अमल किया गया। युद्ध आरंभ करते समय जिस बलके भरोसे हमने युद्धका लक्ष्य नियत किया हमने देखा कि आगे चलकर वह बल झूठा निकला फिर भी जो मुट्ठीभर सत्याग्रही बच रह गये वे युद्धका त्याग नहीं कर सके। इस प्रकार लड़ना अपेक्षाकृत आसान होता है और बलमें वृद्धि होते हुए भी उद्देश्यमें वृद्धि न करना उससे कहीं कठिन होता है। इसमें अधिक संयम दरकार होता है। ऐसे प्रलोभन दक्षिण अफ्रीकामें अनेक बार हमारे सामने आये पर मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि उसका लाभ हमने एक बार भी नहीं उठाया और इसीसे मैंने अक्सर कहा है कि सत्याग्रहीके लिए एक ही निश्चय होता है। वह उसे न घटा सकता है, न बढ़ा सकता है। उसमें न क्षयका अवकाश होता है और न वृद्धिका। आदमी जो पैमाना अपने लिए तै करता है दुनिया भी उसको उसी पैमानेसे नापती है। सरकारने जब जान लिया कि सत्याग्रही ऐसी सूक्ष्म नीति बरतनेका दावा करते हैं तब उसने उनके ही पैमानेसे उनको नापना शुरू कर दिया हालांकि वह खुद उस नीतिके एक भी नियम सिद्धान्-

स अपने आपको बंधा नहीं मानती थी। उसने सत्याग्रहियोंपर दो-चार बार नीति भंगका इलजाम लगाया। खूनी कानूनके बाद हिंदुस्तानियोंके खिलाफ कोई नया कानून बना जाय तो उसका समावेश सत्याग्रहके हेतुओंमें हो सकता है इस बातको एक बच्चा भी समझ सकता है। फिर भी जब नये दाखिल होनेवाले हिंदुस्तानियोंपर नया प्रतिबंध लगाया गया और यह लड़ाईके हेतुओं में शामिल कर लिया गया तब सरकारने उनपर युद्ध-हेतुओंमें नये विषयोंको शामिल करनेका इलजाम लगाया। यह आरोप सोलहों आने अनुचित था। अगर नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंपर ऐसी रुकावटें लगाई गई जो पहले नहीं थीं तो उनको भी युद्धके हेतुओंमें शामिल करनेका हक हमें होना ही चाहिए था और हम देख चुके हैं कि सोराबजी प्रभृति इसीलिए ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरकारको यह बात बर्दाश्त नहीं हो सकती थी। पर निष्पक्ष लोगोंको इस कदमका औचित्य समझानेमें मुझे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई।

ओरसे कोई वचन दिया जाय और फिर उस वचनका भंग किया जाय तो यह वचन भंग पहले सत्याग्रहके कार्य क्रममें शामिल हो जाता है। दूसरा यह कि हिंदुस्तानके गोखले सरीखे प्रतिनिधिको दिया हुआ वचन तोड़ा जाय तो यह उनका ही नहीं सारे हिंदुस्तानका अपमान है और यह अपमान सहन नहीं किया जा सकता। केवल पहला ही कारण होता और सत्याग्रहियोंमें शक्ति न होती तो उक्त करको रद करनेके लिए सत्याग्रह करना वह छोड़ सकते थे। पर जब उससे हिंदुस्तानका अपमान हो रहा हो तब तो उसे सहन कर लेना संभव ही नहीं था। इसलिए तीन पौंडके करको युद्धके कार्य क्रममें शामिल कर लेना सत्याग्रहियोंको फर्ज जान पड़ा और जब तीन पौंडके करको युद्धके हेतुओंमें स्थान मिल गया तब गिरमिटिया हिंदुस्तानियोंको भी सत्याग्रहमें सम्मिलित होनेका मौका मिल गया। पाठकोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि अबतक ये लोग लड़ाईसे बाहर ही रखे गये थे। अतः एक ओर तो लड़ाईका बोझ बढ़ा और दूसरी ओर लड़नेवालोंके भी बढ़नेका समय आया हुआ दिखाई दिया।

गिरमिटियों से अबतक सत्याग्रहकी शिक्षा देनेकी तो बात ही क्या लड़ाईकी चर्चातक नहीं की गई थी। वे निरक्षर थे इसलिए 'इंडियन ओपीनियन' या दूसरे अखबार कहांसे पढ़ सकते थे? फिर भी मैंने देखा कि ये गरीब लोग सत्याग्रहका निरीक्षण कर रहे थे और जो कुछ हो रहा था उसको समझ रहे थे। कुछको इस लड़ाईमें शामिल न हो सकनेका दुःख भी था। पर जब वचन भंग हुआ और तीन पौंडका कर भी युद्धके हेतुओंमें शामिल किया गया तब उनमेंसे कौन लड़ाईमें शामिल होगा इसका मुझे कुछ भी पता नहीं था।

वचन भंगकी बात मैंने गोखलेको लिखी। उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। मैंने उन्हें लिखा कि आप निश्चिंत रहें, हम मरते दमतक लड़ेंगे और इस करको रद कराके रहेंगे। हां एक बरसके अंदर जो मुझे हिंदुस्तान लौटना था वह टला और पीछे कब लौट

हुए तो उनसे मिलना-जुलना नेटालमें अधिक सुभीतेसे हो सकता था। इस प्रकार फिनिक्सको केन्द्र बनाना तै हुआ।

लड़ाई शुरू करनेकी तैयारी चल ही रही थी कि इतनेमें एक नया विघ्न उपस्थित हो गया जिससे स्त्रियोंको भी लड़ाईमें शामिल करनेका मौका मिला। कुछ वीर स्त्रियां उसमें शामिल होनेकी मांग पहले ही कर चुकी थीं और जब बिना परवाना दिखाये फेरी करके जेल जाना आरंभ हुआ तब फेरी करनेवालोंकी स्त्रियोंने भी जेल जानेकी इच्छा प्रकट की थी। पर उस वक्त परदेशमें स्त्रीवर्गको जेल भेजना हम सबको अयोग्य जान पड़ा। उन्हें जेल भेजनेका कारण भी नहीं दिखाई दिया और उन्हें जेल ले जानेकी मेरी तो उस वक्त हिम्मत भी नहीं थी। इसके साथ साथ यह भी दिखाई दिया कि जो कानून खास तौरसे मर्दोंपर ही लागू होता हो उसको रद करानेमें स्त्रियोंको रोकना मर्दोंके लिए जिल्लतकी बात होगी। पर इस वक्त एक ऐसी घटना हुई जिसमें स्त्रियोंका खास तौरसे अपमान होता था और हमें जान पड़ा कि इस अपमानको दूर करनेके लिए स्त्रियां भी बलिदान हो जाएं तो अनुचित न होगा।

१५

ब्याह ब्याह नहीं रहा

मानो अदृश्य रहकर हिंदुस्तानियोंकी जीतका सामान तैयार कर रहा हो और दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके अन्यायको अधिक स्पष्ट रीतिसे प्रकट कर देना चाहता हो, दक्षिण अफ्रीकामें एक ऐसी घटना हुई जिसकी संभावना किसीको भी नहीं थी। हिंदुस्तानसे बहुतेरे विवाहित लोग दक्षिण अफ्रीका गये थे और कुछने वहीं ब्याह किया था। हिंदुस्तानमें साधारण ब्याहोंको रजिस्टरी करानेका कानून तो है ही नहीं। धार्मिक क्रिया ही काफी समझी जाती है। दक्षिण अफ्रीकामें भी हिंदुस्तानियोंके लिए यही प्रथा होनी

चाहिए थी। हिंदुस्तानी चालीस बरससे उस देशमें बस रहे थे। फिर भी हिंदुस्तानके भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुसार हुए ब्याह नाजायज नहीं समझे गये थे। पर इस वक्त एक मुकदमा ऐसा हुआ जिसमें केप सुप्रीमकोर्टके एक न्यायाधीशने यह फैसला दिया कि दक्षिण अफ्रीकाके कानूनमें वही ब्याह जायज माना जायगा जो ईसाई धर्मकी रीतिसे संपन्न हुआ हो और जिसकी रजिस्टरी विवाहके अधिकारी (रजिस्ट्रार आव मैरिजेज) के यहां करा ली गई हो। अर्थात् हिंदू मुसलमान पारसी इत्यादि धर्मोंकी विधिसे हुए ब्याह इस भयंकर निर्णयसे दक्षिण अफ्रीकामें रद्द हो गये और बहुत-सी विवाहिता भारतीय महिलाओंका दरजा दक्षिण अफ्रीकामें अपने पतिकी धर्म-पत्नीका न रहकर रखेलीका हो गया और उनकी संतानका बापकी कमाई पानेका हक भी नहीं रहा। यह स्थिति न स्त्रियोंको सहन हो सकती थी, न पुरुषों को। दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले हिंदुस्तानियोंमें भारी खलबली मची। मैंने अपने स्वभावके अनुसार सरकारसे पूछा कि सरकार न्यायाधीशके इस निर्णयको मान लेगी या कानूनका उन्होंने जो अर्थ किया है वह सही हो तो भी यह अनर्थ है यह समझकर नया कानून बनाकर हिंदू मुसलमान इत्यादि धर्मोंकी विधिसे हुए ब्याहोंको जायज मान लेगी? सरकारका जी इस वक्त ऐसा नहीं था कि वह हमारी बातकी परवा करती। इसलिए जवाब इनकारी ही मिला।

उस निर्णयके विरुद्ध अपील की जाय या नहीं, इसपर विचार करनेके लिए सत्याग्रह-मण्डलकी बैठक हुई। अंतमें सभा ने निश्चय किया कि इस मामलेमें अपील हो ही नहीं सकती। अपील करनी ही हो तो सरकार करे या वह चाहे तो अपने वकील (अटर्नी जनरल) की मारफत खुले तौरपर हिंदुस्तानियोंका पक्ष ले, तभी हिंदुस्तानी अपील कर सकते हैं। इसके बिना अपील करना हिंदू-मुसलमान विवाहोंका नाजायज ठहराया जाना सहन कर लेना-सा होता। फिर अपील की गई और उसमें हमारी हार हुई तो सत्याग्रह करना ही हुआ। अब इन

अपमानके बारेमें अपील की ही नहीं जा सकती।

अब ऐसा वक्त आ गया जब शुभतिथि या मंगलमुहूर्तकी राह देखी जा ही नहीं सकती थी। स्त्रियोंका अपमान होनेके बाद धीरज कैसे रहता? थोड़े या बहुत जितने भी आदमी मिल जाएं उन्हींको लेकर तीव्र रूपमें सत्याग्रह आरंभ करने का निश्चय किया गया। अब स्त्रियोंका लड़ाईमें शामिल होना रोका नहीं जा सकता था। इतना ही नहीं हमने उन्हें लड़ाईमें शामिल होनेका निमंत्रण देनेका निश्चय किया। पहले तो जो बहनें टाल्स्टाय फार्ममें रह चुकी थीं उन्हीं को निमंत्रण दिया गया। वे बहनें तो लड़ाईमें शामिल होनेको बेचैन हो रही थीं। मैंने उन्हें लड़ाईकी सभी जोखिमें बता दीं। खाने-पीने कपड़े-लत्ते सोने-बैठनेमें पाबंदियां होंगी यह समझा दिया। यह चेतावनी दे दी कि जेलमें उन्हें सख्त मशक्कत करनी होगी। कपड़े धुलवाने जाएंगे। अमले अपमान करेंगे। पर यह बहनें एक भी बातसे नहीं डरीं। सभी बहादुर थीं। एकके तो कई महीनेका गर्भ था। कुछकी गोदमें बच्चे थे पर उन्होंने भी शामिल होनेका आग्रह किया और उनमेसे किसीको भी रोक सकना मेरे बसकी बात नहीं थी। ये सभी बहनें तामिल थीं। उनके नाम ये हैं—

१ श्रीमती थंबी नायडू	२ श्रीमती एन० पिल्ले
३ श्रीमती के० मुरुगेसा पिल्ले	४ श्रीमती ए० पी० नायडू
५ श्रीमती पी० के० नायडू	६ श्रीमती चिन्नस्वामी पिल्ले
७ श्रीमती एन० एस० पिल्ले	८. श्रीमती मुरुलिंगम्
९ श्रीमती भवानी दयाल	१० श्रीमती एम० पिल्ले
११ श्रीमती एम० बी० पिल्ले।	

इनमेंसे ६ बहनोंकी गोदमें बच्चे थे।

अपराध करके जेल जाना आसान है। निर्दोष होते हुए अपने आपको गिरफ्तार कराना कठिन है। अपराधी गिरफ्तार होना नहीं चाहता इससे पुलिस उसके पीछे लगी रहती है और उसे पकड़ती है। पर जो अपनी खुशीसे और निरपराध होते

हुए जेल जाना चाहता है उसको पुलिस तभी पकड़ती है जब वह इसके लिए लाचार हो जाती है। इन बहनोंका पहला यत्न विफल हुआ। उन्होंने बिना परवानेके ट्रांसवालमें दाखिल होकर फेरी की पर पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार करने से इंकार किया। उन्होंने फीनिक्ससे अरेंजिया (आरेंज फ्री स्टेट) की सरहदमें बिना अनुमतिके प्रवेश किया। फिर भी किसीने उन्हें न पकड़ा। अब स्त्रियोंके सामने यह सवाल खड़ा हो गया कि वह किस तरह अपने आपको गिरफ्तार कराएं। ज्यादा मर्द गिरफ्तार होनेको तैयार नहीं थे और जो थे उनके लिए अपने आपको गिरफ्तार कराना आसान नहीं था।

हमने यह कदम उठानेका निश्चय किया जिसे आखिरके लिए सोच रखा था। यह कदम बड़ा प्रभावकारी सिद्ध हुआ। मैंने सोच रखा था कि युद्धके अंतिम पर्वमें फिनिक्सके अपने सभी साथियोंको होम दूंगा। यह मेरे लिए अंतिम त्याग था। फिनिक्स में रहनेवाले मेरे अंतरंग सहयोगी और संबंधी थे। खयाल यह था कि अखबार चलानेके लिए जितने आदमी चाहिए उतने आदमियों और सोलह बरस से नीचेके लड़के-लड़कियोंको छोड़कर बाकी सबको जेल-यात्राके लिए भेज दें। इससे अधिक त्याग करनेके साधन मेरे पास नहीं थे। गोखलेको लिखते हुए जिन सोलह आदमियोंका उल्लेख किया था वे इनमेंसे ही थे। इन सज्जनोंको सरहद पार कर ट्रांसवालमें बिना परवानेके प्रवेश करनेके अपराधके लिए गिरफ्तार कराना था। डर था कि अगर इस कदमकी बात पहले ही प्रकट कर दी गई तो सरकार उनको नहीं पकड़ेगी। इसलिए दो चार मित्रोंको छोड़कर और किसीको मैंने यह बात नहीं बताई थी। सरहद लांघते समय पुलिस-अफसर सबका नाम-धाम पूछा करता था। इस बार उनका नाम धाम न बताना भी हमारी योजनाका अंग था। पुलिस अफसर को नाम धाम न बताना भी एक अलग अपराध माना जाता था। डर था कि नाम बताते ही पुलिस यह जान लेगी कि ये मेरे संबंधी हैं तो वह इन्हें गिरफ्तार नहीं करेगी। इसलिए

नाम व ठिकाना न बतानेकी बात सोची गई थी। इस कदमके साथ-साथ उन बहनोंको नेटालमें दाखिल होना था जो ट्रांसवाल में दाखिल होनेका विफल प्रयत्न कर रही थीं। जैसे नेटालसे परवानेके बिना ट्रांसवालमें दाखिल होना अपराध था वैसे ही ट्रांसवालसे नेटालमें बिना परवानेके दाखिल होना भी अपराध था। इसलिए हमने तै किया था कि पुलिस इन बहनोंको पकड़े तो वे अपने आपको नेटालमें गिरफ्तार करा दें और न पकड़े तो नेटालके कोयलेकी खानोंके केन्द्र न्यूकैसलमें आकर वहांके गिरमिटिया मजदूरोंसे खानोंसे निकल आनेका अनुरोध करें। इन बहनोंकी मातृभाषा तामिल थी। थोड़ी बहुत हिंदुस्तानी भी आती ही थी। मजदूरवर्गका बड़ा भाग मद्रास इलाकेका और तामिल-तेलगु बोलनेवाला था। उत्तरी हिंदुस्तानवाले भी काफी थे। मजदूर इन बहनोंकी बात सुनकर काम छोड़ दें तो सरकार मजदूरोंके साथ-साथ उन्हें भी गिरफ्तार किये बिना नहीं रहती। इससे मजदूरोंमें और ज्यादा जोश पैदा होनेकी पूरी संभावना थी। इस प्रकारकी व्यूह रचना मनमें करके मैंने उसे ट्रांसवाल की बहनोंको समझा दिया था।

इसके बाद मैं फिनिक्स गया। वहां सबके साथ बैठकर बातें कीं। पहले तो वहां रहनेवाली बहनोंके साथ मशविरा करना था। बहनों को जेल भेजना का कदम बड़ा भयानक है। यह मैं जानता था। फिनिक्स में रहनेवाली अधिकांश बहनें गुजराती थीं। अत उन्हें उक्त ट्रांसवालकी बहनों को तरह पुख्तेव या अनुभवी नहीं मान सकते थे। इसके सिवा यह बात भी थी कि उनमेंसे अधिकांश मेरी रिश्तेदार थीं। इस लिये हो सकता था कि मेरी लाज रखनेके लिए ही जेल जानेकी बात सोचें और पीछे कसौटी के समय डरकर या जेलमें जानेके बाद वहांके कष्ट से घबराकर माफी आदि मांग लें तो मेरे दिलको गहरा धक्का लगता और लड़ाई एकबारगी कमजोर हो जाती। अपनी पत्नीके बारेमें तो मैंने निश्चय कर लिया था कि उसको कभी नहीं ललचाऊंगा। उसके मुहसे

तो भी निकल ही नहीं सकता। और हां निकले तो उस हांकी भी कितनी कीमत समझूं यह मैं जान न सकता था। मैं समझता था कि ऐसी जोखिमके काम में पत्नी अपनी मर्जी से जो कुछ करे पतिको वही स्वीकार करना चाहिए और वह कुछ भी न करे तो उसका तनिक भी दुःख नहीं मानना चाहिए। इसलिए यह तै कर लिया था कि उसके साथ इस बारेमें बात ही नहीं करूंगा। दूसरी बहनोंके साथ मैंने बातें कीं। उन्होंने भी ट्रांसवालवाली बहनोंकी तरह तुरंत बीड़ा उठा लिया और जेल जानेको तैयार हो गईं। मुझे इस बातका इतमीनान दिलाया कि कैसा ही कष्ट क्यों न सहना पड़े वे अपनी सजा की मुद्दत पूरी करेंगी। पर इस सारी बातचीतका सार मेरी पत्नीने भी जान लिया। उसने मुझसे कहा— 'आप मुझे इस बात की खबर नहीं देते इसका मुझे दुःख होता है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल नहीं जा सकती? मुझे भी वही रास्ता लेना है जिसपर चलनेकी सलाह आप इन बहनोंको दे रहे हैं। मैंने जवाब दिया— 'तुम्हारा दिल दुखाने की बात मैं सोच ही नहीं सकता। इसमें अविश्वास की बात नहीं है। मैं तो तुम्हारे जेल जानेसे प्रसन्न ही हूंगा। पर मुझे इसका आभास तक नहीं होना चाहिए कि तुम मेरे कहनेसे जेल गई हो। ऐसे काम हरएक को अपनी हिम्मतसे ही करना चाहिए। मैं कहूं तो मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही जेल चली जाओगी। पीछे अदालतमें खड़ी होते ही कांपने लगो या हिम्मत हार दो अथवा जेल के कष्ट से कातर हो जाओ तो इसमें तुम्हारा दोष तो मैं मानूंगा पर मेरा क्या हाल होगा? मैं तुम्हें किस तरह ग्रहण कर सकूंगा? दुनियाके सामने कैसे मुंह दिखा सकूंगा? इसी डरसे मैंने तुम्हें जेल जाने को नहीं ललचाया। मुझे जवाब मिला— "मैं हिम्मत हारकर चली आऊं तो आप मुझे न अपनाएं। आप सब कष्ट सह सकते हैं। आप सब लोग सह सकते हैं और अकेली मैं ही नहीं सह सकूं यह आप कैसे मान रहे हैं? मुझे तो इस लड़ाईमें

शामिल करना ही होगा। मैंने जवाब दिया— तो तुम्हें शामिल करना ही होगा। मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो। मेरा स्वभाव भी जानती हो। अब भी सोचना-विचारना हो तो सोच विचार लो और भलीभांति विचार कर लेनेके बाद अगर तुम्हारा दिल कहे कि तुम्हें इसमें शामिल नहीं होना चाहिए तो तुम्हें इसकी आजादी है। और यह भी जान लो कि निश्चय बदलनेमें अभी कोई शर्म भी नहीं। जवाब मिला— "मुझे कुछ सोच-विचार करना ही नहीं है। मेरा निश्चय ही है।"

फिनिक्स में रहने वाले दूसरे लोगोंको भी मैंने स्वतंत्र रीतिसे निश्चय करनेकी सलाह दी थी। लड़ाई थोड़ दिन चले या बहुत दिन फिनिक्स-आश्रम कायम रहे या धर्मीबोल हो जाय जेल जानेवाले तंदुरुस्त रहें या बीमार हो जाए, पर कोई पीछे नहीं हट सकेगा यह शर्त मैंने बार-बार और तरह तरहसे कहकर समझा दी। सब तैयार हो गये। फिनिक्ससे बाहरके अकेले रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू थे। उनसे यह सारा विचार विमर्श छिपा रखा जाय यह नहीं हो सकता था। वह पीछे रहनेवाले आदमी भी नहीं थे। वह जेल हो भी आये थे पर फिर जाने का आग्रह कर रहे थे। इस जत्थेमें शामिल होनेवालों के नाम इस प्रकार हैं

१ श्री कस्तूर मोहनदास गांधी २ श्री जयाकुंवर मणिलाल डाक्टर ३ श्री काशी छगनलाल गांधी ४ सौ० सन्तोक मगनलाल गांधी ५ श्रीपारसी रुस्तमजी जीवन घोरखोदू ६ श्रीछगनलाल खुशालचंद गांधी ७ श्रीरावजी भाई मणिलाल पटेल ८ श्री मगन भाई हरिभाई पटेल ९ श्री सालोमन रायपन १ भाई रामदास मोहनदास गांधी ११ भाई राजगोविन्द १२ भाई शिवपूजन बद्री १३ गोविंद राजुलु १४ श्री कुप्पुस्वामी मुदालियार १५ भाई गोकुलदास हंसराज १६ रेवाशंकर रतनशी सोढा।

आगे क्या हुआ यह अगले प्रकरण में पढ़ियेगा।

१६

स्त्रियां जेलमें

इस जत्थेको सरहद पारकर बिना परवाने के ट्रांसवालमें दाखिल होनेके जुर्ममें गिरफ्तार होना था। नामसे पाठक देखेंगे कि उनमें कुछ ऐसे नाम हैं जो प्रकट हो जाते तो पुलिस शायद उन्हें गिरफ्तार नहीं करती। मेरे विषयमें यही बात हुई थी। एक-दो बार गिरफ्तार करनेके बाद सरहद पार करते वक्त पुलिसने मुझे पकड़ना छोड़ दिया था। इस जत्थेके कूचकी खबर किसीको नहीं दी गई थी। अखबारोंको तो दे ही कैसे सकते थे? जत्थेके सदस्योंको समझा दिया गया था कि वे पुलिसको भी नाम धाम न बताएं। पूछनेपर उससे कह दें कि हम अदालतमें नाम बतायेंगे।

पुलिस के सामने ऐसे मामले अकसर आते। अपने आपको गिरफ्तार करानेके आदी हो जानेके बाद हिंदुस्तानी अकसर मजेके लिए पुलिस को तंग करनेकी नीयतसे भी उसको नाम नहीं बताते थे। अतः इस जत्थेके नाम न बताने में उसे कोई विचित्रता नहीं जान पड़ी। पुलिसने इस जत्थेको गिरफ्तार किया। मुकदमा चला। सबको तीन-तीन महीने की कड़ी कैदकी सजा मिली।

जो बहनें ट्रांसवालमें अपने आपको गिरफ्तार करानेके प्रयत्नमें निराश हुई थीं वे नेटालकी सरहदमें दाखिल हुईं। पुलिसने उन्हें बिना परवानेके प्रवेश करनेके जुर्ममें गिरफ्तार नहीं किया। यह तै हुआ था कि पुलिस उन्हें न पकड़े तो वे न्यूकैसल जाकर पड़ाव करें और कोयलेकी खानोंके हिंदुस्तानी मजदूरोंसे अपना काम छोड़ देनेकी बिनती करें। न्यूकैसल नेटालमें कोयलेकी खानोंका केन्द्र है। इन खानोंमें मुख्यतः हिंदुस्तानी मजदूर ही काम करते थे। बहनोंने अपना काम शुरू किया। उसका असर बिजलीकी तरह फैल गया। तीन पौंडके

करकी कहानी उन्होंने सुनी तो उनपर गहरा असर हुआ। उन्होंने अपना काम छोड़ दिया। मुझसे तार मिला। मैं खुश हुआ पर इतना ही घबराया भी। मुझे क्या करना है? इस अद्भुत जागरणके लिए मैं तैयार नहीं था। मेरे पास पैसा नहीं था न इतने आदमी थे जो इस कामको संभाल लें। अपना फर्ज मैं समझता था। मुझे न्यूकैसेल जाना और जो कुछ हो सके वह करना था। मैं उठा और चल दिया।

सरकार अब इन बहादुर बहनोंको क्यों छोड़ने लगी? वे गिरफ्तार हुईं। उन्हें भी वही सजा मिली जो फिनिक्सवाले जत्थेको मिली थी—तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैद और उसी जेलमें रखी गईं।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय अब जागे। उनकी नींद टूटी। उनमें नई चेतना आई जान पड़ी। पर बहनोंके बलिदानने हिंदुस्तानको भी जगाया। सर फीरोजशाह मेहता अबतक तटस्थ थे। १९ १ में उन्होंने मुझे कड़े शब्दोंमें चेतावनी देकर दक्षिण अफ्रीका न जानेको समझाया था। उनका मत मैं पहले बता चुका हूं। सत्याग्रहकी लड़ाईका भी उनपर थोड़ा ही असर हुआ था। पर स्त्रियोंकी कैदने उनपर जादूका-सा असर डाला। बंबईके टाउनहालमें भाषण देते हुए उन्होंने खुद कहा कि स्त्रियोंकी जेल-यात्राने मेरी शांति भंग कर दी। हिंदुस्तानसे अब चुप बैठे नहीं रहा जा सकता।

बहनोंकी बहादुरीके क्या कहने! सभी नेटालकी राजधानी मारित्सबर्गमें रखी गईं। यहां उन्हें काफी कष्ट दिया गया। खुराकमें उनका जरा भी खयाल नहीं रखा गया। काम उन्हें कपड़े धोनेका दिया गया। बाहरसे खाना भेजनेकी सख्त मनाही लगभग आखिरतक रही। एक बहनने एक विशेष प्रकारके भोजनका ही व्रत ले रखा था। बड़ी कठिनाईसे उसे वह भोजन देनेका निश्चय हुआ। पर वह ऐसा होता था कि गलेसे उतारा न जा सके। उसे जैतूनके तेलकी खास जरूरत थी। पहले तो वह मिला ही नहीं। फिर मिला भी तो बरसोंका पुराना और

बदबूदार। अपने सर्पसे मंगानेकी प्रार्थना की गई तो जवाब मिला— 'यह कोई होटल नहीं है ! जो मिले वह खाना होगा। यह बहन जब जलसे निकली तो देहमें ठठरी भर रह गई थी। महाप्रयाससे जान बची।

एक दूसरी बहन भयकर ज्वर लेकर निकली। उस ज्वर ने रिहाई (२२ फरवरी १९१४) के बाद कुछ ही दिनोंमें उसे प्रभुके पास पहुंचा दिया। उसको मैं कैसे भूल सकता हूं ? वलि अम्मा सोलह सालकी लड़की थी। मैं जब उसको देखने गया तो वह खाटपर पड़ी थी। लंबे कदकी होनेसे उसकी लकड़ी जैसी देह डरावनी लगती थी।

मैंने पूछा 'वलिअम्मा जेल जानेका पछतावा तो नहीं हो रहा है न ?"

'पछतावा क्यों होगा ? मुझे तो फिर गिरफ्तार करें तो इस वक्त भी जेल जानेको तयार हूं।

पर उसका फल मृत्यु हो तो ?

'हुआ करे। देशके लिए मरना किसे न भायगा ?

इस बातचीतके कुछ ही दिन बाद वलिअम्मा स्वर्ग सिधारी। उसकी देह गई पर वह बाला अपना नाम अमर कर गई है। वलिअम्माकी मृत्युके बाद जगह-जगह शोक प्रकाश करनेवाली सभाएं हुईं और कौमने इस पवित्र बहनकी स्मृति रक्षाके लिए 'वलिअम्मा हाल' के नामसे एक सभा भवन बनाने का निश्चय किया। यह हाल बनानेका धर्मका कौमने अबतक पालन नहीं किया। उसमें अनेक विघ्न आये। कौममें फूट पड़ी। मुख्य कार्यकर्ता एकके पीछे एक छोड़कर चले गये। पर पत्थर चूनेका हाल बने या न बने वलिअम्माकी सेवाका नाश नहीं हो सकता। इस सेवाका हाल तो वह अपने हाथों से निर्माण कर गई है। उसकी मूर्ति आज भी बहुतेरे हृदय-मन्दिरोंमें विराजती है और जबतक भारतवर्षका नाम है तबतक दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासमें वलिअम्माका नाम भी अमर रहेगा।

इन बहनोंका बलिदान विशुद्ध था। ये बेचारी कानून

कायदेकी बारीकियोंको नहीं जानती थीं। उनमें बहुतोंको देश की कल्पना नहीं थी उनका देशप्रेम केवल श्रद्धापर अवलंबित था। उनमें अनेक निरक्षर थीं इसलिए अखबार पढ़ना कहांसे जानतीं? पर वे इतना जानती थीं कि कौमके मानरूपी वस्त्र का हरण हो रहा है। उनका जेल जाना उनका आर्त्तनाद था। शुद्ध यज्ञ था। ऐसी हृदयकी प्रार्थनाको प्रभु सुनते हैं। यज्ञकी सफलता उसकी उसी शुद्धतापर आश्रित होती है। भगवान भावके भूखे हैं। भक्तिपूर्वक अर्थात् नि स्वार्थबुद्धिसे अर्पित पत्र पुष्प या जलको वह सप्रेम स्वीकार करते हैं और उसका करोड़ गुना फल देते हैं। सुदामाके मुट्ठीभर चावलकी भेंटसे उसकी बरसोंकी भूख भाग गई। बहुतोंके जेल जानेका चाहे कोई फल न हो पर एक ही शुद्ध आत्माका भक्तिपूर्वक किया हुआ आत्मार्पण कभी निष्फल नहीं होता। दक्षिण अफ्रीकामें किस-किसका यज्ञ फला इसे कौन जानता है? पर इतना हम जानते हैं कि वलियम्माका यज्ञ तो सफल हुआ ही। दूसरी बहनोंका यज्ञ भी जरूर सफल हुआ।

स्वदेश-यज्ञमें जगत-यज्ञमें असंख्य आत्माओं का होम हो चुका है, हो रहा है और होगा। यही यथार्थ है क्योंकि कोई नहीं जानता कि कौन शुद्ध है। पर सत्याग्रही इतना तो समझ ही रखे कि उनमें एक भी शुद्ध हो तो उनका यज्ञ फल उपजाने के लिए काफी है। पृथ्वी सत्यके बलपर टिकी हुई है। असत्—असत्य अर्थात् नहीं सत्—सत्य अर्थात् है। जब असत्का अस्तित्व ही नहीं है तब उसकी सफलता क्या होगी? और जो है उसका नाश कौन कर सकनेवाला है? इतनेहीमें सत्याग्रह का सम्पूर्ण शास्त्र समाया हुआ है।

१७

मजदूरोंकी धारा

बहनोंके इस त्यागका असर मजदूरोंपर अद्भुत हुआ। न्यूकेसलके मजदोकको खानोंके मजदूरोंने अपने औजार फेंक दिये। उनकी धारा नगरकी ओर बह चली। खबर मिलते ही मैंने फिनिक्स छोड़ा और न्यूकसलके लिए रवाना हो गया।

इन मजदूरोंका अपना घर नहीं होता।—मालिक ही उनके लिए घर बनवाते हैं। उनकी सड़कों-गलियोंमें लैंप लगवाते हैं। मालिक ही उनको पानी भी देते हैं। अर्थात् मजदूर हर तरह पराधीन होते हैं और जैसाकि गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है

"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"

ये हड़तालो मेरे पास अनेक प्रकारकी शिकायतें लाने लगे। कोई कहता—'मालिक रास्तेपरकी रोशनी बंद कर रहे हैं। कोई कहता—"पानी बंद कर रहे हैं।" कोई कहता—व हड़तालियोंका सामान कोठरियोंसे बाहर निकालकर फेंक रहे हैं।" एक पठान सैयद इब्राहीमने अपनी पीठ दिखाकर कहा— "यह देखो मुझे कैसा मारा है! मैंने आपके लिए बदमाशको छोड़ दिया है। आपका यही हुक्म है। मैं पठान हूं और पठान कभी मार खाता नहीं मार मारता है।

मैंने जवाब दिया—"भाई तुमने बहुत ही अच्छा काम किया। इसीको मैं सच्ची बहादुरी कहता हूं। तुम जैसे लोगोंसे ही हम जीतेंगे।

मैंने यों मुबारकबादी तो दी, पर दिलमें सोचा कि बहुतेरे ऐसे पीटे तो हड़ताल नहीं चलेगी। मारकी छोड़ दें तो मालिकोंकी शिकायत किस बातकी करें? हड़ताल करनेवालोंकी रोशनी-पानी आदिकी सुविधाएं मालिक बंद कर दें तो इसमें [illegible] । पर हां या न हो लोग

एसी स्थितिमें कैसे मिना सकते हैं? मुझे कोई उपाय सोच लेना ही होगा। अथवा लोग थककर कामपर वापस जाय इससे तो यही अच्छा है कि वे हार कबूल कर लें और कामपर लौट जाय। पर लोग मेरे मुहसे ऐसी सलाह हरगिज न सुनेंगे। तब एक ही रास्ता था मजदूर मालिकोंकी कोठरियां खाली कर दें मानो 'हिजरत' करें।

मजदूर दस-बीस नहीं थे सैकड़ों थे। हजारों होत भी देर न लगती। उनके लिए मकान कहांसे पैसा कहां? खाना कहांसे लाऊं? हिंदुस्तानसे पैसा मगाना नहीं था। वहांसे पैसेका जो मेंह बरसा वह अभी आरंभ नहीं हुआ था। भारतीय व्यापारी इतना डर गये थे कि वे मुझ खुले तौरपर कोई मदद देनेको तैयार नहीं थे। उनका व्यापार खान मालिकों और दूसरे गोरोंके साथ था। इसलिए वे खुले तौरपर मेरा साथ कैसे देते? जब कभी मैं न्यूकैसल जाता, उन्हींके यहां उतरता था। इस बार मैंने खुद ही उनका रास्ता आसान कर दिया दूसरी ही जगह उतरनेका निश्चय किया।

मैं बता चुका हूं कि जो बहनें ट्रांसवालसे आई थी वे द्राविड़ प्रदेशकी थीं। वे एक द्राविड़ कुटुबके यहां जो ईसाई था ठहरी थीं। यह कुटुब मध्यम स्थितिका था। उसके पास जमीनका एक छोटा-सा टुकड़ा और दो-तीन कमरोंका मकान था। मैंने यहीं उतरनेका निश्चय किया। घरके मालिकका नाम लाजरस था। गरीबको किसका डर हो सकता है? ये लोग मूलत' एक गिर मिटिया कुटुबके थे। इसलिए उन्हें और उनके स्वजनोंको भी तीन पौंडका कर देना होता। गिरमिटियोंके कष्टोंकी पूरी जानकारी उन्हें होनी ही चाहिए थी और उनके साथ हमदर्दी भी पूरी होनी चाहिए थी। इस कुटुबने मेरा सहर्ष स्वागत किया। मुझ मेहमान बनाना मित्रोंके लिए कभी आसान तो रहा ही नहीं पर इस वक्त मेरा स्वागत करना आर्थिक नाशका स्वागत करना था और शायद जेलका स्वागत करना भी होता। ऐसे धनिक व्यापारी थोड़े ही हो सकते थे जो अपने-आपको एसी स्थितिमें

डालनेको तैयार हों। अतः मैंने अपनी और उनकी मर्यादा समझ कर तै किया कि मुझे उनको कठिनाईमें नहीं डालना चाहिए। लाजरस बेचारेको थोड़ी सी तनख्वाह जो भी पड़ती तो वह खो देता। उसे कोई जेल ले जाय तो वह चला जाता। पर अपनेसे भी ज्यादा गरीब गिरमिटियोंका कष्ट वह कैसे अनुद्विग्न चित्तसे सहन करता? इसने देखा कि ट्रामवालकी बहनें जो उसीके यहां टिकी हुई थीं गिरमिटियोंकी मदद करने जाकर जेलखाने पहुंच गईं। भाई लाजरसने सोचा कि उनके प्रति उसका भी कुछ फर्ज है और मुझे आश्रय दे दिया। उसने मुझे आश्रय ना दिया ही साथ ही अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। मेरे उसके यहां आनेके बाद उसका घर धर्मशाला बन गया। सैकड़ों आदमी और हर तरहके आदमी चाहे जब आते और जाते। उसके घरके आसपासकी जमीन आदमियोंसे खचाखच भर गई। उसका चूल्हा चौबीसों घंटे चला करता। उसकी धर्मपत्नीको इसमें जी तोड़ मेहनत करनी पड़ती। फिर भी पति-पत्नी दोनोंके चेहरे हर वक्त हंसते रहते। उनकी मुखाकृतिमें मैंने कभी अप्रसन्नता नहीं देखी।

पर गरीब लाजरस क्या सैकड़ों मजदूरोंका सिका सकता था? मजदूरोंको मैंने सुना दिया कि उन्हें अपनी हड़तालको स्थायी चीज समझकर मालिकोंके दिये हुए झोंपड़े खाली कर देने चाहिए। जो चीजें बिक सकती हों बेच डालें बाकी सामानको कोठरीमें पड़ा रहने दो। मालिक उसको हाथ नहीं लगायेंगे। पर और बदला चुकानेके लिए वे उसे उठाकर फेंक दें तो मजदूरोंको यह जोखिम भी उठानी होगी। मेरे पास वे पहननेके कपड़े और ओढ़नेके कम्बलके सिवा और कोई भी चीज न लायें। जबतक हड़ताल चलती रहेगी और जबतक वे जेलके बाहर रहेंगे तबतक मैं उन्हींके साथ रहूंगा और खाऊंगा पिऊंगा। इन शर्तोंकि प्राय वे खानोंसे बाहर निकल आयें तभी वे टिक सकते हैं और कौमकी जीत हो सकती है। जिसमें इसकी हिम्मत न न हो वह अपने कामपर लौट जाय। जो कामपर वापस जाय

उसका कोई तिरस्कार न करे उसको तंग न करे। इन शर्तोंको मानने से किसीने इनकार किया हो इसकी याद मुझे नहीं है। जिस दिन मैंने कहा उसी दिनसे हिजरत करनेवालों—मुहाजिरोंका तांता लग गया। सब अपने बीबी बच्चोंको साथ लिए सिरपर कपड़ोंकी गठरी रखे पहुंचने लगे। मेरे पास घरके नामपर तो सिर्फ खुली जमीन थी। सौभाग्यवश उस मौसममें न वर्षा हो रही थी और न ठंड ही पड़ रही थी।

मेरा विश्वास था कि भोजनका भार उठानेमें व्यापारी-वर्ग पीछे न रहेगा। न्यूकैसलके व्यापारियोंने पकानेके लिए बरतन दिये और चावल-दालके बोरे भेजे। दूसरे स्थानोंसे भी दाल चावल सब्जी मसाले आदिकी वर्षा होने लगी। जितनेकी आशामें रखता था उससे कहीं अधिक ये चीजें मेरे पास आने लगीं। सब जेल जानेको तैयार न हो पर सबकी हमदर्दी तो थी ही। सब इस यज्ञमें यथाशक्ति सहायताके रूपमें अपना भाग अर्पण करनेको तैयार थे। जो कुछ देने लायक न थे उन्होंने अपनी सेवा देकर मदद की। इन अनजान अपढ़ आदमियोंको सम्हालनेके लिए जाने पहचाने हुए और समझदार स्वयंसेवक तो दरकार थे ही। वे मिल गये और उन्होंने अमूल्य सहायता की। उनमेंसे बहुतेरे तो गिरफ्तार भी हुए। यों सबने यथाशक्ति सहायता की और हमारा रास्ता आसान हो गया।

आदमियोंकी भीड़ बढ़ने लगी। इतने बड़े और लगातार बढ़ते जानेवाले मजदूरोंके मजमेको एक ही स्थानमें बिना किसी काम-धंधेके समेट रखना नामुमकिन नहीं तो खतरनाक जरूर था। उनकी शौच आदिकी आदतें तो सुधरी होती ही नहीं थीं। इस समुदायमें कितने ही ऐसे थे जो अपराध करके जेल भी हो आये थे। कोई हत्याका अपराधी था कोई चोरीके जुर्ममें कैदकी सजा भुगतकर छूटा था कोई व्यभिचारके अपराधमें जेल काट कर आया था। हड़ताली मजदूरोंमें नीतिका भेद मेरे किये नहीं हो सकता था। भेद करूं भी तो अपना भेद मुझे कौन बतलाता? मैं काजी बन बैठूं तो विवेकहीन बनूं। मेरा काम केवल हड़ताल

चलाना था। इसमें दूसरे सुधारोंको मिलाना मुमकिन नहीं था। छावनीमें नीतिका पालन करना मेरा काम था। आनेवाले पहले कैंप में इसकी जांच करना मेरा फर्ज नहीं था। यह सिक्खी तराह एक जगह जमकर बैठ जाय तो अपराध होना निश्चित था। अचरजकी बात तो यह थी कि जितने दिन मैंने यहां बिताये वे शांतिसे बीते। सब लोग ऐसी शांतिसे रहे मानो उन्होंने अपना आपद्धर्म समझ लिया हो।

मुझे उपाय सूझा इस दलको ट्रांसवाल ले जाऊं और जैसे पहलेके १६ आदमी गिरफ्तार हो गये वैसे इन्हें भी जेलमें बिठा दूं। इन लोगोंको छोटे-छोटे जत्थोंमें बांटकर उनसे सरहद पार कराऊं। यह विचार ज्योंही मनमें आया त्योंही उसे रद कर दिया। इसमें बहुत वक्त जाता और सामुदायिक कार्यका जो असर होता वह छोटे-छोटे जत्थोंके जेल जानेका न होता।

मेरे पास कोई पांच हजार आदमी इकट्ठा हुए होंगे। इन सबको ट्रेनसे नहीं ले जा सकता था। इतना पैसा कहांसे लाऊं? और इसमें लोगोंकी परीक्षा भी नहीं हो सकती थी। न्यूकैसलसे ट्रांसवालकी सरहद ३६ मील थी। नेटालका सरहदी गांव चार्ल्सटाउन था ट्रांसवालका वोक्सरस्ट। अंतमें मैंने पैदल यात्रा करनेका ही निश्चय किया। मजदूरोंके साथ मशविरा किया। उनके साथ स्त्रियां बच्चे आदि थे। अतः कुछने आनाकानी की। मेरे पास दिल कड़ा करनेके सिवा दूसरा उपाय ही नहीं था। मैंने लोगोंसे कह दिया कि जिस खानपर वापस जाना हो वह जा सकता है। पर कोई वापस जानेको तैयार न था। जो लोग अपंग थे उन्हें ट्रेनसे भेजनेका निश्चय किया। बाकीके सब लोगों-ने कहा कि हम पैदल चलकर चार्ल्सटाउन जानेको तैयार हैं। यह मंजिल दो दिनमें पूरी करनी थी। अंतमें सभी इस निश्चय से प्रसन्न हुए। लोगोंने यह भी समझा कि इससे बेचारे लाज़रस-परिवारको कुछ राहत मिलेगी। न्यूकैसलके गोरोंको प्लेग फैलने का डर लग रहा था और वे उसके प्रतिकारके लिए अनेक उपाय करनेकी बात सोच रहे थे। वे भयमुक्त हुए और उनकी कार्र

बाद्योंके डरसे हम भी मुक्त हुए।

इस कूचकी तैयारी चल रही थी कि मुझे स्मटसके मिलनेका बुलावा आया। मैं प्रिटोरिया गया पर इस कहानीका उल्लेख पृथक प्रकरण में करूंगा।

१८

स्मटसके पास और उसके बाद

स्मटसके बुलावेपर मैं उनसे मिलने प्रिटोरिया गया। मैंने समझा कि मालिकोंपर कुछ असर हुआ है। इस बातचीतसे कुछ मिलेगा यह आशा तो मैं नहीं रखता था। पर सत्याग्रहीकी नम्रताकी कोई हद नहीं होती। वह समझौतेके एक भी अवसर को जाने नहीं देता। इससे कोई उसको डरपोक माने तो वह अपने-आपको डरपोक मानने देता है। जिसके हृदयमें विश्वास और विश्वाससे उपजनेवाला बल है वह दूसरोंकी अवगणनाकी परवाह नहीं करता। वह अपने अन्तर्बलका भरोसा रखता है। इससे सबके सामने नम्र रहकर वह जगतके जनमतको जगाता और अपने कार्यकी ओर खींचता है।

इससे मुझे मालिकोंका निमन्त्रण स्वागत करने योग्य जान पड़ा। मैं उनके पास पहुंचा। मैंने देखा कि हवामें गर्मी है। मुझसे स्थिति समझनेके बदले उनके प्रतिनिधिने मुझसे जिरह शुरू कर दी। मैंने उसको मुनासिब जवाब दिये। मैंने कहा—"यह हड़ताल बंद कराना आपके हाथमें है।"

उनकी ओरसे जवाब मिला—'हम कोई अधिकारी नहीं हैं।

मैंने कहा— 'आप अधिकारी नहीं हैं, फिर भी बहुत-कुछ कर सकते हैं। आप मजदूरोंका केस लड़ सकते हैं। आप सरकारसे तीन पौंडका कर उठा देनेकी मांग करें, तो मैं यह नहीं मानता कि वह उसे नामंजूर करेगी। आप दूसरोंका मत अपने अनुकूल बना सकते हैं।

"पर सरकारके लगाये हुए करके साथ हड़तालका क्या संबंध ? मालिक मजदूरोंको कष्ट देते हों तो आप उनसे थाका यदा आवेदन करें।

मजदूरोंके पास हड़ताल करनेके सिवा इसका रास्ता मुझे नहीं दिखाई देता। तीन पौंडका कर भी मालिकोंकी खातिर ही लगाया गया है। मालिक मजदूरोंकी मेहनत चाहते हैं पर उनकी आजादी नहीं चाहते। इससे इस करको दूर करानेके लिए मजदूरोंके हड़ताल करनेमें मैं कुछ भी अनीति या मालिकों-के प्रति अन्याय नहीं देखता।

तो आप मजदूरोंसे कामपर वापस जानेको नहीं कहेंगे ?

"मैं लाचार हूं।

'आप इसका नतीजा जानते हैं ?

"मैं सावधान हूं। अपनी जिम्मेदारीका मुझे पूरा खयाल है।

'बेशक इसमें आपका जाता ही क्या है ? पर इस बहकाये हुए मजदूरोंकी जो हानि होगी वह क्या आप भर देंगे ?

"मजदूरोंने सोच-समझकर और अपने नुकसानको जानते समझते हुए यह हड़ताल की है। मनुष्यके लिए आत्म-सम्मानकी हानिसे बड़ी हानि मैं सोच ही नहीं सकता। मजदूरोंने इस बातको समझ लिया है इसका मुझे संतोष है।

इस तरहकी बातचीत हुई। पूरी बातचीत मुझे इस वक्त याद नहीं आ सकती। जो बातें याद रह गई हैं उन्हें थोड़ेमें दे दिया है। मैं इतना जान सका कि मालिकोंको अपना पक्ष पंगु जान पड़ा क्योंकि सरकारके साथ उनकी बात-चीत पहलेसे चल रही थी।

डर्बन जाते और वहांसे लौटते हुए मैंने देखा कि रेलवेके गार्डों आदिपर इस हड़ताल और हड़तालियोंकी शांतिका बहुत अच्छा असर हुआ। मेरा सफर तो तीसरे ही दरजेमें चल रहा था। पर वहां भी गार्ड आदि रेल-कर्मचारी मुझे घेर लेते दिल-चस्पी-भरे आग्रहके साथ हमारी लड़ाईके समाचार पूछते और हम भारी विजय मनाते। मुझे अनेक प्रकारके छोटे-मोटे सुभीते

कर देते। उनके साथ अपना संबंध मैं निर्मल रखता। एक भी सुभीतेके लिए मैं उन्हें लालच न देता। अपनी इच्छासे वे मन-मानी बरतें तो मुझे उनसे प्रसन्नता थी पर मनमानी खरीदने की कोशिश कभी नहीं की। गरीब अपढ़ मासमझ इतनी दृढ़ता दिखायें यह उनके लिए अचंभेकी बात थी और दृढ़ता तथा वीरता ऐसे गुण हैं जिनकी छाप विरोधीपर पड़े बिना नहीं रहती।

मैं न्यूकेसल लौटा। मजदूरोंकी धारा तो अभी ही आ रही थी। उनको सारी बातें बारीकीके साथ समझा दीं। यह भी कह दिया कि आप लोग कामपर वापस जाना चाहते हों तो जा सकते हैं। मालिकोंकी धमकीकी बात भी बताई और भविष्य में जो जोखिमें उठानी थीं उनका वर्णन भी कर दिया। कह दिया कि लड़ाई कब खत्म होगी यह भी नहीं कहा जा सकता। जेलके कष्ट समझा दिये। फिर भी मजदूर अडिग रहे। "जब तक आप लड़नेको तैयार होंगे तबतक हम हिम्मत हारनेवाले नहीं। हमें कष्ट सहनेका अभ्यास है। आप हमारी चिंता न करें।" यह निर्भय जवाब मुझे उनसे मिला।

मेरे लिए तो अब कूच करना ही बाकी रह गया था। एक दिन शामको लोगोंसे कह दिया कि उन्हें अगले दिन भोरमें कूच शुरू करनी होगी (२८ अक्तूबर १९१३)। रास्तेमें जिन नियमों का पालन करना था वे सुना दिये गये। ५-६ हजारके मजमेको सम्हालना एरी-गैरी बात नहीं थी। उनकी गिनती तो मेरे पास था ही नहीं न था नाम धाम। जो रह गये सो रह गये। उतने हीको अपना लिए काफी मान लिया। रास्तेके लिए हरएकको तीन पावरोटी (डेढ़ पौंड) और आधी छटांक शक्करके सिवा और कोई खुराक देनेको गुंजाइश नहीं थी। इसके अतिरिक्त यह कह दिया था कि हिंदुस्तानी व्यापारी अगर रास्तेमें कुछ दें तो वह ले लेना। पर लोगोंको रोटी और शक्करसे ही संतोष करना था। बोअर-युद्ध और जुलू-बगावतमें मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ था वह इस वक्त बहुत काम आया। जरूरत से ज्यादा

कपड़े साथ न रखनेकी शर्त तो थी ही। रास्तेमें कोई किसीका माल न ले। कोई सरकारी कर्मचारी या यूरोपियन मिले और गाली दे या मारे भी तो बरदाश्त कर ले। पुलिस गिरफ्तार करे, तो गिरफ्तार हो जाय। मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊं, तो भी कूच जारी रहे, आदि बातें समझा दीं। मेरे स्थानपर एकके बाद दूसरे कौन लोग नियुक्त होंगे यह भी बता दिया।

लोगोंने सब बातें समझ लीं। काफिला सही-सलामत चार्ल्सटाउन पहुंचा। वहांके व्यापारियोंने हमारी खूब मदद की। अपने मकानोंको काममें लाने दिया। मस्जिदके सहनमें खाना पकानेकी इजाजत दे दी। कूचके वक्त जो खुराक दी जाती वह पड़ावपर पहुंचनेतक चुक जाती। इसलिए हमें खाना पकानेके बरतन भी चाहिए थे। व्यापारियोंने उन्हें भी खुशीसे हाजिर कर दिया। चावल आदि तो हमारे पास काफी हो गया था। व्यापारियोंने इसमें भी अपना हिस्सा दिया।

चार्ल्सटाउन छोटा-सा गांव कहा जा सकता है। इस वक्त उसमें मुश्किलसे एक हजारकी आबादी रही होगी। उसमें इतने आदमियोंका समावेश कर सकना कठिन था। स्त्रियों और बच्चोंको ही मकानोंमें रखा। बाकी सबको मैदान में ही ठहराया।

यहांकी मधुर स्मृतियां कितनी ही हैं। कुछ कड़वी भी हैं। मधुर स्मरण मुख्यतः चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-विभाग और उसके अधिकारी डाक्टर ब्रिस्कोके हैं। गांवकी आबादी इतनी बड़ी हुई देखकर वह घबरा गये, पर कोई कड़ा उपाय करनेके बजाय मुझसे ही मिले। कुछ सुझाव पेश किये और मेरी मदद करनेकी भी बात कही। यूरोपके लोग तीन बातोंका खास तौर से खयाल रखते हैं—हम नहीं रखते—पानीकी सफाई, रास्ते की सफाई और पाखानेकी सफाई। मुझे यह करना था कि रास्तेपर पानी न गिरने दूं, जहां-तहां आदमियोंको पेशाब न करने दूं और कहीं कूड़ा-करकट न फेंकने दूं। वह जहां बतावें वहां लोगोंको टिकाऊं और उस स्थानकी सफाईके लिए अपने आपको [illegible] मैंने धन्यवाद-सहित

स्वीकार किया। मुझे पूरी शांति हो गई।

अपने देशवासियोंसे इन नियमों का पालन करना बहुत ही कठिन काम है। पर मजदूर भाइयों और साथियोंने उसे आसान कर दिया। मेरा सदा यह अनुभव रहा है कि सेवक सेवा करे और हुक्म न चलाये तो बहुत काम हो सकता है। सेवक खुद अपनी देहको काममें लगाये तो दूसरे भी लगायेंगे। इसका पूरा अनुभव मुझे इस छावनी में हुआ। मैं और मेरे साथी झाड़ लगाना मला उठाना आदि काम करते तनिक भी नहीं हिचकते थे। इससे लोगोंने ये काम उत्साहसे उठा लिये। यदि हम ऐसा न करते तो हुक्म किसपर चलाते? सब सरदार बनकर दूसरों पर हुक्म चलाये तो अंतमें काम पड़ा ही रह जाता है। पर जहां सरदार खुद ही सेवक बन जाय वहां दूसरे सरदारीका दावा कैसे कर सकते हैं?

साथियोंमें केलनबेक पहुंच गये थे। मिस श्लेजिन भी उपस्थित हो गई थीं। इस बहनकी श्रमशीलता सजग चिंता और सफाईकी जितनी भी सराहना करूं कम होगी। हिंदुस्तानियोंमें स्वर्गीय पी० के० नायडू और अल्बर्ट क्रिस्टोफरके नाम तो मुझे इस वक्त याद आ रहे हैं। दूसरे भी थे जिन्होंने भरपूर मेहनत की और अच्छी सहायता की।

भोजनमें चावल और दाल दी जाती। सब्जी हमारे पास काफी जमा हो गई थी पर उसको पकानेका सुभीता नहीं था। इसलिए दालमें ही डाल दी जाती। अलग पकाने को समय न मिलता इतने बरतन भी नहीं थे। रसोई में चौबीसों घंटे चूल्हा जला रहता क्योंकि चाहे जिस वक्त भूखे प्यासे लोग आ पहुंचते। न्यूकैसल में किसीको रहना नहीं था। सबको रास्तेकी खबर थी। इसलिए खानसे निकलकर वे सीधे चार्ल्सटाउन पहुंचते।

मनुष्योंके धीरज और सहनशीलता का विचार करता हूं तो भावनाकी महिमा मेरे सामने मूर्तिमान् होकर खड़ी हो जाती है। भोजन पकानेवालोंमें मुखिया मैं था। कभी दाल

में पानी ज्यादा हो जाता, तो कभी वह कच्ची रहती। कभी तरकारी पकी न होती तो कभी भात ही कच्चा रह जाता। ऐसा भोजन प्रसन्न चित्तसे ग्रहण कर लेनेवाले मैंने दुनिया में अधिक नहीं देखे हैं। इसका उलटा दक्षिण अफ्रीका की जेल में यह अनुभव भी हुआ कि खाना जरा कम या कच्चा होने या जरा देरसे मिलने पर सुशिक्षित माने जानेवालों का भी पारा चढ़ जाता था।

परसनेका काम पकानेसे भी अधिक कठिन था और वह मेरे ही जिम्मे था। कच्चे-पक्केका हिसाब भी मुझे देना होता। भोजन कम हो और खानेवाले ज्यादा हो जायं तो थोड़ा देकर सबका संतोष कराना भी मेरा ही कर्तव्य होता। बहनोंके सामने मैं थोड़ा खाना रखता तो क्षणभर मेरी ओर उलाहने की निगाहसे देखतीं और फिर मेरी स्थिति समझकर हँसते हुए चल देतीं। वह दृश्य मुझे जिन्दगीभर भूलनेका नहीं। मैं कह देता कि मैं लाचार हूं। मेरे पास पका हुआ भोजन थोड़ा है और खानेवाले बहुत हैं। इसलिए मुझको उतना ही देना होगा कि सभीको थोड़ा-थोड़ा मिल जाय। इसपर वे स्थितिको समझ जातीं और संतोषम् कहकर हँसते हुए चल देतीं।

ये सब तो मधुर स्मरण हुए। कड़वे स्मरण ये हैं कि आश्रमको थोड़ी फुरसत मिली तो उसका उपयोग अधिकतर खटपटोंमें होने लगा। इसमें भी बुरी बात यह हुई कि व्यभिचारकी घटनाएं हुईं। स्त्री-पुरुषोंको साथ तो रखना ही पड़ता। और नीतिकी कमी तो थी ही, व्यभिचारको स्थान कहां न मिलता? ये घटनाएं ज्योंही प्रकट हुईं मैं [illegible] या [illegible]। अपराधी साबित। उनको अलग रखा। पर जो सब जानी न जा सकीं ऐसी घटनाएं कितनी हुई होंगी यह कौन कह सकता है? इन [illegible] करना बेकार है। इतना कह [illegible] कि सबकुछ आसान नहीं था और [illegible] भी [illegible] मेरे साथ [illegible]

का बर्ताव नहीं किया। नीति-अनीतिका भेद अधिक न जानने वाले जंगली-जैसे लोग भी अच्छे वातावरणमें कैसे सीधे चलते हैं इसे मैंने अनेक अवसरोंपर देख लिया है और इसे जान लेना अधिक आवश्यक और लाभदायक है।

४२

ट्रान्सवालमें प्रवेश—१

अब हम १९१३ के नवंबर महीनेके आरंभमें हैं। कूच करनेके पहले दो घटनाओंका उल्लेख कर देना उचित होगा। न्यूकैसेलमें श्रमिक बहनोंको जेलकी सजा मिली तो इमामकी बाई फातिमा महतावसे न रहा गया। इसलिए वह भी अपनी मां हनीफबाई और ७ बरसके लड़केके साथ जेल जानेको निकल पड़ी। मां बेटी तो पकड़ ली गईं, पर बेटेको गिरफ्तार करनेसे सरकारने साफ इन्कार कर दिया। पुलिसने फातिमा बाईकी उंगलियोंकी निशानी लेनेकी कोशिश की पर वह निडर रही और उंगलियोंकी निशानी नहीं दी।

इस वक्त हड़ताल पूरे जोरमें चल रही थी। उसमें पुरुषों की तरह स्त्रियां भी आकर शामिल हो रही थीं। दो स्त्रियोंकी गोदमें बच्चे थे। एक बच्चेको कूचमें सर्दी लग गई और वह मौतकी गोदमें चला गया। दूसरा बच्चा एक नालेको लांघते हुए माकी गोदसे गिर गया और प्रवाहमें बहकर डूब गया पर वीर माताने दिल छोटा नहीं किया। दोनोंने कूच जारी रखा। एकने कहा—'हम मरे हुओंका शोक करके क्या करेंगे? वे कहीं लौटकर आ सकते हैं? जीवितोंकी सेवा करना हमारा धर्म है।' ऐसी शांत वीरता ईश्वरमें ऐसी दृढ़ आस्था ऐसे ज्ञानकी मिसालें गरीबोंमें मुझे अकसर मिली हैं।

ऐसी ही दृढ़तासे चार्ल्सटाउनमें स्त्री पुरुष अपने कठिन धर्मका पालन कर रहे थे। पर हम यहां कुछ तात्विक शांति

नहीं आये थे। शांति जिसे दरकार हो वह उसे अपने अंतरमें प्राप्त करे। बाहर तो जहां देखो और देखना आता हो तो 'यहां शांति नहीं मिलती' की ही तख्तियां लगी दिखाई देंगी। पर इसी अशांतिके बीच मीराबाई सरीखी भक्त हाथमें जहरका प्याला लेकर हसते हुए मुहको लगाती है। अपनी अंधेरी कोठरीमें बैठा हुआ सुकरात अपने हाथमें जहरका प्याला थामे अपने मित्रको गूढ़ज्ञानका उपदेश करता है और कहता है—जो शांति चाहता हो वह उसे अपने अंतरमें तलाश करे।

इसी शांतिके बीच सत्याग्रहियोंका दस्ता पड़ाव डालकर सबेरे क्या होगा इसकी चिंता न करते हुए पड़ा था।

मैंने सरकारको चिट्ठी लिखी थी कि हम ट्रांसवालमें बसनेके इरादेसे प्रवेश करना नहीं चाहते। हमारा प्रवेश सरकारके वचन भंगके विरुद्ध अमली फरियाद है और हमारे आत्म-सम्मानके भंगसे होनेवाले दुःखका शुद्ध निदर्शन है। हमें जो सरकार यहीं चार्ल्सटाउनमें गिरफ्तार कर ले तो हम निश्चित हो जायं। वह ऐसा न करे और हममेंसे कोई छिपकर ट्रांसवालमें दाखिल हो जाय तो हम उसके लिए जिम्मेदार नहीं होंगे। हमारी लड़ाईमें गुप्त कुछ है ही नहीं। व्यक्तिगत स्वार्थ किसीका साधना नहीं है। किसीका छिपकर प्रवेश करना हमें पसंद नहीं होगा पर जहां हजारों अनजान आदमियोंसे काम लेना हो और जहां प्रेमके सिवा दूसरा कोई बंधन न हो वहां किसीके कामके लिए हम जिम्मेदार नहीं हो सकते। फिर सरकार यह भी जान ले कि अगर उसने तीन पौंडका कर उठा दिया तो गिरमिटिए कामपर लौट जायंगे और हड़ताल बंद हो जायगी। अपने दूसरे कष्ट दूर करनेके लिए हम उन्हें सत्याग्रहमें शामिल नहीं करेंगे।

अतः स्थिति ऐसी अनिश्चित थी कि सरकार कब गिरफ्तार करेगी यह कहा नहीं जा सकता था। पर ऐसी स्थितिमें सरकारके जवाबकी राह अधिक दिन नहीं देखी जा सकती थी। एक-दो डाककी ही राह देखी जा सकती थी। इसलिए हमने

क्या उपाय हो ? रोज की रोज मांट देनी थी। इसका उपाय तो एक ही था कि हर मंजिलपर हमारे लिए कोई उन्हें पहुंचा दिया करे। यह कौन करे ? हिंदुस्तानी बावर्ची तो थे ही नहीं। फिर हर गांवमें डबल रोटी बनाने-बेचनेवाले नहीं थे। गांवोंमें रोटी शहरोंसे जाती। अतः कोई बावर्ची तैयार करके दे और रेलवे उन्हें पहुंचा दे तभी हमें रोटियां मिल सकती थीं। वोक्सरस्ट (ट्रांसवालके चार्ल्सटाउनके नजदीकका सरहदी स्टेशन) चार्ल्सटाउनसे बड़ा नगर था। वहां डबल रोटी बनानेवालेकी एक बड़ी (यूरोपियन) दूकान थी। उसने खुशीसे हर जगह रोटियां पहुंचा देनेका इकरार किया। हमारी मजबूरी जानकर उसने हमसे बाजार भावसे अधिक लेनेकी भी कोशिश नहीं की। बढ़िया आटेकी बनी रोटियां दीं। उसने वक्तसे रोटियां रेलवेके पास पहुंचाईं और रेलवे कर्मचारियोंने—ये भी यूरोपियन ही थे—उन्हें ईमानदारीके साथ हमारे पास पहुंचा दिया। पहुंचाने में पूरी सावधानी रखी और हमारे लिए कुछ सुभीते भी कर दिये। ये जानते थे कि हमारी किसीसे शत्रुता नहीं। हमें किसी को नुकसान नहीं पहुंचाना था। हमें तो कष्ट सहन कर न्याय प्राप्त करना था। इससे हमारे आसपासका वातावरण शुद्ध हो गया और बना रहा। मानव जातिका प्रेमभाव प्रकट हुआ। सबने अनुभव किया कि हम ईसाई, यहूदी, हिंदू, मुसलमान कोई भी हों सब भाई-भाई ही हैं।

यों कूचकी सारी तैयारी कर लेनेके बाद मैंने फिर सम-झौतेकी कोशिश की। चिट्ठियां तार आदि तो भेज ही चुका था। मैंने तय किया कि मेरा अपमान तो होगा ही पर उसका खतरा उठाकर भी मुझे टेलीफोन भी कर ही लेना चाहिए। चार्ल्सटाउनसे प्रिटोरियाको टेलीफोन था। मैंने जनरल स्मट्सको टेलीफोन किया। उनके मंत्रीसे मैंने कहा—"जनरल स्मट्ससे कहिये कि मेरी कूचकी पूरी तैयारी हो चुकी है। वोक्सरस्टके लोग उत्तेजित हैं। वे शायद हमारी जानको भी नुकसान करें। ऐसी धमकी तो दे ही चुके हैं। यह परिणाम वह (जनरल

स्मटस) भी नहीं पाऊँगे। यह तीन पौंडका कर उठानेका वचन दे दें तो मुझे कूच नहीं करना है। मुझ कानून तोड़नेके लिए ही कानून नहीं तोड़ना है। मैं इसके लिए लाचार हो गया हूं। वह मेरी इतनी प्रार्थना न सुनेंगे? आधे मिनटमें जवाब मिला—'जनरल स्मट्स आपसे कभी कोई सरोकार नहीं रखना चाहते। आपकी मर्जीमें जो आवे वह करें। टेलीफोन बन्द!

यह फल मैंने सोच ही रखा था। हां ऐसी रुखाईकी आशा नहीं रखता था। जनरल स्मटसके साथ सत्याग्रहके बाद का मेरा राजनैतिक संबंध छ सालसे माना जा सकता था। अत मैं उनसे शिष्ट विनययुक्त उत्तरकी आशा रखता था पर उनकी विनयसे मुझे फूल नहीं जाना था। वैसे ही इस अविनयसे ढीला भी नहीं पड़ा। अपने कर्तव्यकी सीधी रेखा मुझे साफ दिखाई दे रही थी। अगले दिन (६ नवंबर १९१३) नियतकालका (६॥ बजे सवेरे) घंटा बजने पर हमने प्रार्थना की और ईश्वरका नाम लेकर कूच कर दिया। काफिलेमें २०३७ पुरुष १२७ स्त्रियां और ५७ बच्चे थे।

२० :

ट्रांसवालमें प्रवेश—२

इस प्रकार मजमा कहिये काफिला कहिये यात्रीसमुदाय कहिये नियत समयपर रवाना हो गया। चार्ल्सटाउनसे एक मीलके फासलेपर वोक्सरस्टका नाला पड़ता है। उसको लांघा और वोक्सरस्ट या ट्रांसवालमें दाखिल हुए। इस नालेके सिरे पर घुड़सवार पुलिस खड़ी थी। मैं पहले उसके पास गया और लोगोंसे कह दिया था कि जब मैं इशारा करूं तब वे प्रवेश करें। पर मैं पुलिससे बात कर ही रहा था कि यात्रि-सेनाने हमला बोल दिया और लोग नालेको लांघ आये। घुड़सवारोंने उन्हें घेर लिया पर यह काफला ऐसा न था कि यों रोके रोका

जा सके। पुलिसका इरादा हमें गिरफ्तार करनेका तो था ही नहीं। मैंने लोगोंको शांत किया और पंक्तिबद्ध होकर चलनेको समझाया। पांच-सात मिनटमें सारी गड़बड़ दूर हो गई और ट्रांसवालमें हमारा दाखिल होना शुरू हो गया।

वाक्सरस्टके लोगोंने दो दिन पहले ही सभा की थी। उसमें हमें अनेक प्रकारकी धमकियां दी गई थीं। कुछने कहा था कि हिंदुस्तानी ट्रांसवालमें दाखिल हुए, तो हम गोलियोंसे उनका स्वागत करेंगे। मि० केलनबेक इस सभामें गोरोंको समझानेके लिए गये थे। कोई उनकी बात सुननेको तैयार नहीं था। कुछ लोग तो उन्हें मारनेके लिए खड़े हो गये। मि० केलनबेक पहलवान हैं। उन्होंने सैंडोसे कसरतकी तालीम ली है। उन्हें डराना कठिन था। एक गोरेने उन्हें द्वंद्वयुद्धके लिए ललकारा। मि० केलनबेकने जवाब दिया— मैंने शांति-धर्मको स्वीकार किया है, इसलिए यह (द्वंद्वयुद्ध) तो मुझसे नहीं हो सकेगा। पर मुझपर जिसको प्रहार करना हो वह खुशीसे कर ले। मगर इस सभामें तो मैं बोलकर ही रहूंगा। आपने सभी यूरोपियनोंको इसमें आनेका सार्वजनिक निमंत्रण दिया है। सभी यूरोपियन आपकी तरह निर्दोष मनुष्योंको मारनेको तैयार नहीं। यही सुनानेके लिए मैं यहां आया हूं। एक यूरोपियन ऐसा भी है जो आपको बता देना चाहता है कि आपने हिंदुस्तानियोंपर जो इलजाम लगाये हैं वे गलत हैं। आप जो सोचते हैं वह हिंदुस्तानी नहीं चाहते। उन्हें न आपका राज्य चाहिए, न वे आपसे लड़ना चाहते हैं। उनकी मांग तो शुद्ध न्यायकी है। जो लोग ट्रांसवालमें दाखिल होना चाहते हैं वे यहां बसनेके लिए नहीं जाना चाहते। उनपर अन्यायकारी कर लगाया गया है। उसके खिलाफ अमली फरियाद करनेके लिए उन्हें दाखिल होना है। वे बहादुर हैं। वे लड़ाई झगड़ा नहीं करेंगे। आपसे लड़ेंगे नहीं पर आपकी गोलियां खाकर भी ट्रांसवालमें दाखिल तो होंगे ही। वे आपकी गोलियों या भालोंसे डरकर पीछे कदम हटानेवाले नहीं। उन्हें स्वयं कष्ट सहनकर आपका दिल पिघलाना है। वह पिघलेगा

ही । इतना ही कहनेके लिए मैं यहां आया हूं । यह कहकर मैंने तो आपकी सेवा ही की है । आप चेतें अन्यायसे बचें । इतना कहकर मि० केलनबेक अपनी जगहपर बैठ गये । लोग कुछ लज्जित हुए । लड़नेको ललकारनेवाला पहलवान तो उनका दोस्त हो गया ।

पर इस सभाकी हमें खबर थी इसलिए वोकसरस्टके गोरोंकी ओरसे कोई उपद्रव हो तो हम उसके लिए तैयार थे । सरहदपर जो इतनी बड़ी पुलिस इकट्ठी कर रखी गई थी उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि गोरोंको मर्यादाका उल्लंघन करनेसे रोका जाय । जो हो हमारा जलूस यहांसे शांति-पूर्वक गुजर गया । किसी गोरेके कोई शरारत करनेकी याद मुझे नहीं है । सब यह नया कौतुक देखनेको निकल पड़े । उनमेंसे कितनों-की आंखोंमें मित्रताकी झलक भी थी ।

हमारा मुकाम पहले दिन वोकसरस्टसे कोई आठ मीलपर पड़नेवाला पामफोर्ड नामका स्टेशन था और हम शामके ५-६ बजेतक वहां पहुंच गये । लोगोंने रोटी और शक्करका आहार किया और मैदानमें लेट गये । कोई भजन गाता था कोई बातें करता था । कुछ स्त्रियां रास्तेमें थक गईं । अपने बच्चोंको गोद में लेकर चलनेकी हिम्मत तो उन्होंने की थी । पर और आगे जाना उनकी शक्तिके बाहर था । इसलिए अपनी चेतावनीके अनुसार मैंने उन्हें एक भले हिंदुस्तानीकी दुकानमें छोड़ दिया और कह दिया कि हम-टाल्स्टाय फार्म पहुंच जायं तो उनको वहां भेज दें । हम गिरफ्तार कर लिये जायं तो उनको घर भेज दें । उस व्यापारी भाईने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली ।

ज्यों ज्यों अधिक रात होती गई, त्यों-त्यों सब शोरगुल शांत होता गया । मैं भी सोनेकी तैयारीमें था । इतनेमें खड़खड़ाहट सुनी । मैंने एक यूरोपियनको लालटेन लिए आते देखा । मैं समझ गया । मुझे कोई तैयारी तो करनी ही नहीं थी । पुलिस अफसरने मुझसे कहा— आपके लिए मेरे पास वारंट है । मुझे आपको गिरफ्तार करना है ।

मर्यादाकी बात हो। अतः उन्होंने मुझे ५० पौंडकी जमानतपर रिहा कर दिया। मेरे लिए मोटर तो मि० कैलनबेकने तैयार ही रखी। उसमें बैठाकर तुरत मुझको मेरे काफिलेके पास पहुंचा दिया। ट्रांसवालके अखबार 'दी ट्रांसवाल लीडर' का प्रतिनिधि हमारे साथ आना चाहता था। उसे अपनी मोटरमें बैठा लिया। उसने इस यात्रा मुकदमे और यात्रीदलसे मिलने-का विशद वर्णन अपने पत्रमें प्रकाशित किया। लोगोंने हर्षपूर्वक मेरा स्वागत किया। उनके उत्साहकी सीमा नहीं रही। मि० केलनबेक तुरंत वोक्सरस्ट लौट गये। उन्हें चार्ल्सटाउनमें ठहरे हुए और नये आनेवाले भारतीयोंकी सम्हाल करनी थी।

हम आगे बढ़े पर मुझे आजाद छोड़ना सरकारको अनुकूल नहीं पड़ सकता था। इसलिए अगले दिन मैं फिर स्टेंडरटनमें गिरफ्तार कर लिया गया। स्टेंडरटन औरोंकी तुलनामें कुछ बड़ा गांव है। यहां मैं विचित्र रीतिसे गिरफ्तार किया गया। मैं लोगोंको रोटी बांट रहा था। यहांके हिंदुस्तानी दुकानदारोंने मुरब्बेके कुछ डब्बे भेंट किये थे। इससे वितरणमें कुछ अधिक समय लग रहा था। इस बीच मजिस्ट्रेट मेरे पास आकर खड़े हो गये। उन्होंने वितरणका काम पूरा हो जाने दिया। इसके बाद मुझे एक किनारे बुलाया। उनको मैं पहचानता था। इसलिए मैंने सोचा कि वह मुझसे कुछ बातें करना चाहते होंगे। उन्होंने हंसकर मुझे कहा—

आप मेरे कैदी हैं।

मैंने कहा— तो मेरा दर्जा बढ़ा क्योंकि पुलिसके बदले खुद मजिस्ट्रेट मुझे गिरफ्तार करने आये हैं। पर मुझपर अभी मुकदमा चलाइयेगा न?

उन्होंने जवाब दिया— 'मेरे साथ ही चलिये। अदालत तो बैठी ही है।

लोगोंको कूच जारी रखनेकी सलाह देकर मैंने विदा ली। अदालतमें पहुंचते ही देखा कि मेरे कुछ साथी भी पकड़ लिये गये हैं। वे थे पी के नायडू, बिहारीलाल महाराज राम

मिल जाय। अमरस्त स्मट्सके लिए तो हमारी दृढ़ता और उसके साथ-साथ शांति यही दुःखकी बात हो गई। उन्होंने तो यहां तक कह डाला—'शांत मनुष्यको कोई कबतक सताये? मरे हुएको मारना कैसे हो? मरेको मारनेमें कोई मजा ही नहीं आता। इसीसे दुश्मनको जिंदा पकड़नेमें गौरव माना जाता है। चूहा बिल्लीको देखकर भागना छोड़ दे तो बिल्लीको दूसरा शिकार ढूंढ़ना ही होगा। सभी मेमने सिंहकी बगलमें आकर बैठ जायं तो सिंहको मेमनोंका आहार छोड़ ही देना पड़े। सिंह सामना न करता हो तो पुरुषसिंह क्या सिंहका शिकार करें?

हमारी शांति और हमारे निश्चयमें हमारी विजय छिपी हुई थी।

गोखलेकी इच्छा थी कि पोलक हिंदुस्तान आकर भारत सरकार और शाही-सरकारके सामने दक्षिण अफ्रीकाकी परिस्थिति रखनेमें उनकी सहायता करें। मि० पोलकका स्वभाव ऐसा था कि जहां हों वहीं उपयोगी हो जायं। वह जो काम हाथमें लेते उसीमें तन्मय हो जाते। इससे उन्हें हिंदुस्तान भेजनेकी तैयारी चल रही थी। मैंने तो उन्हें लिख दिया था कि आप जा सकते हैं। पर मुझसे मिले और जबानी पूरी हिदायतें लिये बिना जाना वह पसंद नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने कूचके ही दरमियान आकर मिल जानेकी इजाजत मांगी। मैंने तारसे जवाब दिया कि पकड़ लिये जानेकी जोखिम उठाकर आना चाहें तो आ सकते हैं। लड़नेवाले जरूरी खतरे सदा उठा ही लेते हैं। सरकार सबको गिरफ्तार कर ले तो गिरफ्तार हो जानेकी तो यह लड़ाई ही थी। जब तक न पकड़े तबतक पकड़े जानेके लिए सब सरल और नीति मय यत्न करते जाना था। अतः मि० पोलकने पकड़े जानेकी जोखिम लेकर आना पसंद किया।

हम हेडलबर्गके पासतक पहुंच थे। मि० पोलक पासके स्टेशनपर उतरकर और पैदल ही आकर हमसे मिले। हमारी

बातें चल रही थीं। लगभग पूरी भी हो चुकी थीं। इस वक्त रातके कोई तीन बजे होंगे। हम दोनों काफिलेके आगे-आगे चल रहे थे। दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। मि० पोलकको डरबन जानेवाली ट्रेन पकड़नी थी। पर जब रामचन्द्रजी सरीखे पुरुषको राजतिलकके ही समय वनवास मिला तो पोलककी क्या हकीकत थी? हम बातें कर रहे थे कि एक घोड़ागाड़ी सामने आकर खड़ी हो गई। उसमें एशियाई महकमेके प्रधान (ट्रांसवालके प्रधान इमिग्रेशन आफिसर) मि० चमनी और एक पुलिस अफसर थे। दोनों नीचे उतरे। मुझको थोड़ी दूर ले जाकर एकने कहा —"मैं आपको गिरफ्तार करता हूं।"

इस तरह चार दिनके अंदर मैं तीन बार गिरफ्तार किया गया। मैंने पूछा — और काफिलेका?

'वह होता रहेगा।'

मैं कुछ नहीं बोला। पोलकसे कहा कि आप काफिलेके साथ जायं। पुलिस-अफसरने मुझे सिर्फ अपनी गिरफ्तारीकी खबर साथियोंको दे देनेकी इजाजत दी। ज्योंही लोगोंसे शांति रखनेके लिए कहना आरम्भ किया, त्योंही अफसरसाहब बोल उठे— अब आप कैदी हैं, भाषण नहीं दे सकते।

मैंने अपनी मर्यादा समझ ली। समझनेकी जरूरत तो नहीं थी, क्योंकि मुझसे बोलना बंद करनेके साथ ही उस अफसरने गाड़ीवानको जोरसे गाड़ी हांकनेका हुक्म दिया। क्षणभरमें काफिला अदृश्य हो गया।

उक्त अधिकारी जानता था कि घड़ीभर तो मेरा ही राज है, क्योंकि वह तो हमारे अहिंसा पर विश्वास रखकर ही इस वीरान मैदानमें दो हजारके मजमेके सामने अकेला आया हुआ था। वह यह भी जानता था कि उसने मुझे चिट्ठीसे कैद किया होता तो भी मैं हाजिर होकर उसके हवाले कर देता। ऐसी हालतमें मैं कैदी हूं, इसकी याद मुझे दिलाना अनावश्यक था। मैं लोगोंसे जो कहता वह अधिका

रियोंके लिए भी उपयोगी ही होता। पर उन्हें तो अपना रूप दिखाना ही चाहिए। इसके साथ ही मुझे यह भी कह देना चाहिए कि अनेक अधिकारी हमारी कैदको समझते थे। वे जानते थे कि कैद हमारे लिए अंकुश या दुःखरूप नहीं है, हमारे लिए तो वह मुक्तिका द्वार है। इससे हमें हर तरहकी जायज आजादी देते। इतना ही नहीं गिरफ्तार करनेमें उनको आसानी हो और उनका वक्त बचे इससे हमारी मदद लेते और मिलनसे उपकार मानते। दोनों तरहके नमूने इन प्रकरणोंमें पाठकोंको मिलेंगे।

मुझे एकसे दूसरी जगह घुमाते हुए अंतमें हेडलबर्गके थानेमें ले जाकर रखा। रात वहीं बिताई।

पोलक काफिलेको लेकर आगे बढ़े और ग्रेलिंगस्टेड पहुंचे। वहां भारतीय व्यापारियोंका अच्छा जमाव था। रास्तेमें सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया और सेठ आमद मुहम्मद भायात मिले। क्या होनेवाला है इसकी खबर उन्हें मिल गई थी। मेरे ही साथ पूरे काफिलेको भी गिरफ्तार कर लेनेका प्रबंध कर लिया गया था। इसलिए मि० पोलकने सोचा कि काफिले-को ठिकाने पहुंचा दिया तो एक दिन देरसे भी डर्बन पहुंचकर हिंदुस्तान जानेवाले जहाजको पकड़ सकते हैं। पर ईश्वरने कुछ और ही सोच रखा था।

१० तारीखको लगभग ९ बजे सवेरे काफिला बालफोर पहुंचा जहां काफिलेको गिरफ्तारकर नेटाल पहुंचा देनेके लिए तीन स्पेशल ट्रेनें खड़ी थीं। यहां लोगोंने कुछ हठ पकड़ी। कहा— गांधीको बुलाओ। वह कहें तो हम गिरफ्तार होंगे और ट्रेनमें सवार होंगे। यह हठ अनुचित थी। उसका न छोड़नेसे हमारी बाजी बिगड़ती सत्याग्रहीका तेज घटता। जेल जानेमें गांधीका क्या काम? सिपाही कहीं सेनानायकका चुनाव करता है या उनमेंसे किसी एकका ही हुक्म माननेका आग्रह कर सकता है? मि० चमनीने इन लोगोंको समझानेमें मि० पोलक और सेठ काछलियाकी मदद ली। वे कठिनाईसे

मुझपर डंडीमें मुकदमा चलाया गया और नौ महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली (११ नवम्बर)। अभी वोक्सरस्टमें दूसरा मुकदमा वर्जित व्यक्तियोंको ट्रांसवालमें दाखिल होनेकी प्रेरणा और इसमें सहायता करनेका बाकी था। मुझे वोक्सरस्ट ले गये। वहां मैंने मि० केलनबेक और मि० पोलकको देखा। यों हम तीनों वोक्सरस्ट जेलमें मिले। इससे हमारे हर्षका पार न रहा।

वोक्सरस्टमें मुझपर जो मुकदमा चलाया गया उसमें अपने खिलाफ मुझको ही शहादत देनी थी। पुलिसको मिल सकती थी, पर कठिनाईसे। इसलिए उसने मेरी मदद ली। यहांकी अदालतें केवल अभियुक्तके अपराधी होना स्वीकार कर लेनेपर सजा नहीं करती थीं।

मेरा काम तो हुआ, पर मि० केलनबेक और मि० पोलकके खिलाफ कौन शहादत दे? शहादत न मिले तो उनको सजा देना नामुमकिन था। उनके खिलाफ झट शहादत हासिल कर लेना भी कठिन था। मि० केलनबेकको तो अपना अपराध स्वीकार कर लेना था, क्योंकि उनका इरादा कैदियोंके साथ रहनेका था। पर मि० पोलकका विचार तो हिंदुस्तान जानेका था। इससे हम तीनोंने मिलकर यह तै किया कि मि० पोलकने अपराध किया है या नहीं, इस सवालके जवाबमें हम 'हां' या 'न' कुछ भी न कहें।

इन दोनों साथियोंके विरुद्ध मैं गवाह बना। हम यह नहीं चाहते थे कि मुकदमे ज्यादा चलें, इसलिए तीनों मुकदमे एक-एक दिनमें ही खतम हो जायं, इसमें अपनी ओरसे पूरी मदद दी। ऐसा हुआ भी। हम लोगोंको तीन-तीन महीनेकी कैदकी सजा मिली। हमने सोचा कि ये तीन महीने तो हम साथ रह सकेंगे, पर सरकारका सुभीता इसको इजाजत नहीं देता था।

इस बीच थोड़े दिन हम वोक्सरस्ट जेलमें सुखसे रहे। वहां रोज नये कैदी आते और बाहरकी खबर लाते। इन सत्याग्रही कैदियोंमें एक हरबतसिंह नामका बूढ़ा था। उसकी उम्र

७५ से ऊपर थी। वह किसी खानमें काम नहीं करता था। अपना गिरमिट तो वह बरसों पहले पूरा कर चुका था। इसलिए वह हड़तालमें शामिल नहीं था। मेरी गिरफ्तारीके बाद लोगोंमें उत्साह बहुत ही बढ़ गया था और बहुतेरे नेटाल से ट्रांसवालमें दाखिल होकर गिरफ्तार हो रहे थे। हरबतसिंह भी उन्हींमें था। मैंने पूछा— आप जेलमें क्यों आये? आप जैसे बूढ़ोंको जेलमें आनेका निमंत्रण नहीं दिया है?

हरबतसिंहने जवाब दिया— मैं कैसे रह सकता था जब आप आपकी धर्मपत्नी और आपके लड़के तक हम लोगोंके लिए जेल चले गये?

"लेकिन आपसे जेलके दुःख बरदाश्त नहीं हो सकेंगे। आपके छूटनेके लिए मैं कोशिश करूं?

"मैं हरगिज जेल नहीं छोड़ूंगा। मुझे एक दिन तो मरना है ही। फिर ऐसा दिन कहां कि जेलमें ही मेरी मौत यहां हो जाय!

इस दृढ़ताको मैं कैसे डिगाता? वह डिगाये डिगती भी नहीं। मेरा सिर इस निरक्षर ज्ञानीके सामने झुक गया। जैसी हरबतसिंहकी भावना थी वैसा ही हुआ। हरबतसिंहकी मृत्यु जेलमें हुई। उसका शव फोक्सरस्टसे डर्बन मंगाया गया और सैकड़ों भारतीयोंकी उपस्थितिमें उसका सम्मानपूर्वक अग्नि संस्कार किया गया। ऐसे हरबतसिंह इस लड़ाईमें एक ही नहीं अनेक थे। पर जेलमें मरनेका सौभाग्य अकेले उसीको मिला। इससे दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें वह उल्लेखका अधिकारी हो गया।

इस प्रकार लोग आकृष्ट होकर जेल आयें यह सरकारको पसंद नहीं हो सकता था। फिर जनसे छूटनेवाले मेरा संदेसा ले जायं यह भी उसको गवारा नहीं हो सकता था। अतः हम दोनोंको अलग कर दें, तथा भी फोक्सरस्टमें रहने न दें और मुझे ऐसी जगह ले जानेका निश्चय किया गया जहां कोई हिन्दुस्तानी जा ही न सके। फलतः मैं ऑरेंजियाकी राजधानी ब्लूमफौंटीनको भेजा गया। ऑरेंजियामें कुल मिलाकर ५० से अधिक

हिंदुस्तानी नहीं थे। वे सभी होटलोंमें नौकरी करते थे। ऐसे प्रदेशकी जेलमें हिंदुस्तानी कैदी हो ही नहीं सकते थे। उस जेल में मैं अकेला ही हिंदुस्तानी था। बाकीके सभी कैदी गोरे या हब्शी थे। मुझे इसका दुःख नहीं था बल्कि मैंने इसको सुख माना। मुझे न कुछ सुनना था न देखना। नया अनुभव मिले यह मेरे मनको भानेवाली बात थी। फिर मुझे पढ़नेका समय तो बरसोंसे कहिये १८९३ के बाद से मिला ही नहीं था। अब एक बरस मिलेगा यह जानकर मुझे तो खुशी हुई।

मैं ब्लूम फोन्टीन पहुंचाया गया। वहां एकांत तो यथेच्छ मिला। कठिनाइयां भी बहुत थीं पर सभी सह्य थीं। उनका वर्णन करके पाठकोंका समय नहीं लूंगा। फिर भी इतना बता देना जरूरी है कि वहांका डाक्टर मेरा मित्र हो गया। जेलर तो केवल अपने अधिकारको ही समझता था पर डाक्टर कैदियों के हककी रक्षाका ध्यान रखता था। मेरा यह काल शुद्ध फलाहारका था। न दूध लेता न घी। अन्न भी न खाता। केले टमाटर कच्ची मूंगफली नीबू और जैतूनका तेल बस यही मेरी खूराक थी। इनमें एक भी चीज सड़ी आये तो भूखों मरना पड़ता। इसलिए डाक्टर खास तौरसे ध्यान रखते और उन्होंने मेरी खुराकमें बादाम अखरोट और ब्रेजीलनट बढ़ा दिया। खुद सारे फलोंको देखते और उनके अच्छे होनेका इतमीनान करते। मुझे जो कोठरी दी गई थी उसमें हवा बहुत ही कम आती थी। उसका दरवाजा खुला रखवानेकी उन्होंने पूरी कोशिश की पर उनकी चली नहीं। जेलरने धमकी दी कि दरवाजा खुला रखा गया तो मैं इस्तीफा दे दूंगा। जेलर बुरा आदमी नहीं था पर उसका स्वभाव एक ही सांचेमें ढला हुआ था वह कैसे बदला जाय? उसे उपद्रवी कैदियोंसे काम पड़ता था। इसलिए मुझ जैसे भले कैदीके साथ भेदभाव करता तो दूसरे कैदियोंके उसपर हावी हो जानेका सच्चा डर था। मैं जेलरका दृष्टिबिंदु ठीक तौरसे समझ सकता था और इससे डाक्टर और जेलरके बीच मेरे बारेमें जो झगड़ा होता उसमें मेरी हमदर्दी जेलरकी होती।

नहर अनुभवी और सीधे रास्तेपर जानेवाला था और अपने पक्षको साफ देख सकता था।

मि० कैलनबैक प्रिटोरियाकी जेलमें भेज गये और मि० पोलक जर्मिस्टनकी जेलमें।

पर सरकारकी सारी योजना बेकार थी। आसमान टूटे तो पैबंद क्या काम देगा? नेटालके गिरमिटिए हिंदुस्तानी पूरे जोशसे जग गये थे। दुनियाकी कोई भी ताकत उनको रोक नहीं सकती थी।

२२

कसौटी

सोनेकी परख करनेवाला पहले उसको कसौटीपर घिसता है। फिर और परीक्षा करनी हो तो उसे भट्ठीमें डालता है। उसे पीटता है। मैल हो तो उसे निकाल डालता है और अन्तमें उसका कुन्दन बनाता है। ऐसी ही कसौटी हिंदुस्तानियोंकी हुई। वे पीटे गये, भट्ठीमें डाले गये, तपाये गये और जब वे खरे उतरे तभी उनकी कीमत आंकी गई।

[illegible]

कर्मचारियोंको बना दिया। इस प्रकार जो काम मजदूरोंने छोड़ दिया था वही सरकारने उनसे जबरदस्ती कराया। गुलामी और नौकरीमें यह फर्क है कि नौकर काम छोड़ दे तो उसपर दीवानी अदालतमें नालिश ही की जा सकती है और गुलाम काम छोड़े तो जबरदस्ती कामपर वापस लाया जा सकता है यानी अब मजदूर पूरे तौरपर गुलाम हो गये।

पर इतनाही काफी नहीं था। मजदूर बहादुर थे। उन्होंने खानोंमें काम करनेसे साफ इन्कार कर दिया। इसके फलस्वरूप उन्हें कोड़ोंकी मार सहनी पड़ी। अक्खड़ आदमियोंने जो क्षणभरमें अधिकारी बन बैठे थे उन्हें लातें मारीं, गालियां दीं और दूसरे अत्याचार किये। उसका तो कहीं उल्लेखतक नहीं हुआ है। गरीब मजदूरोंने इस सबको धीरजके साथ सह लिया। इन अत्याचारोंके तार हिंदुस्तान पहुंचे। सब तार गोखलेके नाम भेजे जाते। उन्हें एक दिन भी ब्योरेवार तार न मिलता तो सीधे पूछते। इन तारोंका प्रचार वह अपनी रोगशय्यासे करते क्योंकि इन दिनों वह सख्त बीमार थे। पर दक्षिण अफ्रीकाका काम इस दशामें भी खुद देखनेका आग्रह रखते थे और इस काममें न रात देखते न दिन। फल यह हुआ कि सारा हिंदुस्तान भड़क उठा और दक्षिण अफ्रीकाका सवाल वहां प्रधान प्रश्न बन गया।

यही वक्त था जब लार्ड हार्डिजने मद्रासमें (दिसंबर १९१३) वह प्रसिद्ध भाषण दिया जिसने दक्षिण अफ्रीका और विलायतमें खलबली मचा दी। वाइसराय दूसरे उपनिवेशों या साम्राज्यके अंगभूत देशोंकी आलोचना नहीं कर सकता। पर लार्ड हार्डिजने यूनियन सरकारकी कड़ी टीका ही नहीं की सत्याग्रहियोंके कामको पूरा बचाव भी किया यहांतक कि सविनय कानून भंगका भी समर्थन किया। विलायतमें उनके साहसकी कुछ कड़वी आलोचना अवश्य हुई, फिर भी उन्होंने अपने कार्यपर पश्चात्ताप न कर उसका औचित्य प्रकट किया। उनकी इस दृढ़ताका असर बहुत अच्छा हुआ।

समूहने उन्हें कामपर वापस ले जानेकी कोशिशका विरोध किया। किसी किसीने पुलिसपर ईंट-पत्थर भी फेंके। उनपर गोलियोंकी बौछार कर दी गई। बहुतेरे घायल हुए, दो-चार मरे भी। पर मजदूरोंका जोश इससे ठंडा नहीं हुआ। स्वयंसेवकोंने बड़ी कठिनाईसे वेरुलमके पास हड़ताल करनेसे लोगोंको रोका। पर सब मजदूर कामपर वापस नहीं गये। कुछ तो डरसे छिप गये और फिर कामपर वापस नहीं गये।

एक घटना उल्लेखयोग्य है। वेरुलममें बहुतसे मजदूर काम छोड़कर निकल पड़े थे। वे किसी उपायसे कामपर वापस नहीं जाते थे। जनरल ल्यूकिन अपने सिपाहियोंके साथ वहां मौजूद थे और हड़तालियोंपर गोली चलानेका हुक्म देनेको तयार थे। स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा लड़का बहादुर सोराबजी जो उस वक्त मुश्किलसे १८ बरसका रहा होगा डर्बनसे वहां पहुंच गया था। जनरलके घोड़ेकी लगाम थामकर वह बोल उठा— आप फैर करनेका हुक्म नहीं दे सकते। मैं अपने आदमियोंको शांतिसे कामपर लौटा देनेकी जिम्मेदारी लेता हूं। जनरल ल्यूकिन इस नौजवानकी बहादुरीपर मुग्ध हो गये और उसे अपना प्रेम-बल आजमा लेनेकी मुहलत दे दी। सोराबजीने लोगोंको समझाया। वे समझ गये और अपने कामपर लौट गये। इसतरह एक नवयुवककी मौकेकी सूझ निर्भयता और प्रमसे खून खराबी होते होते बची।

पाठकोंको जान लेना चाहिए कि ये गोलियोंकी बौछार आदि काम गैरकानूनी ही माने जा सकते हैं। आमतौर मजदूरोंके साथ व्यवहार करनेमें सरकारकी कार्रवाईकी जाहिरा शक्ल बाकायदा थी। वे हड़ताल करनेके लिए नहीं बल्कि ट्रांसवालकी सरहदमें बिना परवानोंके प्रवेश करनेके जुर्ममें गिरफ्तार किये गये थे। नेटालमें और वायव्य लोगोंमें हड़ताल करना ही अगर अपराध मान लिया गया था तो वह किसी कानूनके रूपसे नहीं बल्कि अधिकारके बलसे। अंतमें तो शक्ति ही कानून बन जाती है। अंग्रेजीमें एक कहावत है जिसका माने यह है कि

बादशाह कभी कोई गलती करता ही नहीं।" हुकूमतका सुभीता ही आखिरी कानून है। यह दोष सार्वभौम है। सच पूछिये तो इस तरह कानूनको भूल जाना सदा दोष ही नहीं होता। कुछ मौकोंपर कानूनसे चिपके रहना ही दोष बन जाता है। जब राजशक्ति लोकसंग्रह करती हो और जब उसका नियंत्रित करने वाला बंधन उस शक्तिका नाश करनेवाला बन रहा हो तब उस बंधनका अनादर धर्म-सम्मत और विवेकका अनुसरण है। ऐसे अवसर कभी-कभी ही उपस्थित होते हैं। जहां राज्य अकसर निरंकुश होकर व्यवहार करता है वहां वह लोकोपकारी नहीं हो सकता। यहां राज्यके निरंकुश होनेका कोई कारण नहीं था। हड़ताल करनेका हक अनादि है। यह जान लेनेके लिए सरकार के पास काफी मसाला था कि हड़ताल करनेवालोंको उपद्रव कदापि नहीं करना था। हड़तालका बड़े-से-बड़ा परिणाम इतना ही हो सकता था कि तीन पौंडका कर रद हो जाता। शांति प्रिय लोगोंके विरुद्ध तो विनय उपाय ही उचित माने जा सकते हैं। फिर यहां राजशक्ति लोकोपकारी नहीं थी। उसका अस्तित्व केवल गोरोंके भलेके लिए था। आमतौरसे वह हिंदुस्तानियोंकी विरोधिनी थी। इसलिए ऐसी एकपक्षीय राजशक्तिकी निरंकुशता किसी तरह उचित और धर्म्य नहीं मानी जा सकती।

अब यही समझना यहां बाकी रह गया कि शक्तिका शुद्ध दुरुपयोग क्या है। जिस कार्यकी सिद्धिके लिए शक्ति या अधिकारका [illegible] किया जाता है वह कभी सिद्ध नहीं होता। कभी-कभी क्षणिक सिद्धि मिलती दिखाई देती है पर स्थायी सफलता कभी नहीं मिलती। [illegible] समानता [illegible] महान् [illegible] [illegible] पह [illegible] [illegible] नहीं [illegible] अवसर [illegible] लिए [illegible] नहीं [illegible] [illegible]

होता है वैसे ही हर-एक सत्यार्थ-संग्राममें हर चीजकी अपनी जगह होती है और जैसे कोट मैल आदि कलकी गति रोक देते हैं वैसे ही कितनी चीजें युद्धकी गति भी बन्द कर देती हैं। हम तो निमित्तमात्र होते हैं, इसलिए हम सदा यह नहीं जानते कि क्या हमारे प्रतिकूल है और क्या अनुकूल। अतः हमें केवल साधनको जाननेका अधिकार है और साधन पवित्र हो तो फल के विषयमें हम निर्भय और निश्चित रह सकते हैं।

इस लड़ाईमें मैंने यह देखा कि ज्यों-ज्यों लड़नेवालोंका कष्ट बढ़ा त्यों-त्यों उसका अंत निकट आता गया। कष्ट उठाने वालोंकी निर्दोषिता ज्यों-ज्यों अधिक स्पष्ट होती गई त्यों-त्यों भी युद्धका अंत निकट आता गया। फिर इस युद्धमें मैंने यह भी देखा कि ऐसे निर्दोष निःशस्त्र और अहिंसक युद्धमें गाढ़े वक्तपर आवश्यक साधन अनायास जुट जाते हैं। बहुतसे स्वयं सेवकोंने जिन्हें मैं आजतक नहीं जानता अपने-आप आकर हमारी मदद की। ऐसे सेवक बहुत करके निःस्वार्थ होते हैं। इच्छा न होते हुए भी अदृश्य रीतिसे सेवा कर देते हैं। न कोई उनकी सेवा कहीं लिखता है और न कोई उन्हें प्रमाणपत्र देता है। कितने ही तो इतना भी नहीं जानते कि उनके ये अमूल्य कार्य भगवानकी बहीमें दर्ज किये जाते हैं।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय परीक्षामें पास हुए। उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया और उससे बिना बाल बांका हुए बाहर निकले। युद्धका अंत किस तरह आरंभ हुआ यह अलग प्रकरण में देखेंगे।

४९

अंतका आरंभ

पाठकोंने देखा होगा कि जितना बल लगाया जा सकता था उतना और जितनी उथल-पुथल मचाई जा सकती थी उस

होना ही उसका अवसर है। अतः वेस्टकी गिरफ्तारीका तार ज्योंही गोखलेके पास पहुंचा उन्होंने हिंदुस्तानके कुछ योग्य आदमियोंको दक्षिण अफ्रीका भेजनेका यत्न आरंभ कर दिया। लाहौरमें जब दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोंकी सहायताके लिए सभा हुई थी तो सी. एफ० एंड्रूजने जितना पैसा उनके पास था सब दे दिया था। तभीसे गोखलेकी नजर उनपर पड़ रही थी। अतः वेस्टकी गिरफ्तारीकी खबर मिलते ही उन्होंने एंड्रूजसे तारसे पूछा कि आप तुरत दक्षिण अफ्रीका जानेको तैयार हैं? एंड्रूजने जवाबमें तुरंत 'हां' कह दिया। इसी क्षण उनके परम प्रिय मित्र पियर्सन भी तैयार हो गये और वे दोनों पहले स्टीमरसे दक्षिण अफ्रीका जानेको रवाना हो गये।

पर अब तो युद्ध समाप्तिके पास पहुंच गया था। हजारों निरपराध लोगोंको जेलमें बंद रखनेकी शक्ति दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारके पास नहीं थी। वाइसराय भी इसे सहन नहीं कर सकते थे। सारी दुनिया यह देख रही थी कि जनरल स्मट्स क्या करते हैं। ऐसे मौकेपर राज्य आमतौरसे जो किया करते हैं, दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारने भी यही किया। जांच-पड़ताल तो कुछ करनी नहीं थी। जो अन्याय हुआ था वह जाहिर था। उसे दूर करनेकी आवश्यकता हर आदमी देख रहा था। जनरल स्मट्स भी देख सकते थे कि अन्याय हुआ है और वह दूर होना चाहिए पर उनकी दशा सांप-छछूंदरकी-सी हो रही थी। उन्हें न्याय करना था पर न्याय करनेकी शक्ति वह खो बैठे थे क्योंकि दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंको उन्होंने यह इतमीनान दिला दिया था कि वह न तो तीन पौंडका कर रद नहीं करेंगे और न दूसरे सुधार ही। पर अब तो उक्त करको उठाकर और दूसरे सुधार करके ही छुटकारा था। ऐसी विकट स्थितिसे निकलनेके लिए लोकमतसे डरकर चलनेवाले ——— ——— कमी-शन नियुक्त किया करते हैं। उसके जरिये जांच कराई जाती है क्योंकि वह क्या सलाह देगा समझा हुआ होता है। यह आम रिवाज है कि कमीशन जो

हम कमीशनका स्वागत करते हैं। पर उसके दो सदस्यों मि० एसलेन और मि० वाइलीकी नियुक्ति जिस रीतिसे हुई है उसपर हमें सख्त एतराज है। उनके व्यक्तित्वसे हमारा कुछ भी विरोध नहीं। वे प्रसिद्ध और सुयोग्य नागरिक हैं। पर दोनों अनेक बार भारतीयोंको नापसंद करनेका भाव प्रकट कर चुके हैं। इसलिए उनसे बिना जाने अन्याय हो जाना संभव है। मनुष्य अपना स्वभाव यकायक बदल नहीं सकता। ये दोनों सज्जन अपना स्वभाव बदल लेंगे यह मानना प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है। फिर भी हमारी मांग यह नहीं है कि ये कमीशनसे अलग कर दिये जायं। हमारा सुझाव इतना ही है कि एक-दो तटस्थ पुरुष उसमें बढ़ा दिये जाय और इसके लिए हम सर जेम्स रोज इनिस और ऑनरेबल डब्ल्यू पी० श्राइनरके नाम पेश करते हैं। दोनों नामी व्यक्ति अपनी न्यायवृत्तिके लिए सुविख्यात हैं। हमारी दूसरी प्रार्थना यह है कि सभी सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये जाएं। यह न होनेसे हमारा अपना जेलके बाहर रहना कठिन हो जायगा। अब उन्हें जेलमें बंद रखनेका कोई कारण नहीं है। तीसरे अगर हमें कमीशनके सामने गवाही देनी है तो हमें खानोंमें और जहां-जहां गिरमिटिए काम करते हैं वहां-वहां जानेकी आजादी होनी चाहिए। हमारी ये प्रार्थनाएं स्वीकार न की गईं तो हमें खेदके साथ फिर जेल जानेके उपाय ढूंढने होंगे।

जनरल महोदयने कमीशनमें और किसीको लेनेसे इंकार किया और कहा कि कमीशन किसी पक्षके लिए नहीं नियुक्त हुआ है। वह केवल सरकारके संतोषके लिए बनाया गया है। यह जवाब मिलनेपर हमारे पास एक ही इलाज रह गया और हमने जेलकी तैयारी करके यह विज्ञप्ति निकाली कि १९१४ की पहली जनवरीको जेल जानेवालोंकी रवानगी कूच शुरू होगी। १८ दिसंबर (१९१३) को हम छोड़े गये व २१ को हमने उपर्युक्त पत्र लिखा और २४ को जनरल स्मट्सका जवाब मिला।

पर इस उत्तरमें एक बात ऐसी थी जिसमें मैंने जनरल स्मट्सको फिर पत्र लिखा। उनके जवाबमें इस आशयका वाक्य था— "कमीशन निष्पक्ष और अदालती बनाया गया है और उसकी नियुक्ति करते समय अगर भारतीयोंसे मशविरा नहीं किया गया तो खानवालों और शक्करवालोंसे भी नहीं किया गया।" इस वाक्यको देखकर मैंने जनरल महोदयको निजी पत्रमें लिखा कि "अगर सरकार न्याय ही करना चाहती हो तो मुझे आपसे मिलना है और कुछ तथ्य आपके सामने रखने हैं।" इसके जवाबमें जनरल स्मट्सने मुलाकातका अनुरोध स्वीकार किया। इससे कूच कुछ दिनके लिए तो मुलतवी हो ही गई।

उधर गोखलेने जब सुना कि हम नई कूच करनेवाले हैं तब उन्होंने लंबा तार भेजा। उसमें लिखा कि ऐसा करनेसे लार्ड हार्डिंजकी और मेरी स्थिति भी कठिन हो जायगी और दूसरी कूच मुलतवी रखने और कमीशनके सामने इजहार देनेकी जोरदार सलाह दी।

हमारे ऊपर धर्मसंकट आ पड़ा। कमीशनके सदस्योंमें और आदमी नहीं लिए गये तो भारतीय जनता उसका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा कर चुकी थी। लार्ड हार्डिंज नाराज हों, गोखले दुःखी हों तो भी प्रतिज्ञा कैसे तोड़ी जाय? मि० एण्ड्रयूजने गोखलेकी भावना, उनके नाजुक स्वास्थ्य और हमारे निश्चयसे उनके दिलको लगनेवाले धक्केपर विचार करनेकी सलाह दी। मैं तो जानता ही था। नेताओंने इकट्ठे होकर सविस्तर विचार किया और अंतमें निश्चय किया कि चाहे जो जोखिम उठानी पड़े पर बहिष्कार तो कायम रखना ही चाहिए। इसलिए हमने गोखलेको लगभग सौ पौंड खर्च करके लंबा तार भेजा। उसमें एण्ड्रयूजकी भी सहमति थी। उसका आशय यह था—

"आपका दुःख समझता हूं। मैं तो चाहता कि बड़ी-से-बड़ी वस्तुका त्याग करके भी आपकी सलाहका अनुसरण करूं। लार्ड हार्डिंजने हमारी जो सहायता की है वह अमूल्य है

मैं यह भी चाहता हूं कि यह मदद हमें अंततक मिलती रहे। पर मैं चाहता हूं कि आप हमारी स्थितिको समझें। इसमें हजारों आदमियोंकी प्रतिज्ञाका प्रश्न आता है। प्रतिज्ञा शुद्ध है। हमारी सारी लड़ाईकी इमारत प्रतिज्ञाओंकी नींवपर खड़ी की गई है। प्रतिज्ञाओंका बंधन नहीं होता तो हममेंसे बहुतेरे आज गिर गये होते। हजारोंकी प्रतिज्ञापर एक बार पानी फिर जाय तो नैतिक बंधन-जैसी कोई चीज रहेगी नहीं। प्रतिज्ञा करते समय कोमोंने पूरी तरह विचार कर लिया था। उसमें कोई अनीति तो है ही नहीं। बहिष्कारकी प्रतिज्ञा करनेका कौमको अधिकार है। मैं चाहता हूं कि आप भी हमें यह सलाह दें कि ऐसी प्रतिज्ञा किसीकी खातिर भी नहीं तोड़ी जानी चाहिए और हर हानि जोखिम उठाकर भी उसका पालन होना चाहिए। यह तार आप लार्ड हार्डिजको दिखाइयेगा। मैं चाहता हूं कि आपकी स्थिति कठिन न हो जाय। हमने अपनी लड़ाई ईश्वरको साक्षी और उसकी सहायताका भरोसा रखकर शुरू की। यहांकी ओर और बड़े आदमियोंकी सहायता हम चाहते और मांगते हैं। यह मिल जाय तो प्रसन्न होते हैं। पर मेरी नम्र राय है कि यह मिले या न मिले प्रतिज्ञाका बंधन कदापि न टूटना चाहिए। उसके पालनमें आपका समर्थन और आशीर्वाद चाहता हूं।

यह तार गोखलेको मिला। इसका असर उनके स्वास्थ्य पर तो हुआ पर उनकी सहायतापर नहीं हुआ या हुआ तो यही कि उसका जोर और बढ़ गया। लार्ड हार्डिजको उन्होंने तार भेजा पर हमारा त्याग नहीं किया। उलटे हमारी दृष्टि का बचाव किया। लार्ड हार्डिज भी दृढ़ रहे।

मैं एंड्रूजको साथ लेकर प्रिटोरिया गया। इसी वक्त यूनियन रेलवेमें गोरे कर्मचारियोंकी जबरदस्त हड़ताल हुई। इस हड़तालसे सरकारकी स्थिति नाजुक हो गई। मुझसे कहलाया गया कि हिंदुस्तानियोंकी कूच बोल दो। मैंने जाहिर किया कि मुझसे हड़तालियोंको इस रीतिसे मदद नहीं होने की। हमारा उद्देश्य सरकारको हैरान करना नहीं है। हमारी जो

दूसरे तरीकेकी है। हमें कूच करना ही होगा तो भी हम जब रेलवेकी गड़बड़ शांत हो जायगी तब करेंगे। इस निश्चयका गहरा असर हुआ। रायटरने उसका तार विलायत भेजा। लार्ड एम्पटहिलने वहांसे धन्यवादका तार भेजा। दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेज मित्रोंने भी धन्यवाद दिया। जनरल स्मट्सके एक मंत्रीने मजाकमें कहा—'मुझे तो आपके लोग तनिक भी नहीं भाते। मैं उनकी जरा भी मदद करना नहीं चाहता। पर उनका हम करें क्या? आप लोग हमारे संकटकालमें हमारी सहायता करते हैं। हम आपको कैसे मारें? मैं तो बहुत बार चाहता हूं कि आप लोग भी अंग्रेज हड़तालियोंकी तरह दंगा फसाद करें। तब हम तुरंत सीधा कर दें। आप तो दुश्मनको भी दुःख देना नहीं चाहते। आप तो स्वयं दुःख सहकर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। सज्जनता और विनम्रताकी मर्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करते। यहां हम लाचार हो जाते हैं।'

इसी तरहके भाव जनरल स्मट्सने भी प्रकट किये।

पाठकोंको मालूम होना चाहिए कि सत्याग्रहियोंके सौजन्य और विनयका यह पहला उदाहरण नहीं था। जब नार्थ कोस्टके हिंदुस्तानी मजदूरोंने हड़तालकी तो शक्करकी ईख जो काटी जा चुकी थी, उसे कारखानेमें—नहीं पहुंचाया जाता तो मालिकोंको भारी नुकसान उठाना पड़ता। इसलिए १२०० भारतीय मजदूर उस कामको पूरा करनेके लिए कामपर वापस गये और उसके पूरा हो जानेपर ही अपने साथियोंके साथ शामिल हुए। फिर जब डरबन म्युनिसिपैलिटीके हिंदुस्तानी मजदूरोंने हड़ताल की तो उनमें भी जो लोग सफाई और अस्पतालका काम करते थे वे वापस भेज दिये गये और वे प्रसन्नतासे [illegible] भी गये। [illegible] और [illegible] काम करनेवाला [illegible] काम [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible] [illegible] [illegible] नहीं कर सकते। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विचार

करही लेना चाहिए।

ऐसी भलमनसीके अनेक दृष्टांतोंका अवश्य प्रभाव चारों ओर पड़ता हुआ मैं देख सकता था और उससे भारतीयोंकी प्रतिष्ठा बढ़ती और समझौतेके लिए हवा अनुकूल होती जा रही थी।

२४

प्राथमिक समझौता

इस प्रकार समझौते के लिए वातावरण अनुकूल होता जा रहा था। मैं और मि० एंड्रूज जब प्रिटोरिया पहुंचे उसी वक्त सर बेंजामिन राबर्टसन जिन्हें लार्ड हार्डिजने स्पेशल स्टीमरमें भेजा था पहुंचनेवाले थे। पर हमें तो जनरल स्मट्सने जो दिन नियत किया था उसी दिन पहुंचना था। इससे सर बेंजामिनकी राह देखे बिना ही हम रवाना हो गये थे। राह देखनेका कारण भी नहीं था। लड़ाईका अंतिम परिणाम तो हमारी शक्तिके अनुसार ही होनेवाला था।

हम दोनों प्रिटोरिया पहुंचे पर जनरल स्मट्ससे मुझे अकेले ही मिलना था। वह रेलवेके गोरे कर्मचारियोंकी हड़तालमें उलझ रहे थे। यह हड़ताल ऐसी भयानक थी कि यूनियन सरकारने फौजी कानून जारी किया था। इन कर्मचारियोंका उद्देश्य मजदूरी बढ़वाना मात्र नहीं था बल्कि राज्यकी लगाम अपने हाथमें कर लेना था। मेरी पहली मुलाकात बहुत ही छोटी हुई। पर मैंने देखा कि जनरल स्मट्सकी स्थिति जो पहले यानी कूच शुरू कर देनेके समय थी वह आज नहीं थी। पाठकों को याद होगा कि उस वक्त उन्होंने मुझसे बात करनेसे भी इंकार कर दिया था। सत्याग्रहकी धमकी तो जैसे उस वक्त थी वैसे आज थी। फिर भी उस वक्त उन्होंने समझौतेकी बातचीत करनसे इकार कर दिया था। इस वक्त वह मुझसे मशविरा

कि भारतीयोंने सिपाहियोंपर जो इलजाम लगाए हैं वे साबित किये ही जाने चाहिए। इसलिए उसकी सलाह थी कि अगर हम कमीशनके सामने शहादत न दे सकें तो कौम जिन्हें अपराधी मानती है उनके खिलाफ अपनी शिकायतें इस रूपमें प्रकाशित कर दे कि अभियुक्तकी मरजी हो तो मानहानिकी नालिश दायर कर सकें। मैं इस पक्षका विरोधी था। कमीशनके सरकारके विरुद्ध निर्णय करनेकी संभावना बहुत कम थी। मानहानिका दावा दायर करने लायक तथ्य प्रकाशित करनेमें कौमको भारी झमेलेमें पड़ना पड़ता और इसका नतीजा इतना ही होता कि हमें अपनी शिकायतें साबित कर देनेका संतोष मिल जाता। वकीलकी हैसियतसे मैं जानता था कि मानहानिवाली बातोंको साबित करनेमें कैसी कठिनाइयां होती हैं। पर मेरी सबसे वजनदार दलील तो यह थी कि सत्याग्रहीको कष्ट सहन करना था। सत्याग्रह आरंभ करनेके पहले सत्याग्रही जानते थे कि हमें मरणांत कष्ट सहना होगा और उसे सहनेको वे तैयार भी थे। ऐसी दशामें यह साबित करनेमें कोई विशेषता नहीं थी कि हमें कष्ट सहने पड़े। बदला लेनेकी वृत्ति तो सत्याग्रहीमें होनी ही नहीं चाहिए। इसलिए जहां अपने कष्ट साबित करनेमें असाधारण कठिनाइयां सामने आ जायें वहां शांत रहें यही सही रास्ता माना जायगा। सत्याग्रहीको तो मूलवस्तुके लिए ही लड़ना होता है। मूलवस्तु तो थी उक्त कानून। जब उनके रद्द कर दिये जाने या उनमें यथोचित सुधार हो जानेकी पूरी संभावना हो तो वह दूसरे झंझटमें क्यों पड़ता? दूसरे सत्याग्रहीका मौन अन्यायकारी कानूनोंके विरुद्ध उसकी लड़ाईमें समझौता होते समय तो सहायक ही होगा। इस तरहकी दलीलोंसे विरोधी पक्षके बहुतेरोंमें समझा सका और अंतमें हमने कष्टोंको निजी तौरपर साबित करनेका विचार त्याग दिया।

२५

पत्र-व्यवहार

प्राथमिक समझौतेके लिए जनरल स्मट्सके और मेरे बीच पत्र-व्यवहार हुआ। मेरे पत्र का आशय यह था

'अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम आपके सूचनानुसार कमीशनके काममें मदद नहीं कर सकते। इस प्रतिज्ञाको आप समझ सकते हैं और उसकी कद्र भी करते हैं पर आपने हिंदुस्तानी कौमके साथ मशविरा करनेका सिद्धांत स्वीकार कर लिया है। इसलिए मैं अपने देशवासियोंको यह सलाह दे सकता हूं कि कमीशनके सामने शहादतें पेश करना छोड़कर दूसरी तरहसे उसकी सहायता करें और कम-से-कम उसके काममें रुकावट तो नहीं ही डालें। इसके सिवा जबतक कमीशनका काम चलता रहे और नया कानून नहीं बने तबतक सरकारकी स्थिति कठिन न हो जाय इस खयालसे सत्याग्रह मुलतवी रखनेकी सलाह भी मैं उन्हें दे सकता हूं। सर बेंजामिन राबर्टसनकी जिन्हें वाइसरायने यहां भेजा है सहायता करनेकी सलाह भी मैं अपने देशवासियोंको दूंगा। हड़तालमें और हड़तालके दौरानमें हमारे ऊपर जो जुल्म-ज्यादतियां हुईं उनके बारेमें मुझे कहना होगा कि अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम इन शिकायतोंको साबित भी नहीं कर सकते। सत्याग्रहीकी हैसियतसे हमसे जहांतक हो सकता है अपने कष्टोंकी शिकायत नहीं करते और न उनका मुआवजा मांगते हैं। पर इस समय हमारे मौनका अर्थ यह न लिया जाय कि हमारे पास साबित करनेको कोई मसाला तो है ही नहीं। मैं चाहता हूं कि आप मेरी स्थिति समझ सकें। इसके अतिरिक्त चूंकि हम सत्याग्रह मुलतवी रख रहे हैं इसलिए सत्याग्रहके सिलसिलेमें जो लोग इस वक्त जेलमें हैं उन्हें रिहाई मिलनी ही चाहिए।

हमारी मांग क्या है, यह भी यहां जता देना आवश्यक जान

पड़ता है

१ तीन पौंडका कर उठा दिया जाय।

२ विवाह हिंदू-धर्म इस्लाम इत्यादिकी रीतिसे हुआ हो तो जायज माना जाय।

३ पढ़े-लिखे भारतीय इस देशमें दाखिल हो सकें।

४ ऑरेंजिया (ऑरेंज फ्री स्टेट) के बारेमें जो कौल-करार हुआ है उसमें सुधार किया जाय।

५ यह आश्वासन दिया जाय कि मौजूदा कानूनोंका व्यवहार इस तरह किया जायगा कि जो हक आज भोगे जा रहे हैं उनको नुकसान न पहुँचे।

इन बातोंके विषयमें आपसे सतोषजनक उत्तर मिले तो मैं कौमको सत्याग्रह मुल्तवी रखनेकी सलाह दूं।

यह पत्र मैंने १९१४की २१वीं जनवरीको लिखा। उसी दिन उसका जो जवाब मिला उसका आशय यह था

'आप कमीशनके सामने इजहार नहीं दे सकते इसका सरकारको खेद है, पर वह आपकी स्थिति समझ सकती है। आप जो कष्टोंकी बात न उठानेका विचार प्रकट कर रहे हैं उसको भी सरकार समझती है। इन कष्टोंसे सरकार तो इंकार ही करती है पर जब आप उसका सबूत नहीं पेश कर रहे हैं तो सरकारको इस विषयमें कुछ करना नहीं रह जाता। सत्याग्रही कैदियोंकी रिहाईके बारेमें तो सरकार आपका पत्र मिलनेसे पहले ही हुक्म दे चुकी है। हिंदुस्तानी कौमके कष्ट जो आपने गिनाये हैं उनके बारेमें सरकार कमीशनकी रिपोर्ट मिलनेतक कोई कदम नहीं उठायेगी।

यह पत्र-व्यवहार होनेसे पहले हम दोनों—मैं और मि एंड्रूज—अनेक बार जनरल स्मट्ससे मिल चुके थे पर इस बीच सर बेंजामिन राबर्टसन भी प्रिटोरिया पहुँच गये थे। सर बेंजामिन यद्यपि लोकप्रिय अधिकारी माने जाते थे गोखलेकी सिफारिशी चिट्ठी भी अपने साथ लाये थे फिर भी मैंने देखा कि आम अंग्रेज अफसरोंकी कमजोरियोंसे वह सर्वथा मुक्त नहीं थे।

पहुंचनेके साथ ही उन्होंने कौममें फूट डालना और सत्याग्रहियोंको डरवाना शुरू कर दिया। प्रिटोरियामें हुई मेरी पहली मुलाकातमें उनकी अच्छी छाप नहीं पड़ी। डरानेके बारेमें मुझे जो खबर मिली थी उनका जिक्र भी मैंने उनसे कर दिया। मुझे तो सबके साथ एक ही रीतिसे यानी सफाई और सचाईका व्यवहार करना था। अब हम मित्र हो गये पर मैंने अनेक बार देखा है कि डरनेवालेको तो अधिकारी डराते हैं और सीधे तथा न डरनेवालेके साथ वह सीधे रहते हैं।

इस प्रकार प्राथमिक-अस्थायी समझौता हुआ और सत्याग्रह आखिरी बार सदाके लिए मुलतवी किया गया। बहुतेरे अंग्रेज मित्रोंको प्रसन्नता हुई और उन्होंने अंतिम समझौतेमें मदद करनेका मुझे भरोसा भी दिलाया। कौमसे इस समझौतेको मंजूर करा लेना जरा टेढ़ी खीर थी। जमा हुआ जोश ठंडा पड़ जाय यह किसीको भी पसंद आनेवाली बात नहीं थी। फिर जनरल स्मटसका विश्वास कोई क्यों करने लगा? कुछ भाइयोंने १९०८के समझौतेकी याद दिलाई और कहा—"एक बार जनरल स्मट्सने कौमको धोखा दिया अनेक बार आपपर अपनी मांगोंमें नई बातें शामिल कर लेनेका दोष लगाया कौमपर भारी मुसीबतें गुजारी फिर भी आपने नहीं समझा यह कैसे दुःखकी बात है? यह आदमी फिर धोखा देगा और आप फिर सत्याग्रह करनेकी बात कहेंगे। उस वक्त कौन आपका विश्वास करेगा? साथ बार-बार जेल जायें और बार-बार धोखा खायें यह कैसे हो सकता है? जनरल स्मट्स-जैसे आदमीके साथ तो एक ही समझौता हो सकता है जो मांगना वह ले लेना। उनसे वचन नहीं लेने चाहिएं। जो वादा करके मुकर जाय उसे उधार कोई कैसे दे सकता है?"

मैं जानता ही था कि इस तरहकी दलीलें जितनी हो जगह पेश की जायेंगी इसमें मुझ अचरज नहीं हुआ। सत्याग्रही जितनी ही बार धोखा क्यों न खाये जबतक वचनपर विश्वास न करने का स्पष्ट कारण नहीं हो तबतक विश्वास वचनका विश्वास

पड़ता है

१ तीन पौंडका कर उठा दिया जाय।

२ विवाह हिंदू-धर्म इस्लाम इत्यादिकी रीतिसे हुआ हो तो जायज माना जाय।

३ पढ़े-लिखे भारतीय इस देशमें दाखिल हो सकें।

४ ऑरेंजिया (ऑरेंज फ्री स्टेट) के बारेमें जो कौल-करार हुआ है उसमें सुधार किया जाय।

५ यह आश्वासन दिया जाय कि मौजूदा कानूनोंका व्यवहार इस तरह किया जायगा कि जो हक आज भोगे जा रहे हैं उनको नुकसान न पहुंचे।

इन बातोंके विषयमें आपसे संतोषजनक उत्तर मिले तो मैं कौमको सत्याग्रह मुल्तवी रखनेकी सलाह दूं।

यह पत्र मैंने १९१४की २१वीं जनवरीको लिखा। उसी दिन उसका जो जवाब मिला उसका आशय यह था

आप कमीशनके सामने इजहार नहीं दे सकते इसका सरकारको खेद है, पर यह आपकी स्थिति समझ सकती है। आप जो कष्टोंकी बात न उठानेका विचार प्रकट कर रहे हैं उसका भी सरकार समझती है। इन कष्टोंसे सरकार तो इकार ही करती है पर जब आप उसका सबूत नहीं पेश कर रहे हैं तो सरकारको इस विषयमें कुछ करना नहीं रह जाता। सत्या-ग्रही कैदियोंकी रिहाईके बारेमें तो सरकार आपका पत्र मिलनेसे पहले ही हुक्म दे चुकी है। हिंदुस्तानी कौमके कष्ट जो आपने गिनाये हैं उनके बारेमें सरकार कमीशनकी रिपोर्ट मिलनेतक कोई कदम नहीं उठायेगी।

यह पत्र-व्यवहार होनेसे पहले हम दोनों—मैं और मि० एंड्रूज—अनेक बार जनरल स्मट्ससे मिल चुके थे पर इस बीच सर बेंजामिन राबर्टसन भी प्रिटोरिया पहुंच गये थे। सर बेंजामिन यद्यपि लोकप्रिय अधिकारी माने जाते थे गोखलेकी सिफारिशी चिट्ठी भी अपने साथ लाये थे फिर भी मैंने देखा कि आम अंग्रेज अफसरोंकी कमजोरियोंसे यह सर्वथा मुक्त नहीं थे।

करेगा ही। जिसने दुःखको सुख मान लिया हो वह जहाँ अवि श्वास करनेका कारण न हो वहाँ केवल दुःखके नामसे डरकर अविश्वास नहीं करेगा बल्कि अपनी शक्तिपर भरोसा रखकर विपक्षके विश्वासघातकी ओरसे निश्चिन्त रहकर कितनी ही बार विश्वासघात क्यों न किया जाय फिर भी विश्वास करता ही जायगा और यह मानेगा कि ऐसा करनेसे सत्यका बल बढ़ेगा और विजय निकट आयेगी। अतः जगह-जगह सभाएं करके मैं अंतमें लोगोंको समझौता स्वीकार करानेके लिए समझा सका और वे भी सत्याग्रहका रहस्य अब अधिक समझने लगे। इस वक्तके समझौतेमें मि० एण्ड्रूज मध्यस्थ और साक्षी थे। वैसे ही वाइसरायके राजदूतके रूपमें सर बेंजामिन राबर्टसन भी थे। इसलिए इस समझौतेके मिथ्या होनेका डर कम-से-कम था। मैंने हठकरके समझौता करनेसे इंकार कर दिया होता तो यह उल्टा कौमका दोष समझा जाता और जो विजय छ महीने बाद हमें मिली उसकी प्राप्तिमें अनेक प्रकारके विघ्न आते। सत्याग्रही किसीभी कालमें इसका कारण नहीं प्रस्तुत करता कि कोई उसकी ओर उंगलीतक उठा सके। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' वाक्य ऐसे ही अनुभवके आधारपर लिखा गया है। सत्याग्रहमें निर्भयता रहनी ही चाहिए। फिर निर्भयको भय क्या? और जहाँ विरोधीका विरोध जीतना है उसका नाश नहीं करना है वहाँ अविश्वास कैसा?

इस तरह कौमके समझौता स्वीकार कर लेनेके बाद हमें महज यूनियन पार्लमेंटके बैठनेकी राहभर देखनी बाकी रही। इस बीच पूर्वोक्त कमीशनका काम जारी था। हिंदुस्तानियोंकी ओरसे बहुत ही कम गवाह उसके सामने गये। उस वक्त कौम पर सत्याग्रहियोंका कितना ज्यादा असर था इसका अकाट्य प्रमाण इससे मिल गया। सर बेंजामिन राबर्टसनने भी हिंदुस्तानियोंको गवाही देनेके लिए समझाया पर लड़ाईके कट्टर विरोधी थोड़ेसे भारतीयोंके सिवा और सब लोग अविचल रहे। इस बहिष्कारका असर तनिक भी बुरा नहीं हुआ। कमीशनका

तो उनमेंसे एक ही दक्षिण अफ्रीकामें कानूनन जायज पत्नी मानी जायगी। दूसरे भागके द्वारा उस तीन पौंडके करको रद करना है जो हरएक गिरमिटियेको अगर वह स्वतंत्र भारतीयके रूपमें दक्षिण अफ्रीकामें रहना चाहता हो तो हर साल देना पड़ता था। तीसरे भागमें जिन लोगोंको दक्षिण अफ्रीकामें रहनेके प्रमाणपत्र मिले हुए थे उन प्रमाणपत्रोंका महत्त्व बताया गया है। यानी यह बताया गया है कि जिसके पास यह प्रमाणपत्र हो उसका दक्षिण अफ्रीकामें रहनेका हक किस दरजेतक साबित होता है। इस बिलपर यूनियन पार्लमेंटमें काफी और मीठी बहस हुई।

दूसरी बातोंका जिनके लिए कानूनकी जरूरत नहीं थी स्पष्टीकरण जनरल स्मट्सके और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहारमें किया गया। उसमें इन विषयोंका खुलासा किया गया था। पढ़े लिखे भारतीयोंके केप कालोनीमें प्रवेशके अधिकारकी रक्षा जिन्हें दक्षिण अफ्रीकामें दाखिल होनेकी खास परवानगी प्राप्त थी उनका अधिकार जो हिंदुस्तानी १९१४के पहले दक्षिण अफ्रीकामें दाखिल हो चुके हों उनकी हैसियतें और जिन्होंने एकाधिक स्त्रियोंसे ब्याह कर लिया हो उन्हें कुछ रूपमें अपनी दूसरी पत्नीको भी लाने देना। जनरल स्मट्सके पत्रमें इस आशयका वाक्य भी है

"प्रचलित कानूनोंके बारेमें यूनियन सरकारकी सदा यह इच्छा रही है और आज भी है कि उनपर न्यायपूर्वक और जो अधिकार आज भोग जा रहे हैं उनकी रक्षा करते हुए ही अमल किया जाय। यह पत्र ३० जून १९१४को लिखा गया था। उसके जवाबमें उसी दिन मैंने जनरल स्मट्सको जो पत्र लिखा उसका आशय यह है

आपका आजकी तारीखका पत्र मुझे मिला। आपने धीरज और सौजन्यके साथ मेरी बातें सुन लीं इसके लिए मैं आभारी हूं।

हिंदुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानून (इंडियन रिलीफ बिल) के पास हो जाने और हमारे बीच हुए पत्र-व्यवहारसे सत्याग्रह-संग्रामकी समाप्ति हो रही है। यह लड़ाई १९०६ ई० के सितंबर महीनेमें शुरू हुई। हिंदुस्तानी कौमको इसमें बहुत कष्ट और पैसेका नुकसान उठाना पड़ा। सरकारको भी चिंताग्रस्त रहना पड़ा।

आप जानते हैं कि मेरे कुछ भाइयोंकी मांग बहुत ज्यादा थी। अलग-अलग प्रांतोंमें व्यापारके परवानेके कानूनोंमें जैसे ट्रांसवालका 'गोल्ड ला' ट्रांसवाल टाउनशिप्स एक्ट और १८८५ का ट्रांसवालका न० ३ कानून इनमें कुछ भी अदल-बदल नहीं हुआ जिससे भारतीयोंको निवास व्यापार और जमीनकी मालिकीका पूरा-पूरा हक मिले। इससे उनको असंतोष हुआ है। कुछ लोगोंको तो इस कारण असंतोष है कि एकसे दूसरे सूबेमें जानेकी पूरी आजादी नहीं दी गई। कुछ लोगोंको इस बातसे असंतोष है कि हिंदुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानूनमें विवाहके प्रश्नके विषयमें जितना किया गया है उससे अधिक होना चाहिए था। उनकी मुझसे यह मांग है कि ये सभी बातें सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल कर ली जायं। पर मैंने उनकी मांग मंजूर नहीं की। अतः यद्यपि ये बातें सत्याग्रहके विषयके रूपमें शामिल नहीं की गईं तो भी इस बातसे तो हर्गिज इनकार नहीं किया जा सकता कि किसी दिन सरकारको इन प्रश्नोंपर और विचार करके राहत देना मुनासिब होगा। जबतक यहां बसनेवाली हिंदुस्तानी कौमको नागरिकके पूरे-पूरे हक नहीं दे दिये जायं तबतक पूरे संतोषकी आशा नहीं रखी जा सकती।

"अपने भाइयोंसे मैंने कहा है कि आप लोगोंको धीरज रखना है और हरएक योग्य साधनके द्वारा लोकमतको ऐसा बनाना है जिससे इस पत्र-व्यवहारमें दरसायी हुई शर्तोंसे भी भविष्यकी सरकार आगे जा सके। मैं आशा रखता हूं कि दक्षिण अफ्रीका

के गोरे जब यह समझेंगे कि हिंदुस्तानसे गिरमिटिए मजदूरका आना अब बंद हो चुका है और दक्षिण अफ्रीकामें नये आने वालोंसे संबंध रखनेवाले कानून (इमिग्रेशन रेगुलेशन एक्ट) से स्वतंत्र भारतीयोंका इस देशमें आना भी लगभग बंद हो गया है और यह भी समझेंगे कि भारतीयोंकी महत्त्वाकांक्षा यहांके राजकाजमें कोई अधिकार स्थापित करनेकी नहीं है तब वे देखेंगे कि मैंने जो बताये हैं वे हक हिंदुस्तानियोंको मिलने ही चाहिए और उसीमें न्याय भी है। इस बीच इस मसलेको हल करनेमें पिछले कुछ महीनोंसे सरकारने जो उदार नीति ग्रहण कर रखी है वही उदार नीति जैसाकि आपके पत्रमें बताया गया है वर्तमान कानूनोंपर अमल करनेमें बरती गई तो मेरा विश्वास है कि संपूर्ण यूनियनमें हिंदुस्तानी कौम कुछ शांति भोगते हुए रह सकेगी और सरकारके लिए हैरानीका कारण नहीं होगा।

उपसंहार

इस प्रकार आठ बरसके बाद सत्याग्रहका यह महान संग्राम समाप्त हुआ और ऐसा जान पड़ा कि सारे दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले भारतीयोंको शांति मिली। मैं खेद और हर्ष दोनों के साथ इंग्लैण्डमें गोखलेसे मिलकर हिंदुस्तान जानेके लिए दक्षिण अफ्रीकासे रवाना हुआ। जिस देशमें मैं पूरे २१ बरस रहा अगणित कड़वे-मीठे अनुभव प्राप्त किये जिस देशमें मैं अपने जीवनके कार्य उद्देश्यके दर्शन कर सका उस देशको छोड़नेमें मुझे बहुत दुख हुआ और मैं खिन्न हुआ। हर्ष यह सोचकर हुआ कि इतने बरसोंके बाद हिंदुस्तान वापस जाकर मुझे गोखलेकी मातहती और रहनुमाईमें सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा।

इस युद्धका जो ऐसा सुंदर अंत हुआ उसके साथ दक्षिण

अफ्रीकाके भारतीयोंकी आजकी स्थितिकी तुलना करते हुए क्षण भरके लिए दिलमें यह सवाल उठता है कि भारतीयोंने इतने सारे दुःख किसलिए उठाये ? अथवा सत्याग्रहके तत्त्वकी श्रेष्ठता ही कहां सिद्ध हुई ? इसके उत्तरपर यहां विचार कर लेना चाहिए। सृष्टिका एक नियम है कि जो वस्तु जिस साधनसे मिलती है उसकी रक्षा उस साधनसे ही होती है। अर्थात् दण्डसे मिली हुई वस्तुकी रक्षा दण्डही कर सकता है सत्यसे प्राप्त वस्तुका संग्रह सत्यके द्वारा ही हो सकता है। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय आज भी सत्याग्रहक हथियारसे काम ले सकें तो अपने आपको सुरक्षित बना सकते हैं। सत्याग्रहमें ऐसी विशेषता तो है ही नहीं कि सत्यसे मिली हुई वस्तु सत्यका त्याग कर देनेपर भी बनाये रखी जा सके। ऐसा परिणाम हो सकता हो तो वह इष्ट भी नहीं समझा जायगा। अब अगर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थिति आज दुर्बल है तो हमें समझ लेना चाहिए कि इसका कारण सत्याग्रहियोंका अभाव है। यह कथन दक्षिण अफ्रीकाके आजके भारतीयोंके दोषका सूचक नहीं है बल्कि वहां की वस्तुस्थिति बताता है। व्यक्ति या समुदाय जो चीज अपने-आपमें नहीं है वह कहांसे लायेगा ? सत्याग्रही सबके एकके बाद एक इस दुनियासे कूच कर गये। सोराबजी, काछलिया नायडू पारसी रुस्तमजी इत्यादिके स्वर्गवाससे सत्याग्रहके अनुभवियोंमेंसे थोड़े ही बच रहे हैं। जो रह गये हैं, वे आज भी जूझ रहे हैं।

अन्तमें इन प्रकरणोंको पढ़ जानेवाले इतना तो समझ ही गये होंगे कि अगर यह सत्याग्रह नहीं किया होता और बहुतेरे भारतीयोंने जो कष्ट सहे वे न सहे गये होते तो आज दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानियोंके कदम ही न रह गये होते। इतना ही नहीं दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयों की विजयसे दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशोंके हिन्दुस्तानी भी कमोबेश बच गये। कुछ न बच सके तो यह दोष सत्याग्रहका नहीं है, बल्कि इससे साबित हो गया

कि उन उपनिवेशोंमें सत्याग्रहका अभाव है और हिंदुस्तानमें उनकी रक्षा करनेकी शक्ति ही नहीं है। सत्याग्रह अमूल्य शस्त्र है, उसमें नैराश्य या हारके लिए अवकाश नहीं यह बात अगर इस इतिहासमें थोड़े बहुत अंशमें भी सिद्ध हो सकी हो तो मैं अपने आपको कृतार्थ समझूंगा।

समाप्त

हुआ। अंतमें छोटाभाई जीते।

२८ सितंबर—पार्तुगाल सरकारकी सहायतासे देशनिकाला पाये हुए ८५ सत्याग्रहियोंके साथ पोलक डर्बन पहुंचे।

११ अक्तूबर—श्री नारायण स्वामीका मर्चंटपुर्शन स्टीमरमें देशमें वापस आते हुए डेलागोआ बेमें देहावसान हो गया।

२५ फरवरी—इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन बिल यूनियन गजटमें प्रकाशित हुआ।

२५ अप्रैल—यह बिल चालू पार्लमेंटमें स्थगित होगया।

२ मई—कुछ शर्तोंपर समझौता हुआ और सत्याग्रहकी लड़ाई स्थगित हुई।

(इसके बाद लगभग एक वर्षतक कुछ शांति रही और फिर १९१३में चौंका देनेवाली घटनायें हुईं।)

१९१३

२२ मार्च—भारतीय धर्मपर हमला। जस्टिस सर्लने फैसला दिया जिसके मुताबिक इस्लामकी शरहसे मरियमबाईका उसके पतिके साथ हुआ विवाह गैरकानूनी करार दिया गया।

१ अप्रैल—यूनियन गजटमें नया इमिग्रेशन बिल प्रकाशित हुआ।

३ मई—ट्रान्सवालकी आमसभा में सत्याग्रह शुरू करनेका प्रस्ताव पास हुआ। इसी हफ्ते स्त्रियोंकी तरफसे भी ऐसा ही प्रस्ताव डोमीनियन सेक्रेटरीको भेजा गया।

२४ मई—गांधीजी और मि. फिशर (डोमीनियन सेक्रेटरी) के बीच का पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ।

७ जून—उपरोक्त पत्र-व्यवहारका बाकीका भाग प्रकाशित हुआ।

२१ जून—इमिग्रेशन कानूनको बादशाहकी स्वीकृति मिली।

१५ जुलाई—नये कानूनकी धारायें यूनियन गजटमें प्रकाशित हुईं।

१ अगस्त—नये कानूनकी रूसे तमाम कालोनियोंमें अपील बोर्ड नियुक्त हुए। इस बोर्डके इमिग्रेशन अधिकारी भी एक-एक सदस्य थे।

११ सितंबर—सत्याग्रहका आरम्भ। सरकार और गांधीजीके बीचका महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ।